अरब और भारत के सम्बन्ध

अरब और भारत के सम्बन्ध

अर्थात्

संयुक्त प्रांत की हिंदुस्तानी एकेडेमी की अवधानता में
प्रयाग में ता० २२ और २३ मार्च सन् १९२९ को
मौलाना सय्यद सुलैमान नदवी द्वारा
दिये गये व्याख्यानों का
हिंदी अनुवाद।

अनुवादक

बाबू रामचन्द्र वर्म्मा

प्रयाग

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त प्रान्त

१९३०

ग्रंथकार की भूमिका।

बहुत दिनों से मेरा यह विचार था कि अरब और भारत के सम्बन्धों पर किसी व्याख्यान या पुस्तक के रूप में एक क्रमबद्ध वर्णन अपने देश के निवासियों के समक्ष उपस्थित करूँ। इससे एक तो ज्ञानसम्बन्धी बहुत सी बातों का संग्रह होता ही, दूसरे इसमें मेरा यह भी उद्देश्य था कि देश के हिन्दू और मुसलमान दोनों संयोजक अंगों को मैं उस स्वर्ण युग का स्मरण कराऊँ जब कि वे दोनों एकता के भिन्न भिन्न सम्बन्धों और शृंखलाओं से जकड़े हुए थे। मैं प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडेमी का अनुगृहीत हूँ कि उसने मेरी इस बहुत दिनों की इच्छा पूरी करने का अवसर उत्पन्न किया। मुझे आशा है कि जिस उदारतापूर्ण विचार से ये सब बिखरी हुई बातें बीसियों पुस्तकों से चुन चुनकर और हजारों पृष्ठों को पढ़कर इन थोड़े से पृष्ठों में एकत्र की गई हैं, उसी उदारतापूर्ण विचार से आज ये सब बातें सुनी और कल पढ़ी जायँगी।

हमारा विश्वास है कि इस समय देश में जो आपस में द्वेष तथा विरोध की परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, उसका सबसे बड़ा उत्तर-दायित्व हमारे यहाँ के स्कूलों और कालेजों में पढ़ाया जानेवाला इतिहास है। इसलिये आज हमारे राष्ट्रीय इतिहास-लेखकों का कर्त्तव्य सब से बड़ा और महत्त्वपूर्ण है।

एकेडेमी ने तो मुझसे केवल तीन व्याख्यान देनेके लिये कहा था, परन्तु मैंने इस विचारणीय विषय के सारे क्षेत्र और सब कोनों को घेरने के लिये पाँच व्याख्यान तैयार किए, जिसमें यह विषय किसी दृष्टि से अधूरा न रह जाय।

इस पुस्तक की समस्त घटनाएँ और सामग्री अरबी की विश्वसनीय और प्रामाणिक पुस्तकों से प्राप्त की गई हैं। कहीं कहीं किसी अँगरेज़ी या फ़ारसी ग्रन्थ का भी उल्लेख आ गया है।

सय्यद सुलैमान नद्वी,

२० अप्रैल १६२६ ई० शिबली मंज़िल, आज़मगढ़।

विषय सूची

सम्बन्ध का आरम्भ

व्यापारिक सम्बन्ध

विद्या-विषयक सम्बन्ध

विद्या-विषयक सम्बन्धों का आरम्भ

पृष्ठ

धार्मिक सम्बन्ध

भारत में मुसलमान

विजयों से पहले

पृष्ठ

गुजरात और सिंध का दुनिया में सब से पहला नक़्शा

जिसको इब्नहौक़ल बग़दादी ने सन् ३४३ हि० (सन् ६४३ ई०) में तय्यार किया
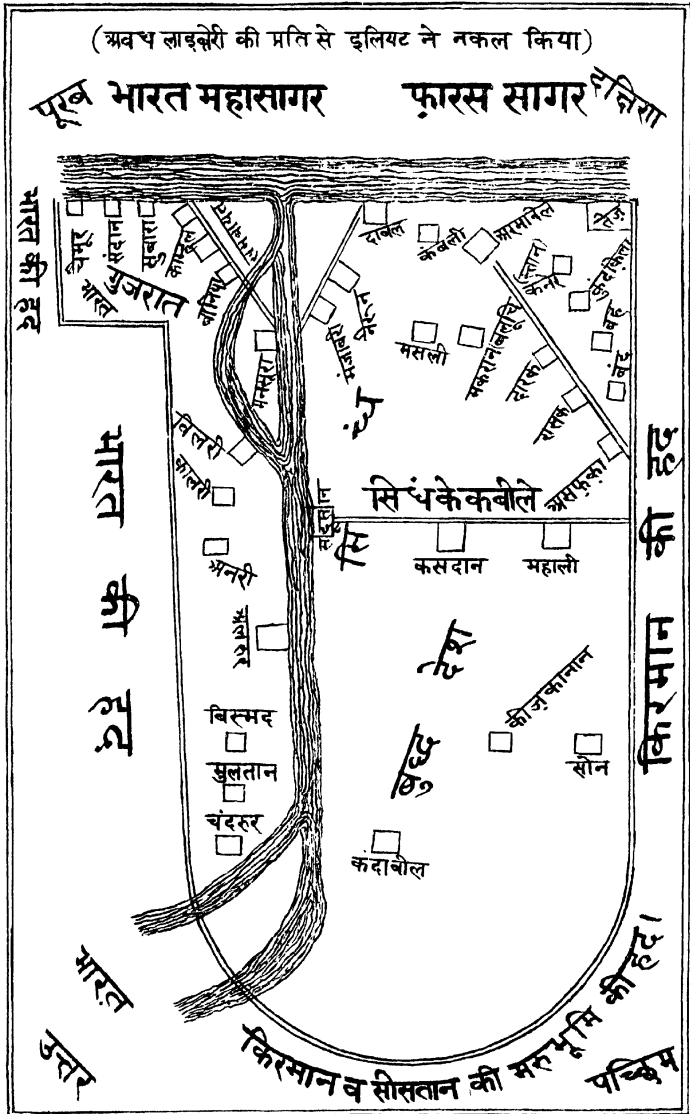
सम्बन्ध का आरम्भ और भारत के अरब यात्री

अरब और भारतवर्ष दोनों देश संसार की दो विशाल तथा महान् जातियों के धार्मिक तीर्थ और उपासना-मन्दिर हैं; और दोनों अपने अपने स्थान पर अपनी अपनी जातियों के लिये परम पुनीत तथा पवित्र हैं। भारतवर्ष के मूल निवासी कौन हैं इस सम्बन्ध में अनेक भिन्न भिन्न मत हैं। आर्य जाति का मन्तव्य या दावा तो आपने सुना ही होगा। परन्तु क्या अरबनिवासियों का पुराना दावा या मन्तव्य भी आपने सुना है? अभी कुछ ही हज़ार वर्ष हुए होंगे कि आर्य जाति मध्य एशिया से चलकर पंजाब में आई थी और फिर आगे बढ़कर गंगा और यमुना के बीच के प्रदेश या दोआबे में फैल गई। परन्तु अरब के निवासियों का कथन यह है कि भारतवर्ष के साथ उनका सम्बन्ध केवल कुछ हज़ार वर्षों का ही नहीं है, बल्कि मानव जाति की उत्पत्ति के आरम्भ से ही यह देश उनका पैतृक जन्मस्थान है।

हदीसों और क़ुरान की टीकाओं आदि में जहाँ हज़रत आदम की कथा है, वहाँ भिन्न भिन्न प्रवादों के आधार पर यह उल्लेख मिलता है कि जब हज़रत आदम आकाश की जन्नत या स्वर्ग से निकाले गए, तब वे इसी देश की जन्नत या स्वर्ग में, जिसका नाम "हिन्दोस्तान जन्नतनिशान" या स्वर्गतुल्य भारत है, उतारे गए थे। सरन्दीप (स्वर्णद्वीप या लंका) में उन्होंने पहला चरण रखा, जिसका चिह्न वहाँ के पर्वत पर अब तक वर्त्तमान है। इब्ने जरीर, इब्ने अबी हातिम और

हाकिम[1] का कहना है कि भारतवर्ष के जिस प्रदेश में हज़रत आदम उतरे थे, उसका नाम दजनाय है। क्या यह कहा जा सकता है कि यह दजनाय भारतवर्ष का दखिना या दक्खिन है जो भारतवर्ष के दक्षिणी भाग का प्रसिद्ध नाम है ? अरब देश में अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य तथा मसाले इसी दक्षिणी भारत से जाते थे ; और फिर अरबनिवासियों के द्वारा वे समस्त संसार में फैलते थे ; इस लिये उनका कथन है कि ये सब द्रव्य उन उपहारों के स्मृतिचिह्न हैं जो हज़रत आदम अपने साथ जन्नत से लाए थे। इन उपहारों में से छुहारों के अतिरिक्त दो फल अर्थात् नीबू और केले भारतवर्ष में ही वर्त्तमान हैं। एक और प्रवाद यह है कि अमरूद भी जन्नत का मेवा था जो भारतवर्ष में पाया जाता है।

एक और प्रवाद यह भी है कि जन्नत या स्वर्ग में से चार नदियाँ निकली हैं—नील, फ़ुरात, जैहून और सैहून। नील तो मिस्र देश की नदी है जिससे वहाँ की खेती का सारा काम होता है। इसी प्रकार इराक़ प्रदेश की उर्वरता तथा हरियाली के लिये फ़ुरात नदी का जो महत्त्व है, वह सब लोग जानते ही हैं। जैहून तुर्किस्तान की नदी है; और तुर्किस्तान के लिये इसका वही स्थान है जो नील और फ़ुरात का मिस्र और इराक में है। सैहून के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह भारतवर्ष की नदी का नाम है। क्या जन्नत की इस चौथी नदी को गंगा समझा जाय ? कुछ लोगों ने इसको सिन्धु नद ठहराया है।

मीर आज़ाद बिलग्रामी ने "सुबहतुल् मरजान फी आसारे हिन्दोस्तान" में भारतवर्ष के महत्त्व के वर्णन में कई पृष्ठ भेंट किए हैं। उसमें

---

[1] तफ़सीर दुर्रे मन्सूर सुयूती, पहला खण्ड, पृ० ५५। मिस्र देश में यह और इसके उपरान्त के और अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। साथ ही "सुबहतुल मरजान फी तारीख" हिन्दोस्तान का पहला खण्ड भी देखना चाहिए।

यहाँ तक कहा गया है कि जब हज़रत आदम सब से पहले भारतवर्ष में ही उतरे और यहीं उन पर वही आई (अर्थात् उनके पास ईश्वरी आदेश आया), तो यह समझना चाहिये कि यह वह देश है जिसमें सब से पहले ईश्वर का सन्देश आया था। यह भी माना जाता है कि मुहम्मद साहब की ज्योति हज़रत आदम के भाल में अमानत के तौर पर रखी थी। इससे यह प्रमाणित होता है कि हज़रत मुहम्मद साहब का आरम्भिक अवतार या प्रकाश इसी देश में हुआ था। इसी लिये आपने कहा है—"मुझे भारतवर्ष की ओर से ईश्वरीय सुगन्धि आती है।" यद्यपि हदीस की विद्या के महत्व का ध्यान रखते हुए ये सब प्रवाद बहुत ही निम्न कोटि के हैं, पर भिर भी इनसे यह बात प्रमाणित होती है कि साधारणतः जो यह समझा जाता है कि भारतवर्ष के साथ मुसलमानों का सम्बन्ध महमूद गज़नवी की विजयों के क्रम में हुआ और वे उसके उपरान्त यहाँ आकर बसे, वह कहाँ तक मिथ्या या भ्रमपूर्ण है। बल्कि वास्तविक बात तो यह है कि वे इस देश को अपना विजित देश नहीं समझते, बल्कि अपनी पुरुषानुक्रमिक तथा पैतृक जन्मभूमि समझते हैं; और जो लोग ऐसा नहीं समझते, उन्हें ऐसा समझना चाहिए। अस्तु; ये तो इतिहास काल से पूर्व की बातें हैं। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि मुसलमान लोग महमूद से सैकड़ों वर्ष पहले भारतवर्ष में आ चुके थे और जगह जगह पर उनके उपनिवेश स्थापित थे।

इस्लाम के उपरान्त अरबों और मुसलमानों में कुलीनता के विचार से सब से बड़ा स्थान सादात अर्थात् सैयदों का है। वर्त्तमान सैयद-वंशों का बहुत बड़ा भाग हज़रत इमाम हुसैन के सुपुत्र हज़रत इमाम ज़ैनुल्आबिदीन के वंशजों में से है। हज़रत ज़ैनुल्आबिदीन की माता अरब नहीं थीं। ईरानियों का दावा है कि वे ईरानी थीं और राजवंश की थीं। परन्तु कुछ इतिहास लेखकों ने उन्हें सिन्ध की

बतलाया है।[१] यदि यह अन्तिम कथन सत्य हो, तो यह मानने में क्या आपत्ति हो सकती है कि अरब तथा इस्लाम के सब से श्रेष्ठ और पवित्र वंश उत्पन्न करने में भारतवर्ष का भी अंश है? और फिर यह कहना भी ठीक होगा कि चाहे और मुसलमान हों या न हों, परन्तु जैनुल्आबिदीन अली की सन्तान सैयद लोग सदा से आधे भारतीय हैं।

खैबर की घाटी की ओर से उत्तरीय भारत में आनेवाले मुसलमान तुर्कों और अफगानों का समय हिजरी चौथी शताब्दी का आरम्भ है। महमूद ने सन् ४१८ हि० में लाहौर पर विजय प्राप्त की लेकिन दक्षिणी भारत अर्थात् मालाबार और कारोमंडल से गुजरात तक के प्रदेश इसके सैकड़ों वर्ष बाद तक भी मुसलमानों के अधिकार में नहीं गए थे। सन् ६९७ हि० में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर विजय प्राप्त कर के उसे दिल्ली के अधीनस्थ प्रदेशों में मिला लिया था; और उसी समय सुलतान अलाउद्दीन की सेनाओं ने मदरास की ओर केवल एक बार मालाबार और कारोमंडल के समुद्र तट के प्रदेशों को पार किया था। परन्तु वह विजय अस्थायी थी। इसके उपरान्त बिजयनगर की दीवार ने कई शताब्दियों तक अफगानों और मुग़लों को आगे नहीं बढ़ने दिया था। दक्षिण के बहमनी साम्राज्य का सारा जीवन बिजयनगर के साथ लड़ाई झगड़े करने में ही बीता था; परन्तु वह भी कृष्णा नदी से आगे किसी प्रकार से नहीं बढ़ सका था। हाँ, बहमनी साम्राज्य की राख से जो पाँच लपटें उठी थीं, उन्होंने बहुत कठिनता से सन् १५६५ ई० में उसे भस्मकर के निःशेष किया था। फिर भी आलमगीर के समय तक छोटे छोटे हिन्दू राज्य बने ही रहे।

---

[१] देखो किताबुल्मआरिफ़, इब्ने कुतैबा; और इब्ने खल्लिकान; तज़किरा अली बिन हुसैन ज़ैनुल्आबिदीन।

अरकाट, मैसूर और मद्रास के प्रदेशों पर उन्होंने यों ही उचटता सा पैर रखा; परन्तु उनमें से कोई अधिक समय तक वहाँ जम न सका।

इस सिंहावलोकन से हमारा यह दिखलाने का अभिप्राय है कि ख़ैबर की घाटी से उठनेवाली लहरों का भारतवर्ष के किन प्रान्तों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कब क्या प्रभाव पड़ा और भारतवर्ष के किस प्रान्त से किस समय तक हमारे विषय का सम्बन्ध है।

पंजाब	सन् ४१४हि० ;	१०२३ ई०
सिन्ध	सन् ५८२हि० ;	११८६ ई०
दिल्ली, कन्नौज, अवध, बनारस	सन् ५८९हि० ;	११९३ ई०
बिहार और बंगाल	सन् ५९३-९५हि० ;	११९५-९९ ई०
दक्षिण (देवगिरि)	सन् ६९३हि० ;	१२९४ ई०
गुजरात	सन् ६९७हि० ;	१२९७ ई०
महाराष्ट्र और मद्रास	सन् ७१२हि० ;	१३१२ ई०

इस लिये अरबों और हिन्दुओं के आपस के सम्बन्धों के विवरण में हम प्रत्येक प्रान्त के सम्बन्ध में ख़ैबर से आनेवाली जातियों के द्वारा उसके विजित होने तक की सब बातों का वर्णन कर सकते हैं।

हिन्दुस्तान और अरब संसार के वे महादेश हैं जो एक प्रकार से पड़ोसी कहे जा सकते हैं। इन दोनों के मध्य में केवल एक समुद्र पड़ता है, जिसके ऊपर ऐसी लम्बी चौड़ी सड़कें निकली हैं जो एक देश को दूसरे देश से मिलाती हैं। ये दोनों देश एक समुद्र के दो आमने सामने के स्थल के तट हैं। इस विशाल समुद्र का एक हाथ यदि अरबों के देश काबे की भूमि का पल्ला पकड़े हुए है, तो उसका दूसरा हाथ आर्यावर्त्त के चरण छूता है। समुद्रतट के देश स्वभावतः व्यापारी होते हैं। यही पहला सम्बन्ध है जिसने इन दोनों जातियों को एक दूसरे से परिचित कराया। हज़ारों वर्ष पहले से अरब के व्यापारी भारतवर्ष के समुद्रतट तक आते थे और यहाँ की उपज तथा व्यापारिक

पदार्थों को मिस्र और शाम देश के द्वारा युरोप तक पहुँचाते थे और वहाँ के पदार्थ भारतवर्ष, उसके पास के टापुओं, चीन और जापान तक ले जाते थे।

अरबवालों का मार्ग यह था कि वे मिस्र और शाम के नगरों से चलकर स्थल-मार्ग से लाल सागर (Red Sea) के किनारे किनारे जहाज़ को पार करके यमन तक पहुँचते थे; और वहाँ से पालवाली नावों पर बैठकर कुछ लोग तो अफ्रिक़ा और हब्श देश को चले जाते थे और कुछ वहीं से समुद्र के किनारे किनारे हज़रमौत, उम्मान, बहरैन, और इराक के तटों को पार कर के फ़ारस की खाड़ी के ईरानी तटों से होकर बलोचिस्तान के बन्दरगाह तेज में उतर पड़ते थे; या फिर आगे बढ़कर सिन्ध के बन्दरगाह देबल (कराची) में चले आते थे; और फिर और आगे बढ़कर गुजरात तथा काठियावाड़ के बन्दरगाह थाना (बम्बई) खम्भात चले जाते थे। फिर आगे बढ़ते थे और समुद्र के मार्ग से ही कालीकट और कन्याकुमारी तक पहुँचते थे। कभी मदरास के किसी तट पर ठहरते थे और कभी लंका तथा अंडमन होकर फिर सीधे मदरास के अनेक बन्दरगाहों पर चक्कर लगाते हुए बंगाल की खाड़ी में प्रवेश करते थे; और बंगाल के दो एक बन्दरगाहों को देखते हुए बरमा और स्याम होकर चीन चले जाते थे और फिर उसी मार्ग से लौट आते थे।

इससे पाठकों को यह विदित हो गया होगा कि इन लोगों के जहाज़ भारतवर्ष के समुद्रतट के सभी नगरों और टापुओं में बराबर चक्कर लगाया करते थे और इतिहास काल से पहले ही से इनका बराबर आना जाना होता था।

संसार की समुद्री व्यापार करनेवाली सब से पहली जाति का नाम फ़िनीशियन् है। यह यूनानी नाम है। इब्रानी भाषा में इनका नाम कनआनी है; और इनको आरामी भी कहते हैं। अरबवाले

इनको इरम कहते हैं और यही नाम कुरान में भी है। उसमें एक स्थान पर आया है—"आदे इरम ज़ातुल् इमाद" अर्थात्—"बड़े बड़े स्तम्भों और भवनोंवाले इरम के वंशज आद लोग।" और इसी साम्य के कारण उर्दू तथा फ़ारसी भाषा में भी "बहिश्ते इरम" कहते हैं।

यह कौन जाति थी? अन्वेषकों का कथन है कि ये लोग अरब थे जो बहरैन के समुद्रतट के पास से उठकर शाम के समुद्रतट पर जा बसे थे। पूर्व में बहरैन ही मानो इनका पूर्वीय देशों के लिये बन्दरगाह था; और शाम देश में भूमध्य सागर (Mediterranean Sea) के तट पर इनका पश्चिमी बन्दरगाह था, जहाँ से वे यूनान के टापुओं, युरोप के नगरों और उत्तरी अफ्रिक़ा के तटों तक चले जाते थे। इधर पूर्व में वे ईरान, भारत और चीन तक की ख़बर लेते थे। यूनान में इसी जाति के द्वारा सभ्यता का आरम्भ हुआ और उत्तरी अफ्रिक़ा के किनारे कार्थेज की नींव पड़ी। परन्तु पूर्वी देशों पर इनके जो प्रभाव पड़े, उनका पूरा पूरा अनुमान नहीं लगाया गया है। यह तो सभी लोग जानते हैं कि भारत की समस्त लिपियाँ, बल्कि समस्त आर्य लिपियाँ बाईं ओर से लिखी जाती हैं। परन्तु पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि आर्यावर्त्त की आरम्भिक लिपियाँ सामी लेख-प्रणाली की भाँति दाहिनी ओर से लिखी जाती थीं। इसके अतिरिक्त गिनती के लिखने का ढंग भी कदाचित् इसी व्यापार करनेवाली जाति से सीखा गया था। "एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका," ११वाँ संस्करण (Encyclopædia Britannica) में "संस्कृत" विषयक निबन्ध का लेखक यहाँ की आरम्भिक लिपि का इतिहास निम्नलिखित शब्दों में बतलाता है—

"भारतीय अक्षरों के आरम्भ का प्रश्न अभी तक सन्देहों से ढका है। भारतीय लिपि के सब से पुराने उदाहरण वे लेख हैं जो चट्टानों पर खुदे हुए हैं। ये पाली भाषा (वह प्राकृत जो दक्षिणी बौद्ध धार्मिक लेखों के लिये प्रयुक्त की जाती थी) के वह धार्मिक प्रज्ञापन हैं

जिन्हें सन् २५३ ई० पू० में मौर्य वंश के सम्राट् अशोक ने खुदवाया था। ये शिलालेख उत्तरी भारत में उत्तर-पश्चिमी सीमा पर पेशावर के पास और गुजरात में गिरनार से लेकर पूर्वी समुद्रतट पर कटक के ज़िले में जौगड़ और धौली तक फैले हुए हैं। चरम पश्चिम के वे शिलालेख जो कपूरदागढ़ी या शहबाजगढ़ी और मन्सूरा (मानसेहरा) के आस पास हैं, दूसरे शिलालेखों की वर्णमाला से बिलकुल भिन्न अक्षरों में लिखे गए हैं। वे दाहिनी ओर से बाईं ओर पढ़े जाते हैं। इनको साधारणतः "आर्य पाली" कहा जाता है। ये अक्षर यूनानी और अयोनिटया के भारतीय-सीथियन शासकों के सिक्कों में भी काम में लाये गये हैं। रहे दूसरे अक्षर जो बाईं ओर से दाहिनी ओर को पढ़े जाते हैं, हिन्दी-पाली अक्षर कहे जाते हैं। इनमें से पहले अक्षरों ने, जिनको खरोष्ट्री या गान्धार लिपि भी कहा जाता है और जो यों देखने में किसी सामी और कदाचित् आरामी भाषा से सम्बन्ध रखते हैं, बाद की लिखावटों पर अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ा है। दूसरी ओर हिन्दी-पाली या ब्राह्मी अक्षर हैं जिनसे भारत के आजतक के अक्षर निकले हैं। इन हिन्दीपाली व ब्राह्मी अक्षरों का मूल अभी निश्चित नहीं हुआ है—वह सन्दिग्ध ही है। यद्यपि अशोक के समय तक इस लिपि ने बहुत अधिक उन्नति कर ली थी और विद्या सम्बन्धी विषयों में इसका आश्चर्यजनक रूप से व्यवहार किया जाने लगा था, लेकिन फिर भी इसके कुछ अक्षर पुराने फ़िनीशियन अक्षरों से (जो स्वयं कदाचित् मिस्री चित्रलिपि से निकले थे) बहुत मिलते जुलते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि कदाचित् इनका मूल भी सामी ही हो। शायद अब इस बात का पता कभी न चलेगा कि अपने देश में इसका कब और किसके द्वारा प्रचार हुआ। जो हो प्रोफ़ेसर बुलहर (Prof. Bühler) ने यह अनुमान किया है कि कदाचित् इराक़ के व्यापारियों ने ई० पू० आठवीं शताब्दी में इन अक्षरों का यहाँ प्रचार किया हो। फिर भी मौर्य और आन्ध्र

शिलालेखों में इन अक्षरों ने जो पूर्ण रूप प्राप्त कर लिया है और जितने विस्तृत प्रदेश में वे फैले हुए हैं, उसका ध्यान रखते हुए बिना किसी प्रकार के सन्देह के यह बात मान ली जा सकती है कि भारतवर्ष में अशोक से बहुत पहले भिन्न भिन्न उद्देश्यों के लिये लिखने की कला का प्रचार था। उस समय के साहित्य में लेखन-प्रणाली का कहीं कोई उल्लेख नहीं है; और इसका कारण कदाचित् यही हो सकता है कि ब्राह्मण लोग अपने पवित्र ग्रन्थों को लेखबद्ध करना पसन्द नहीं करते थे।

"अब रहा भारत में अङ्कों के सम्बन्ध का प्रश्न। ईसवी सन् के आरम्भ में खरोष्ठी शिलालेखों में अङ्क जिस ढंग से लिखे गए हैं, वह ढंग यह है कि पहली तीन संख्याएँ लकीरों के द्वारा प्रकट की जाती हैं। चार की संख्या एक झुके हुए क्रास या सलीब की तरह है। और पाँच से नौ तक की संख्याएँ इस प्रकार लिखी जाती हैं ४ + १ से लेकर ४ + ४ + १। इसके सिवा दस, बीस और सौ के लिये कुछ विशेष चिह्न हैं। बाकी दहाइयों को दस मिलाकर इस प्रकार लिखा जाता है। जैसे, यदि पचास लिखना हुआ तो इस प्रकार लिखते हैं २० + २० + १०। यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि लिखने का यह ढंग सामी या शायद आरामी है। ईसवी छठी शताब्दी तक के ब्राह्मी शिलालेखों में एक दूसरे ही प्रकार के अङ्कों का व्यवहार किया गया है। १ से ३ तक के लिये आड़ी लकीरें हैं। फिर ४ से ९ तक की इकाइयों और १०, ९०, १०० और १००० के लिये विशेष चिह्न हैं। बहुत सम्भव है कि यह तरीक़ा मिस्र से निकला हो, और संख्याएँ लिखने का वह दशमिक प्रकार जो सब से पहले गुजरात के शिलालेख में मिलता है कदाचित् यहीं के ज्योतिषियों या गणितज्ञों ने निकाला हो।"

पर इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात यह है कि महाभारत के समय में भी भारत में ऐसे लोग थे जो अरबी भाषा जानते थे। इस

बात पर विश्वास करना है तो बहुत कठिन, लेकिन फिर भी एक बड़े पंडित ने इसको माना है; इस लिये मैं इसे न मानने का साहस नहीं कर सकता। "सत्यार्थ-प्रकाश" के लेखक स्वामी दयानन्द जी ने ११ वें समुल्लास (पहला पर्व, अध्याय १४७) में लिखा है—"महाभारत में जब कौरवों ने लाख का घर बनाकर पांडवों को उसके अन्दर जलाकर फूँक देना चाहा, तब विदुर जी ने युधिष्ठिर को अरबी (यवन ?) भाषा में बतलाया; और युधिष्ठिर ने उसी अरबी भाषा में उन्हें उत्तर दिया।" यदि यह बात ठीक हो तो अरबों और हिन्दुओं का सम्बन्ध कितना पुराना ठहरता है !

अरबों और हिन्दुओं के सम्बन्ध का एक और द्वार भी था। इसका स्वरूप यह था कि ईरान के बादशाह का प्रायः बलोचिस्तान और सिन्ध पर अधिकार रहा करता था। इस अधिकार के सम्बन्ध से सिन्ध के कुछ लड़ाके क़बीलों या वंशों की सैनिक टुकड़ियाँ ईरानी सेना में सम्मिलित थीं। इन लड़ाके क़बीलों में से दो का उल्लेख अरबों ने किया है; और वे दोनों क़बीले जाट (जत) और मेंड़ या मीड़ हैं। ये दोनों सिन्ध की प्रसिद्ध जातियाँ थीं। एक हदीस में कहा है कि अब्दुल्लाह बिन[1] मसऊद सहाबी ने हज़रत मुहम्मद साहब के साथ एक विशेष आकार के लोगों को देखा था, जिनके सम्बन्ध में उन्होंने बतलाया था कि उनका चेहरा जाटों की तरह था।[2] इससे जान पड़ता है कि अरबवाले ईसवी छठी शताब्दी में भी जाटों को जानते थे।

[1] अरबी में बिन का अर्थ "लड़का" होता है। "अब्दुल्लाह बिन मसऊद" का अर्थ है—मसऊद का लड़का अब्दुल्लाह। आगे भी जहाँ दो नामों के बीच में "बिन" शब्द आये, वहाँ इसी प्रकार अर्थ लगाना चाहिए—अनुवादक।

[2] तिरमिज़ी अबवाबुल्-इम्साल।

जब ईरानी लोग हार गए, तब ये बहादुर जाट लोग हवा का रुख देखकर कुछ शर्तों के साथ आकर मुसलमानों के लश्कर में मिल गए। मुसलमान सेनापति ने इनकी बहुत प्रतिष्ठा की और इनको अपने क़बीलों में मिला लिया। हज़रत अली ने जमलवाले युद्ध के अवसर पर बसरे का खजाना इन्हीं जाटों की रक्षा में छोड़ा था।[१] अमीर मुआविया ने रूमियों का मुक़ाबला करने के लिये इन लोगों को ले जाकर शाम देश के समुद्र तट के नगरों में बसाया और वलीद बिन अब्दुलमलिक ने अपने समय में इनको अन्ताकिया में ले जाकर बसाया था।[२]

"हिन्द" शब्द

मुसलमानों के आने से पहले इस पूरे देश का कोई एक नाम नहीं था। हर प्रान्त का अलग अलग नाम था या हर राज्य का नाम उसकी राजधानी के नाम से प्रसिद्ध था। जब फ़ारसवालों ने इस देश के एक प्रान्त पर अधिकार किया, तब उन्होंने उस नदी का नाम "हिन्दहो" रखा जिसको सिन्ध नदी कहते हैं और अरबों की भाषा में जिसका नाम महरान है। पुरानी ईरानी भाषा और संस्कृत में "स" और "ह" आपस में बदला करते हैं। इसके बहुत से उदाहरण हैं। इस लिये फ़ारसवालों ने इसको "हिन्दहो" कहकर पुकारा और इससे इस देश का नाम "हिन्द" पड़ गया। अरबों ने, जो सिन्ध के सिवा इस देश के दूसरे नगरों को भी जानते थे, सिन्ध को 'सिन्ध' ही कहा। लेकिन उसके सिवा भारतवर्ष के दूसरे नगरों या प्रदेशों को हिन्द निश्चित किया। अन्त में यही नाम सारे संसार में भिन्न भिन्न रूपों में फैल गया।

---

१ तारीखे तबरी।

२ बिलाज़ुरी; असावरा का वर्णन।

इसके "ह" का "अ" हो गया, जिससे फ्रान्सीसी भाषा में इंड और इण्डिया बना; और इसीके भिन्न भिन्न रूप सारे संसार में फैल गए। ख़ैबर की ओर से आनेवाली जातियों ने इसका नाम हिन्दुस्थान रखा, जो फ़ारसी उच्चारण में हिन्दुस्तान बोला जाता है। यह बहुत आश्चर्य-जनक बात है कि "हिन्द" शब्द अरबों को ऐसा प्यारा लगा कि उन्होंने देश के नाम पर अपनी स्त्रियों का यह नाम रखा। अरबी कविता में इस नाम का वही स्थान है जो फ़ारसी में लैला और शीरीं का है।

हिन्दोस्तान पर अरबों के आक्रमण

तात्पर्य यह कि इस प्रकार के दोहरे तेहरे सम्बन्ध थे, जिनके कारण इस्लाम के बाद अरबों का ध्यान भारत की ओर झुका; और उन्होंने ईरान की विजय के बाद इसके उपनिवेशों और दूसरे स्थानों को अपने व्यवहार में लाना आवश्यक समझा। इस प्रकार मकरान और बलोचिस्तान के बाद सिन्ध की सीमा इनके सामने थी। इसके सिवा इनको अपने व्यापारी जहाज़ों की रक्षा के लिए भारत के किसी समुद्रतट के बन्दरगाह की तलाश थी। इस लिये हज़रत उमर के शासन काल में अरबी जहाज़ों के बेड़े किसी अच्छे बन्दरगाह पर अधिकार करने के लिए भारत के समुद्र के किनारे मँडराने लगे। आज-कल जिस जगह बम्बई का शानदार शहर बसा हुआ है, उसके पास थाना नाम का एक छोटा सा बन्दर था, जो अब भी है। सब से पहले सन् १५ हि० (सन् ६३६ ई०) में बहरैन के शासक की आज्ञा से अरबों ने इसी बन्दरगाह पर पहली चढ़ाई की। इसके बाद भड़ौच (बरौस) पर चढ़ाई की, इसी समय मुग़ीरा नाम के एक दूसरे अरब ने देबल पर, जो सिन्ध का बन्दर था और जो ठट्ठा या वर्त्तमान कराची के पास था, चढ़ाई की। इसके कुछ ही वर्षों के बाद हज़रत उस्मान के समय में एक समुद्री टुकड़ी इन बन्दरगाहों की देख भाल कर के

चली गई। हज़रत अली के समय (सन् ३९ हि० ; सन् ६६० ई०) से एक अरब सरदार नियमित रूप से इन प्रान्तों की देख भाल करने लगा। पर सन् ४२ हि० (सन् ६६३ ई०) में वह मार डाला गया। सन् ४४ हि० (सन् ६६५ ई०) में अमीर मुआविया ने मुहल्लिब नाम के एक सरदार को सिन्ध की सीमा का रक्षक बनाकर भेजा ; और उसके बाद अरबों के शासन में यह एक स्थायी पद बना दिय गया।

सन् ८६ हि० (सन् ७०५ ई०) में जब दमिश्क के राज-सिंहासन पर वलीद अमवी (मुआविया नामक अमीर के वंश का) बैठा और उसकी ओर से हज्जाज नामक सरदार इराक़, ईरान, मकरान और बलोचिस्तान अर्थात् पूर्वी अधिकृत प्रदेशों का शासक बनाया गया, तब उसने भारत और उसके टापुओं के साथ अपने सम्बन्ध और दृढ़ किए। अरब व्यापारी बराबर आते जाते रहते थे ; पर साथ ही भारत के प्रायः समुद्री किनारों से समुद्री डाकूलोग उनके जहाज़ों पर डाके डाला करते थे। अलबेरूनी के समय (सन् ४२४ हि०) तक सोमनाथ और कच्छ में इन समुद्री डाकुओं के सबसे बड़े अड्डे थे।[1] जो हो, घटना यह है कि लंका में कुछ अरब व्यापारी व्यापार करते थे। वहाँ उनका देहान्त हो गया। लंका के राजा ने उनकी स्त्रियों और बच्चों को एक जहाज़ पर बैठाकर इराक़ की ओर भेज दिया। रास्ते में सिन्ध के देबल नामक बन्दरगाह के पास डाकुओं ने उस जहाज़ पर छापा मारा और उन स्त्रियों को पकड़ लिया। उस विपत्ति के समय स्त्रियों ने हज्जाज की दुहाई दी। जब हज्जाज को यह समाचार मिला, तब उसने सिन्ध के राजा दाहर को लिख भेजा कि इन स्त्रियों को रक्षापूर्वक मेरे पास भेजवा दो। राजा ने उत्तर दिया कि यह समुद्री डाकुओं का काम है ; जो हमारे अधिकार में नहीं हैं। इराक़ के शासक हज्जाज ने यह बात नहीं मानी।

---

[1] किताब उल् हिन्द, पृ० १०२ (लन्दन का संस्करण)

इसी बीच में एक और घटना हो गई। वह यह कि मकरान से कुछ अपराधी और विद्रोही लोगों ने आकर सिन्ध में शरण ली और उन्होंने राजा दाहर की अधीनता में अपना एक जत्था बना लिया। इस घटना ने भी हज्जाज को उत्तेजित किया। इस लिये उसने अपने नवयुवक भतीजे मुहम्मद बिन[१] क़ासिम की अधीनता में शीराज़ से छः हज़ार सैनिक सिन्ध की ओर भेजे। साथ ही कुछ सामग्री सहित कुछ सेना समुद्र के रास्ते से भी सिन्ध की ओर भेजी और उसकी सहायता के लिए ईरान के पुराने खुश्की रास्ते से भी कुछ सेनाएँ भेजीं। सन् ९३ हि० में मुहम्मद बिन क़ासिम सिन्ध पहुंचा और तीन वर्ष के बीच में उसने छोटे काश्मीर (अरब लोग पंजाब को छोटा काश्मीर कहते थे) की सीमा मुलतान से लेकर कच्छ तक और उधर मालवे की सीमा तक अपना अधिकार कर लिया; और सारे सिन्ध प्रदेश में उसने बहुत ही न्याय और शान्ति का राज्य स्थापित कर दिया। राजा दाहर के साथ मिलकर जिन भारतीय सैनिकों ने अरबों का सब से अधिक सामना किया, उनका नाम बिलाज़ुरी ने, जिसने अपनी पुस्तक सन् २५५ हि० (सन ८५५ ई०) में लिखी थी, "तकाकिरा" बतलाया है जो अरबी भाषा में "ठाकुर" शब्द का बहुवचन का रूप है। सन् ९६ हि० में वलीद का देहान्त हुआ और उसके स्थान पर सिंहासन पर सुलैमान बैठा। हज्जाज और उसके वंश के लोगों तथा कर्मचारियों के साथ उसकी व्यक्तिगत शत्रुता थी; इस लिये उसी वर्ष उसने हज्जाज के नियुक्त किए हुए दूसरे अधिकारियों के साथ मुहम्मद बिन क़ासिम को भी सिन्ध से वापस बुला लिया; और अन्त में अपनी व्यक्तिगत शत्रुता का बदला लेने के नशे में उसकी हत्या भी करा दी। इस हत्या के कारणों में राजा दाहर की दो कन्याओं का कथानक उल्लेख करने के योग्य नहीं

[१] क़ासिम का लड़का मुहम्मद।

है; क्योंकि उसका कई बार खंडन हो चुका है। हाँ, यह घटना अवश्य स्मरण रखने के योग्य है कि जब क़ासिम सिन्ध से लौटने लगा, तब सिन्ध की प्रजा ने अपने सुशील और न्यायी विजेता के वियोग में आँसू बहाए और उसकी स्मृति में उसकी मूर्ति बनाकर स्थापित की।

इसके उपरान्त बहुत से शासक नियुक्त होकर यहाँ आते रहे। सन् १०७ हि० में जुनैद यहाँ का शासक होकर आया। यह बहुत बड़ा साहसी अधिकारी था। इसने सिन्ध से कच्छ पर चढ़ाई की। वह पहले मरमद में पहुँचा और वहाँ से मांडल और फिर धबख तक गया। यहाँ से वह भड़ौच के बन्दरगाह तक पहुँच गया और उसके एक अधिकारी ने उज्जैन (मालवा) तक धावा किया; और वहाँ से फिर सम्मैद और भीलमाल को जीतता हुआ गुजरात पहुँचा और वहाँ से वह फिर सिन्ध लौट आया, परन्तु इन सब विजयों का महत्व आकर निकल जानेवाली आँधी से अधिक नहीं है। सन् १३३ हि० (सन् ७५१ ई०) में अरबी शासन का पृष्ठ उलट गया। अमवियों (मुआविया के वंश के लोगों) के स्थान पर अब्बासी लोग आए। शाम के स्थान पर इराक़ साम्राज्य का सूबा निश्चित हुआ और शासन का केन्द्र दमिश्क से हटकर बग़दाद चला गया। इस परिवर्त्तन ने भारत को अरब साम्राज्य के केन्द्र से बहुत अधिक पास कर दिया। सन् १४० हि० (सन् ७५९ ई०) में हिशाम सिन्ध का शासक होकर आया। उसने उमर बिन जमल नामक एक अधिकारी को जहाज़ों का एक बेड़ा देकर गुजरात भेजा वह लूटमार करके थोड़े ही दिनों में विफल होकर लौट आया। अन्त में हिशाम ने स्वयं एक बेड़ा लेकर भड़ौच के पास गन्धार पर अधिकार किया और वहाँ उसने अपनी विजय के स्मारक में एक मसजिद बनवाई। यह गुजरात देश में इस्लाम का पहला चरण था और सिन्ध को छोड़कर बाकी सारे भारत में यह पहली मसजिद थी।

मन्सूर के बाद महदी ख़लीफ़ा हुआ। उसकी आज्ञा से अब्दुल्मलिक ने गुजरात पर फिर चढ़ाई की और सन् १६० हि० (सन् ७७८ ई०) में बारबुद को, जिसका हिन्दी नाम भाडभूत है और जो भड़ौच के पास है, जीत लिया। पर संयोग से सेना में मरी फैल गई, जिससे एक हज़ार सिपाही मर गये। इस दुर्घटना से अरब लोग विकल होकर उलटे पाँव लौट गए।

बग़दाद का साम्राज्य मोहतशिम बिल्लाह अब्बासी तक, जिसकी मृत्यु सन् २ ७ हि० में हुई, दृढ़ रही। इसके बाद दिन पर दिन वह ऐसी निर्बल होती गई कि सिन्ध और भारत से उसका सम्बन्ध टूट गया। कुछ दिनों तक अरब अमीर लोग यहाँ स्वतन्त्र बने रहे; पर अन्त में हिन्दू राजाओं ने फिर अपना अधिकार कर लिया। बाद में केवल दो प्रसिद्ध अरब रियासतें यहाँ बनी रह गईं, जिनमें से एक मुलतान में थी और दूसरी सिन्ध के अरबी नगर मन्सूरा में थी। यहाँ यह बात लिख देने के योग्य है कि इन हिन्दू राजाओं ने भी मुसलमान प्रजा के साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया और उनकी मसजिदों को उसी प्रकार अपने स्थान पर बनी रहने दिया।[१]

सिन्धियों की हार का रहस्य

इसके आगे बढ़ने से पहले यह जान लेना चाहिए कि कुछ ही हज़ार अरबों की जो सेना इतनी दूर से चल कर यहाँ आई थी, उसने एक ही आक्रमण में कैसे इस देश पर अधिकार कर लिया। मेरी समझ में सिन्धियों की हार भी उसी एक कारण से हुई थी, जिससे संसार की हर एक जाति दूसरी जाति के अधीन हुई है। अरबों के विवरण से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध होती है कि उस समय अर्थात्

---

[१] इन सब घटनाओं का उल्लेख फ़ुतूहुलबुल्दान (बिलाज़री) में है।

हिजरी पहली शताब्दी के अन्त और ईसवी आठवीं शताब्दी के आरम्भ में सिन्ध में बौद्ध धर्म का प्रचार था। अरबवाले बौद्धों को समनियः कहते थे। (इस शब्द पर आगे चलकर विचार होगा)। भूगोल के सभी लेखकों ने यहाँ बुद्ध नाम की एक बस्ती का उल्लेख किया है।[1] जिसका ठीक नाम चचनामे में बुद्धपुर है।[2] फिर यहाँ नवविहार[3] नाम के एक उपासना-मन्दिर का उल्लेख मिलता है जो विशेष रूप से बौद्धों के मन्दिर का नाम है। उनके पुजारी का नाम समनियः मिलता है जो ब्राह्मणों के विरोधी थे। इलियट साहब भी हमारे इस कथन का समर्थन करते हैं कि उस समय सिन्ध का धर्म बौद्ध था। वह कहते हैं—

"जब मुसलमानों को पहले पहल भारत की जातीयता से काम पड़ा, तब सिन्ध में बौद्ध मत का पूरी तरह से प्रचार था; इस लिये निश्चित रूप से इस नाम "बुद" का मूल रूप "बौद्ध" है, न कि फ़ारसी शब्द "बुद" (बुत) जो कदाचित् स्वयं भी बौद्ध शब्द का ही बिगड़ा हुआ रूप है। इस बात के बहुत से चिह्न अब भी मिलते हैं कि उस समय सिन्ध की तराई में बौद्ध धर्म फैला हुआ था। केवल विशेष रूप से चीनी यात्रियों के विवरणों और इब्न खुर्दाजिबा के वर्णन से ही इसका समर्थन नहीं होता, बल्कि अरब लेखकों के कुछ संकेत और उल्लेख भी ऐसे हैं जिनमें ब्राह्मणों और बौद्धों के एक दूसरे के विरोधी होने का विशेष रूप से कोई उल्लेख नहीं है। क्योंकि इन लोगों की धर्म सम्बन्धी बातों (और विशेषतः प्रार्थना के ढङ्ग, श्राद्ध या बड़ों के नाम पर दान पुण्य करने आदि) में आपस में इतना सूक्ष्म

---

[1] बुशारी मुक़द्दसी और इब्न हौकल का "जिक्रे सिन्ध"।

[2] इलियट का इतिहास; पहला खंड; पृष्ठ १३८।

[3] उक्त ग्रन्थ और खंड; पृ० १०।

अन्तर है कि अनजान और अभिमानी विदेशियों का ध्यान कठिनता से इस ओर जा सकता था। इसी लिये जहाँ कहीं पुजारियों का वर्णन आया है, वहाँ उन्हें "समनी" कहा गया है। साम्राज्य का हाथी सफ़ेद होता था, जो एक बहुत अर्थपूर्ण बात है। एक हज़ार ब्राह्मणों (पुजारियों) को जिस नाम से अरबी किताबों में इनका उल्लेख है और जो चाहते थे कि अपना पुराना धार्मिक विश्वास और रीत रवाज आदि जारी रखें, मुहम्मद बिन क़ासिम ने उस समय के ख़लीफ़ा की आज्ञा से आदेश दिया था कि वे अपने हाथों में भिक्षापात्र लेकर नित्य सवेरे घूम घूमकर अपनी जीविका का प्रबन्ध करें। और यह एक विशेष धार्मिक प्रथा है जो बौद्ध पुजारियों में प्रचलित है और सब से अन्तिम बात यह है कि समाधि या स्तूप बनाकर या और किसी प्रकार विजयी लोगों की शारीरिक स्मृति स्थापित करना आदि आदि बातें बौद्धों के प्राकृतिक गुणों की ओर संकेत करती हैं, न कि ब्राह्मणों की ओर। इन भाव रूप युक्तियों के सिवा इस बात से अभाव रूप साक्षी भी मिलती है कि सती, जनेऊ, गौ-पूजा, स्नान, हवन, पुजारियों के हथकंडों और धर्माधिकारियों के अधिकारों, योगियों के इन्द्रिय-निग्रह या दूसरी प्रथाओं और कार्यों का भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।"

सिन्ध का सब से पहला और पुराना इस्लामी इतिहास, जो साधारणतः चचनामा के नाम से प्रसिद्ध है (और जिसके दूसरे नाम तारीख़ुल् हिन्द व उल् सन्द और मिनहाजुल् मसालिक हैं) को देखने से भली भाँति यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय सिन्ध में बौद्धों और ब्राह्मणों के बीच विरोध और शत्रुता चल रही थी। यह भी पता चलता है कि कुछ घरानों में ये दोनों धर्म इस प्रकार भी फैले हुए थे कि उनमें का एक हिन्दू था, तो दूसरा बौद्ध। सिन्ध के राजाओं के विवरण पढ़कर इसी आधार पर मुझे यह निर्णय करना पड़ा है कि राजा चच हिन्दू ब्राह्मण था। उसने लड़ भिड़ कर छोटे छोटे बौद्ध

राजाओं को या तो मिटा दिया था और या उन्हें अपना करद बना लिया था।[1] यह राजा ईसवी छठीं शताब्दी के अन्त में सिन्ध का शासक था। उसके बाद उसका भाई चन्द्र राजा हुआ। यह बौद्ध मत का कट्टर अनुयायी था; और जिन लोगों ने पहले अपना धर्म छोड़ दिया था, उन्हें इसने बलपूर्वक बौद्ध बनाया था[2] यह देखकर हिन्दू ब्राह्मणों ने सिर उठाया। वह विवश होकर लड़ने के लिये निकला; पर सफल नहीं हुआ उसके बाद चच का लड़का दाहर उसके स्थान पर राजा हुआ। यह मुझे हिन्दू ब्राह्मण जान पड़ता है।

ऐतिहासिक अनुमानों से यह जान पड़ता है कि जिस समय मुसलमान लोग सिन्ध की सीमा पर थे, उस समय देश में इन दोनों धर्मों में भारी लड़ाई हो रही थी और बौद्ध लोग ब्राह्मणों का सामना करने में अपने आपको असमर्थ देखकर मुसलमानों की ओर मेल और प्रेम का हाथ बढ़ा रहे थे। हम देखते हैं कि ठीक जिस समय मुहम्मद बिन क़ासिम की विजयी सेना नैरूँ नगर में पहुँचती थी, उस समय वहाँ के निवासियों ने अपने समनियों या बौद्ध पुजारियों को उपस्थित किया था। उस समय पता चला था कि इन्होंने अपने विशेष दूत इराक़ के हज्जाज के पास भेजकर उससे अभयदान प्राप्त कर लिया है। इस लिये नैरूँ के लोगों ने मुहम्मद का बहुत अच्छा स्वागत किया। उसके लिये रसद की व्यवस्था की, अपने नगर में उसका प्रवेश कराया और मेल के नियमों का पूरा पूरा पालन किया। इसके बाद जब इस्लामी सेना सिन्ध की नहर को पार कर के सदोसान पहुँचती है, तब फिर समनिया बौद्ध लोग शान्ति के दूत बनते हैं।[3] इसी प्रकार सेवस्तान में होता

---

[1] चचनामा; इलियट; खण्ड १; पृ० १४२ और १५२।

[2] उक्त ग्रन्थ और खण्ड; पृ० १५२-५३।

[3] बिलाज़ुरी; पृ० ४३७-३८।

है कि समनी (बौद्ध) लोग अपने राजा विजयराय को छोड़कर प्रसन्नता-पूर्वक मुसलमानों का साथ देते हैं और उनको हृदय से मान्य करते हैं। सिन्ध में काका नाम का कोई प्रसिद्ध बुद्धिमान् और राजनीतिज्ञ था। जाट रईस लोग उसके पास जाकर उससे सलाह करते हैं कि क्या मुसलमानों की सेना पर रात के समय छापा मारा जाय ? वह उत्तर में कहता है—"यदि तुम ऐसा कर सको तो अच्छा है। पर सुनो, हमारे पंडितों और योगियों ने यन्त्र देखकर यह भविष्यद्वाणी कर दी थी कि इस देश को एक दिन मुसलमान लोग जीत लेंगे।" लोग उसकी बात नहीं मानते और हानि उठाते हैं। काका ने कहा—"तुम लोग अच्छी तरह जानते हो कि मेरा विचार और निश्चय प्रसिद्ध है। बौद्धों के ग्रन्थों में यह भविष्यद्वाणी पहले से ही लिखी जा चुकी है कि भारत को मुसलमान लोग जीत लेंगे। और मैं भी विश्वास रखता हूँ कि वास्तव में ऐसा ही होनेवाला है।" इसके बाद काका मुहम्मद बिन क़ासिम के पास चला जाता है और जाटों के विचार से उसको सूचित करता है और अपने ग्रन्थों की भविष्यद्वाणी उसको सुनाता है। मुहम्मद बिन क़ासिम बहुत आदरपूर्वक उसे अपने यहाँ रखता है और उसके साथियों को पुरस्कार और ख़िलअत आदि देकर सम्मानित करता है। इसी प्रकार राजा दाहर के बहुत से विरोधी अधिकारी (सम्भवतः बौद्ध) स्वयं आ आकर अधीनता स्वीकृत करते हैं।[१]

ऐसा जान पड़ता है कि जब सिन्ध के बौद्धों ने एक ओर मुसलमानों को और दूसरी ओर ब्राह्मणों को तौला, तब उनको मुसलमान अच्छे जान पड़े। दूसरा कारण यह हो सकता है कि इससे पहले तुर्किस्तान और अफ़ग़ानिस्तान के बौद्धों के साथ मुसलमानों ने जो अच्छा व्यवहार किया था और उनमें से बहुत अधिक लोगों ने जिस शीघ्रता

---

[१] चचनामा ; इलियट ; पृ० १०६ ।

से इस्लाम धर्म ग्रहण किया था, उसका प्रभाव इस देश के बौद्धों पर भी पड़ा था।

भारत के अरब यात्री और भूगोल-लेखक

इस समय अरबी भाषा में जो सब से पहली भूगोल की ऐसी पुस्तक मिलती है जिस में भारतवर्ष का कुछ वर्णन है, वह इब्न खुर्दाजबा (सन् २५० हि०) की किताबुल्-मसालिक वल् ममालिक है।

(१) इब्ने खुर्दाजबा; सन् २५० हि०

यह ईसवी नवीं शताब्दी में मोतमद ख़लीफा अब्बासी के समय में डाक और गुप्त सूचनाओं के विभाग का अधिकारी था। इस लिये इसने बग़दाद से भिन्न भिन्न देशों की यात्राओं और आने जाने के मार्गों का विवरण देने के लिये यह पुस्तक लिखी थी। इसमें उसने भारत के जल और स्थल के व्यापारी मार्गों का विवरण दिया है और यहाँ की भिन्न भिन्न जातियों का उल्लेख किया है। यद्यपि वह स्वयं भारत में नहीं आया था, पर उसकी साधारण जानकारी की नींव बतलीमूस के भूगोल पर है और विशेष विशेष जानकारियाँ उसके विभाग की सरकारी सूचनाओं के आधार पर हैं। अपने पद के कारण व्यापारियों और यात्रियों से उसकी बराबर भेंट होती रहती थी; इस लिये उसकी यह निजी जानकारियाँ मानो भारतीय यात्री की जानकारियों के समान थीं। उसकी पुस्तक सन् १८८९ ई० में ब्रेल, लीडन यन्त्रालय में डी गोइजी (De Goeje) ने प्रकाशित की थी।

इब्ने खुर्दाजबा ने सिन्ध के अन्तर्गत जिन नगरों का उल्लेख किया है, उनसे जान पड़ता है कि अरबवाले बलोचिस्तान के बाद से लेकर गुजरात तक के सारे देश को सिन्ध समझते थे। उसने सिन्ध के नीचे लिखे नगर गिनाए हैं—

"कैकान बन्नः, मकरान, मेद, कन्धार, कसदार, बूकान, कन्दाबोल, कन्जपुर, अरमाबील, देबल, कम्बली, कंबायाद, खम्भायत, सहबान, सदौसान, रासक, रूर, सावन्दरी, मुलतान, मंडल, बेलमान, सरिश्त, केरज, मरमद, काली, धबख, बरौस (बडौच)" (पृ० ५५)। फिर भारत के प्रसिद्ध नगरों के नाम गिनाए हैं जो इस प्रकार हैं—सामल, होरैन (उज्जैन), कालौन, कन्धार (गन्धार), काश्मीर। (पृ० ६८)।

इब्ने खुर्दाजबा कहता है—"भारत में सात जातियाँ हैं। (१) शाकशरी (क्षत्रिय); ये उस देश के सम्पन्न और बड़े लोग हैं। इन्हीं में से बादशाह होते हैं। इनके आगे सब लोग सिर झुकाते हैं, पर ये किसी के आगे सिर नहीं झुकाते। (२) बराहमः (ब्राह्मण) ये शराब और नशे की चीजें नहीं पीते। (३) कस्तरी (खत्री) ये तीन प्यालों तक पी लेते हैं। ब्राह्मण इनकी लड़की लेते हैं, पर इनको अपनी लड़की नहीं देते। (४) शूदर (शूद्र), ये खेती करनेवाले हैं। (५) बैश (वैश्य); ये पेशे करनेवाले हैं। (६) शन्दाल (चांडाल); ये खिलाड़ी और कलावन्त हैं। इनकी स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं। और (७) जम्ब (डोम), ये लोग गाते बजाते हैं। भारत में ४२ प्रकार के धर्म सम्प्रदाय प्रचलित हैं। कोई ईश्वर और रसूल (अवतार से अभिप्राय है) दोनों को मानता है, कोई एक को मानता है; और कोई किसी को नहीं मानता। इनको अपनी जादूगरी और यन्त्र मन्त्र पर बड़ा अभिमान है।" (पृ० ७१)।

(२) सुलैमान सौदागर ; सन् २३७ हि०

यह सब से पहला अरब यात्री है, जिसका यात्रा-विवरण हम लोगों को प्राप्त है। सन् १८११ ई० में यह पेरिस में "सिलसिल तुत्तवारीख" के नाम से छपा है। यह एक व्यापारी था जो इराक़ के बन्दरगाह से चीन तक यात्रा किया करता था। इस प्रकार यह भारत

के सारे समुद्र तट का चक्कर लगाया करता था। इसने अपनी यात्रा का यह संक्षिप्त विवरण सन् २३७ हि० में लिखा था, जिसे आज प्रायः ग्यारह सौ वर्ष होते हैं।

यह सब से पहला उद्गम है जिसमें भारतीय महासागर का नाम हमें "दरियाए हरगन्द" मिलता है। हरगन्द समुद्र के उस भाग को कहते थे, जो दक्षिणी भारत के किनारों पर बहता है। सुलैमान कहता है—"यह प्रसिद्ध है कि इसमें १९०० के लगभग टापू हैं। इन टापुओं पर एक स्त्री का राज्य है। इनमें अम्बर और नारियल के वृक्ष बहुत अधिक हैं। एक टापू दूसरे टापू से दो तीन फरसख (दूरी की एक नाप जो प्रायः साढ़े तीन मील के बराबर होती है। इसीका फ़ारसी रूप फरसंग है।) की दूरी पर स्थित है। यहाँ के लोग बहुत कारीगर हैं। ये कुरता दोनों आस्तीनों, दामनों और गले के सहित बुन लेते हैं और इसी प्रकार जहाज़ बनाते हैं। सब से अन्तिम टापू का नाम सरन्दीप है और इनमें से हर एक टापू का नाम दीप (द्वीप) है। इसी सरन्दीप में हज़रत आदम के चरण चिह्न हैं। इन सब के पीछे अंडमन टापू है। यहाँ के लोग जंगली हैं। ये कुरूप और काले होते हैं। इनके घुँघराले बाल, डरावने चेहरे और लम्बे पैर होते हैं और ये नंग धड़ंग रहते हैं। ये जीते आदमी को पकड़ कर खा जाते हैं। कुशल यही है कि इनके पास नावें नहीं हैं, नहीं तो इधर से जहाज़ों का आना जाना कठिन हो जाता।" दक्षिणी भारत के कुछ तटों के निवासियों के सम्बन्ध में इसने लिखा है—"वे केवल एक लँगोटी बाँधते हैं।"

इसने एक विलक्षण बात यह लिखी है जिससे सारे संसार के सम्बन्ध में उस समय के लोगों की व्यापक पारखी दृष्टि का पता चलता है इसने लिखा है कि भारतवासियों और चीनियों दोनों का यह कहना है कि संसार में केवल चार बादशाह हैं। सब से पहला

अरब का बादशाह, जो सब बादशाहों का बादशाह और सब से अधिक धनवान है और एक बड़े धर्म का बादशाह है। फिर चीन के बादशाह का नम्बर है। फिर रूम के बादशाह का और फिर भारत के राजा बल्हरा का (गुजरात के राजा बल्लभराय) का।

इसने भारत के समुद्र तट के चार बड़े बड़े राजाओं का उल्लेख किया है, जिनमें पहला नाम राजा बल्हरा का है—"जो सब राजाओं का राजा है। इसके यहाँ सैनिकों को उसी प्रकार वृत्ति मिलती है, जिस प्रकार अरब में मिलती है। इसके सिक्के भी हैं। इस पर राजा का सन् होता है, जो उसके सिंहासन पर बैठने से आरम्भ होता है। भारत के सब राजाओं से बढ़कर यहाँ के राजा अरबों से प्रेम रखते हैं। इनका विश्वास है कि इसी लिये इनके राजाओं की उमर बड़ी होती है। वह पचास पचास बरस तक राज्य करते हैं। उनके देश का नाम कुमकुम (कोंकण) है, जो समुद्र के किनारे है। आस पास के राजाओं से इसकी लड़ाइयाँ रहा करती हैं।" बल्हरा शब्द के शुद्ध रूप के सम्बन्ध में पहले अन्वेषकों में बड़ा मतभेद था; पर अब यह भली भाँति प्रमाणित हो गया है कि बल्हरा वास्तव में वल्लभराय का बिगड़ा हुआ रूप है और कुमकुम कोंकण का बिगड़ा हुआ रूप है। वल्लभराय का वंश यहाँ बहुत दिनों तक शासन करता रहा है।

वल्लभराय के बाद जज़र के बादशाह का उल्लेख है। जज़र वास्तव में गूजर है। गूजर राजा गुजरात के राजा थे। वह कहता है "इस राजा के पास सेनाएँ बहुत हैं। उसके पास जैसे घोड़े हैं, वैसे और किसी राजा के पास नहीं हैं। पर वह अरबों का बहुत बड़ा शत्रु है। इसका देश भी समुद्र के किनारे पर है। इसके पास पशु बहुत हैं। भारत के सब प्रदेशों में से यह प्रदेश चोरी से बहुत अधिक रक्षित है।"

"इसके बाद ताफ़न का बादशाह या राजा है। इसका देश बहुत थोड़ा है। यहाँ की स्त्रियाँ बहुत सुन्दर हैं। यहाँ का राजा सब से मेल रखता है और अरबों से प्रेम रखता है।" ताफ़न शब्द के शुद्ध रूप के सम्बन्ध में युरोपियन अन्वेषकों में मतभेद है। कुछ प्रतियों में ताफ़न के स्थान पर ताकन शब्द भी मिला है। कुछ लोगों ने इसे वर्त्तमान औरंगाबाद, दक्खिन के पास के पास बतलाया है और कुछ लोग इसे काश्मीर ले गए हैं। पर मेरी समझ में यह ताकन शब्द है और दक्खिन की खराबी है।

"इसके बाद रहमी का राजा है जिसके पास राजा बल्हरा और दूसरे राजाओं से अधिक सेना है। इसकी सेना के साथ पचास हज़ार हाथी रहते हैं। इसके देश में ऐसे सूती कपड़े होते हैं जैसे और किसी जगह नहीं होते।" कपड़ों की प्रशंसा के आधार पर समझा जाता है कि यह ढाके के पास किसी रामा नाम के राजा का राज्य था।

इसने भारत के बहुत से क़ानून आदि भी लिखे हैं। उदाहरणार्थ यह कि—"जब एक दूसरे पर कोई अभियोग चलाता है, तब अभियुक्त के सामने लोहा गरम कर के रखा जाता है और उस के हाथ पर पान के सात पत्ते रखकर ऊपर से गरम लोहा रख दिया जाता है। वह उसको लेकर आगे पीछे चलता है। फिर वह उस लोहे को गिरा देता है और उसके हाथ को खाल की एक थैली में रखकर उस पर राजा की मोहर कर दी जाती है। तीन दिन के बाद धान लाकर उसको इस लिये दिए जाते हैं कि वह उनको छीलकर उनमें से चावल निकाले। यदि उसके हाथ पर गरम लोहे का कोई प्रभाव नहीं होता, तो वह सच्चा समझा जाता है; और मुद्दई पर जुरमाना कर के वह धन राजकोष में रखा जाता है। कभी कभी गरम लोहे के बदले ताँबे के बरतन में पानी गरम किया जाता है और उसमें

लोहे की एक अँगूठी छोड़ दी जाती है। तब उससे कहा जाता है कि हाथ डालकर इसमें से अँगूठी निकालो।" सुलैमान कहता है कि मैंने कुछ लोगों को देखा है कि उनके हाथ बिलकुल अच्छी दशा में निकल आए। वह यह भी कहता है—"यहाँ मुरदे जलाए जाते हैं। उसमें चन्दन, कपूर और केसर डालते हैं और उसकी राख हवा में उड़ा देते हैं। यहाँ यह भी नियम है कि जब राजा मरता है, तब उसके साथ उसकी सब रानियाँ भी जलकर सती हो जाती हैं। पर यह केवल उनकी इच्छा पर है, इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है।" (पृ० ५०)

वह यह भी लिखता है—"यहाँ राज्य पैतृक होता है और उसमें युवराज होते हैं। इसी प्रकार यहाँ जो और पद या पेशे हैं, वे भी पैतृक हैं। यहाँ के सब राजा मिलकर एक बड़े राजा के अधीन नहीं रहते बल्कि हर एक का राज्य अलग अलग है। कोई किसी के अधीन नहीं है। लेकिन वल्लभराय (बल्हरा) सब राजाओं में बड़ा है।" (पृ० ५१)

"यहाँ विवाह करने से पहले लड़के और लड़कीवाले एक दूसरे के पास संदेसा भेजते हैं। फिर उपहार और भेंट आदि भेजते हैं। ब्याह में खूब ढोल और झाँझ आदि बजाते हैं; और जहाँ तक सामर्थ्य होती है, दान देते हैं।" (पृ० ५३) "सारे भारत में व्यभिचार का दंड दोनों अपराधियों के लिये वध है। इसी प्रकार चोरी का दंड भी वध है। भारत में इसका ढंग यह है कि चोरों को एक ऐसी नुकीली गोल लकड़ी पर बैठाते हैं। जो नीचे की ओर बराबर मोटी होती जाती है। वह लकड़ी नीचे से गले तक चली आती है।" (पृ० ५४)

आज यह सुनकर लोगों को आश्चर्य होगा कि भारत में भी लोग किसी समय लम्बी लम्बी दाढ़ियाँ रखते थे। हमारे इस यात्री का कहना

है—"यहाँ मैंने तीन तीन हाथ की दाढ़ियां देखीं।" (पृ० ५५) "जब कोई मरता है, तब उसके सम्बन्धी आदि दाढ़ी और मोछ मुँड़ाते हैं। जब कोई क़ैद किया जाता है, तब सात दिन तक उसको अन्न पानी कुछ भी नहीं देते। यहाँ हिन्दू न्यायाधीश बैठकर अभियोगों का निर्णय करते हैं। डाकू के लिये भी वध ही दंड है। पशु को जबह करके नहीं बल्कि किसी चीज से मारकर खाते हैं। हिन्दू लोग दोपहर को भोजन करने से पहले नहाते हैं। मुँह अच्छी तरह से साफ़ करते हैं। बिना मुँह साफ़ किए भोजन नहीं करते।" (पृ० ५६) एक अरब के लिये सब से अधिक आश्चर्य की बात यह है कि किसी देश में छुहारा न हो। हमारे इस अरब यात्री को भी इसी बात का आश्चर्य है। वह कहता है—"भारत में और सब फल तो हैं, पर छुहारे का वृक्ष नहीं है। और उनके पास एक फल ऐसा है, जो हमारे यहाँ नहीं है।" (पृ० ५६) हो न हो, यह आम होगा। भारत में अंगूर भी नहीं हैं। अनार अलबत्ता हैं। सजावट पसन्द करने वाले हमारे इस यात्री को इस बात का भी आश्चर्य है कि—"भारत में जमीन पर फ़र्श बिछाने की प्रथा नहीं है।" (पृ० ५४) "स्त्रियां रखने की संख्या भी यहाँ निश्चित नहीं है। जो जितनी चाहे, उतनी रखे। इनका भोजन चावल है।" (पृ० ५४) "चीन का धर्म वास्तव में भारत से ही निकला है। वे बौद्धों की मूर्त्तियाँ पूजते हैं। चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन भारत में है।" (पृ० ५७) "जानवरों में यहाँ घोड़े कम हैं।" (पृ० ५७)

"भारत की अपेक्षा चीन अधिक साफ़ सुथरा देश है। दोनों देशों में बड़ी बड़ी नदियाँ हैं। भारत में जङ्गल बहुत हैं और चीन पूरा बसा हुआ है। भारतवासियों का पहनावा यह है कि एक कपड़ा कमर से बाँधते हैं और दूसरा ऊपर डाल लेते हैं। स्त्रियाँ और पुरुष सब सोने और जवाहिरात के गहने पहनते हैं।"

(३) अबूज़ैद हसन सैराफ़ी; सन् २६४ हि०

फ़ारस की खाड़ी में सैराफ़ एक प्रसिद्ध बन्दर था! अबूज़ैद वहीं का रहने वाला था। उसकी पुस्तक में "सन् २६४ हि०" लिखा मिलता है। मसऊदी नामक यात्री सन् ३०० हि० में सैराफ़ी में उससे मिला था। यह भी एक अरब व्यापारी था। इसने सुलैमान का यात्रा विवरण पढ़कर पचीस तीस बरस बाद उसका परिशिष्ट लिखा था। वह भी सैराफ़ और भारत तथा चीन के मध्य व्यापार के लिये समुद्र यात्रा किया करता था। वह लिखता है—"चीन में राजनीतिक क्रान्तियाँ होने के कारण हमारे समय में वहाँ से अब लोगों के व्यापारिक कार बार बन्द हो गए हैं।" इसने इस बात का दावा किया है कि—"मैं पहला व्यक्ति हूँ जिसने यह पता लगाया है कि भारत और चीन का समुद्र ऊपर से फिरकर भूमध्य सागर में मिल गया है।" (पृ० ८८) यह सब से पहला अरब यात्री है जो जावा के महाराज नामक राजा का उल्लेख करता है और उसकी तुलना में कुमार देश (कन्या कुमारी) का नाम लेता है और कहता है—"यहाँ का राजा महाराज के अधीन है। यहाँ व्यभिचार और मद्य दोनों मना हैं। यहाँ इनका नाम निशान भी नहीं है।" (पृ० ९४) "भारत और चीन दोनों देशों में पुनर्जन्म का विश्वास इतना दृढ़ है कि लोग अपने प्राण दे देना एक बहुत ही साधारण काम समझते हैं।" (पृ० १०१) वह कहता है "वल्लभराय और दूसरे राजाओं के राज्य में कोई कोई ऐसे भी होते हैं जो जान बूझकर अपने आपको आग में जला डालते हैं।" (पृ० ११५) "यहाँ राजा बनाने के समय यह प्रथा है कि राजा के रसोई घर में चावल पकाए जाते हैं और तीन चार सौ आदमी अपनी इच्छा से वहाँ आते हैं। राजा के सामने एक पत्ते पर वह चावल रख दिए जाते हैं। राजा उसमें से थोड़ा सा उठाकर खाता है। फिर एक एक आदमी

राजा के सामने जाता है। राजा उनको थोड़े थोड़े चावल अपने सामने से देता जाता है। ये सब आदमी राजा के साथी होते हैं। जब राजा मरता है, तब ये सब भी उसके साथ उस दिन आग में जल जाते हैं।" हमारे यात्री ने इस प्रकार की कई घटनाओं का उल्लेख किया है। वह यह भी कहता है—"यहाँ पानी बहुत बरसता है और उसीसे यहाँ की खेती होती है।" (पृ० १२६) फिर वह बौद्ध भिक्षुओं का उल्लेख करता है, जो "नंगे बदन सिर और शरीर के बाल बढ़ाए, नाखून बढ़ाए, गले में मनुष्यों की खोपड़ियों की माला पहने देश देश फिरते रहते हैं। जब उनको भूख लगती है, तब वे किसी के दुवार पर खड़े हो जाते हैं।" (पृ० १२९) साथ ही उसने दक्षिण भारत की देवदासियों का भी उल्लेख किया है। (पृ० १२९) इसके बाद मुलतान की प्रसिद्ध मूर्त्ति का हाल लिखा है। यह नारियल वाले देश का उल्लेख करता है और उसके व्यापार का हाल भी लिखता है। अन्त में कहता है—"भारत के राजा लोग कानों में सोने के बाले पहनते हैं, जिनमें बड़े बड़े बहुमूल्य मोती रहते हैं। वे गले में माला पहनते हैं, जिनमें बहुमूल्य रत्न होते हैं। यही मोती और रत्न उनकी सम्पत्ति और कोष हैं। सेनाओं के सेनापति तथा दूसरे अधिकारी भी अपने अपने पद और मर्यादा के अनुसार इसी प्रकार के गहने पहनते हैं। यहाँ अमीर लोग आदमी की गरदन पर सवार होकर चलते हैं। उस आदमी के हाथ में छत्र होता है, जिसमें मोर के पर लगे होते हैं।" (पृ० १४५)।

इस यात्री को यह देखकर आश्चर्य होता है—"यहाँ दो आदमी भी एक साथ मिलकर नहीं खाते और न एक ही दस्तरख़ान पर खाते हैं; और इस प्रकार खाने को बहुत अनुचित समझते हैं। राजाओं और अमीरों के यहाँ यह प्रथा है कि नारियल की छाल का थाली की तरह का एक बरतन नित्य बनता है और वह हर एक आदमी

के सामने रखा जाता है। भोजन के बाद जूठा पदार्थ उस छाल की थाली के सहित फेंक दिया जाता है।" (पृ० १६४) वह यह भी साक्षी देता है—"यहाँ के प्रायः राजा अपनी रानियों से परदा नहीं कराते। जो कोई उनके दरबार में जाता है, वह उन्हें देख सकता है।" (पृ० १६७)

(४) अबू दल्फ मुसइर बिन मुहलहिल यंबूई सन् ३३१ हि०

यह बहुत बड़ा अरब यात्री है। इसका समय सन् ३३१ हि० से सन् ३७७ हि० तक निश्चित हुआ है। यह बग़दाद से तुर्किस्तान आया था और बुखारा के शाह नसर सामानी (मृत्यु सन् ३३१ हि०,) से मिला था। वहाँ से यह एक चीनी राजदूत के साथ चीन चला गया था। फिर चीन से चल कर तुर्किस्तान, काबुल, तिब्बत और काश्मीर होता हुआ मुलतान, सिन्ध और भारत के दक्षिणी समुद्र तट कोलम तक पहुँचा था। इसकी पुस्तक का कुछ अंश बरलिन में सन् १८४५ ई० में लैटिन अनुवाद के सहित छपा है। पर वह मेरे देखने में नहीं आया। हाँ, उस के कुछ संक्षिप्त उदाहरण इब्ने नदीम ने किताबुल् फ़िहरिस्त में याक़ूत ने मोजमुल् बुल्दान में और क़ज़वीनी ने आसारुल् बिलाद में दिए हैं। वे अंश मैं ने देखे हैं। इसने मुलतान के मन्दिर का विस्तृत विवरण दिया है। इसी प्रकार मदरास में पैदा होनेवाली और बननेवाली चीज़ों का भी वर्णन किया है। सम्भवतः यह पहला अरब यात्री है जो भारत में स्थल के मार्ग से आया था।

(५) बुज़ुर्ग बिन शहरयार सन् ३०० हि०

यह एक जहाज़ चलानेवाला था, जो अपने जहाज़ इराक़ के बन्दरगाह से भारत के समुद्रतटों और टापुओं से लेकर चीन और

जापान तक ले जाता और ले आता था। इसने अथवा इसके और साथियों ने जलमार्ग में जो जो बातें देखी सुनी थीं, वे सब अरबी भाषा में अजायबुल् हिन्द नामक पुस्तक में लिखी हैं, जिसमें दक्षिणी भारत और गुजरात की भिन्न भिन्न घटनाएँ और बातें मिलती हैं। इनमें से सब से अधिक महत्त्व की घटना एक हिन्दू राजा का कुरान का हिन्दी में अनुवाद करा के सुनना है। इसने भारत के नगरों में से कोलम, कल्ला, छोटा काश्मीर (पंजाब), सैमूर (चैमूर), सोपारा, ठट्ठा, थाना, मानकेर (महानगर जो वल्लभराय की राजधानी थी) और सीलोन या लंका का नाम लिया है। यहाँ के योगियों, उनकी तपस्याओं और अपने आपको मार डालने और जला डालने की बहुत सी कथाएँ लिखी हैं। इस पुस्तक में विलक्षण बात यह है कि स्थान स्थान पर व्यापारियों के लिये "बनियानिया" शब्द का व्यवहार किया गया है, जो स्पष्टतः हिन्दी शब्द बनिया है। उस समय छोटी नावों को अरब मल्लाह बारजा कहते थे। यह हिन्दी का बेड़ा शब्द है। इसका अरबी बहुवचन "बवारिज" है। पर इस पुस्तक में बवारिज शब्द का व्यवहार बार बार समुद्री डाकुओं के लिये भी किया गया है। डोली और डोले के अर्थ में हिंडोल शब्द का और पलंग के अर्थ में बलंज शब्द का भी व्यवहार हुआ है। हिन्दुओं की छूत छात का भी इस में उल्लेख है। (पृ० ११८)।

यह पुस्तक सन् १८८६ ई० में लीडन में छपी है। इसका फ्रान्सीसी अनुवाद तो इसीके साथ प्रकाशित हुआ है, पर अँगरेजी अनुवाद अभी इसी महीने में छप कर निकला है।

(६) मसऊदी ; सन् ३०३ हि०

मसऊदी, जिसका नाम अबुलहसन अली था, एक ऊँचे दरजे के इतिहास-लेखक, भूगोल-लेखक और यात्री के रूप में प्रसिद्ध है। इस-

ने अपनी आयु के पचीस वर्ष यात्रा और घूमने फिरने में बिताए हैं। इसने अपने जन्म-स्थान बग़दाद से यात्रा आरम्भ की थी और इराक़, शाम, आरमीनिया, रूम (एशियाये कोचक या एशिया माइनर) अफ्रीक़ा, सूडान और जंग के अतिरिक्त चीन, तिब्बत, भारत और सरन्दीप की यात्रा की थी। जल में इसने भारत, चीन, अरब, हब्श, फारस और रूम की नदियों की सैर की थी। इसके कई बड़े बड़े ग्रन्थों में से केवल दो ऐतिहासिक ग्रन्थ मिलते हैं। एक पुस्तक किताब उल् तम्बीह वल् अशराफ है जो संक्षिप्त है। दूसरी पुस्तक इससे बड़ी है जिसका नाम मुरूजुज़-ज़हब व मआदनुल् जौहर है। इस दूसरी पुस्तक में जानकारी की बहुत सी बातें भरी हैं। यह मानो इस्लाम का इतिहास है। पर इसकी भूमिका में सारे संसार की जातियों का सम्मिलित इतिहास है। उन्हींमें भारत भी है। इसने नदियों का वर्णन बहुत विस्तार के साथ किया है। इसके विवरण से यह एक विलक्षण बात मालूम होती है कि जिस प्रकार आजकल जहाजी कम्पनियों और उनके जहाजों के नाम होते हैं, उसी प्रकार उन दिनों भी जहाजों के मालिकों के नाम पर या भाइयों और बेटों के नाम सहित (एंड ब्रदर्स, एंड सन्स के ढंग पर) उन जहाजों के नाम रखे जाते थे, जो भारतीय महासागर में आते जाते थे। इसने सब से पहले रायद (रावी) नदी, गंगा और पंजाब की पाँचों नदियों का बार बार नाम लिया है (पृ० ३७२); और यह बतलाया है कि इनमें से हर एक नदी कहाँ कहाँ से निकली है। इसने दूसरे कन्नौज का भी उल्लेख किया है, जो प्रसिद्ध कन्नौज से अलग था, जो सिन्ध में था और जिस के राजा बौवरह के नाम से प्रसिद्ध थे और उसका स्थान बतलाया है। लिखा है—"तिब्बत के पहाड़ों से अधिक बड़े पहाड़ मैंने कहीं नहीं देखे"। (पृ० ३८९) यह स्पष्ट है कि इन पहाड़ों से हिमालयका अभिप्राय है। यह भी लिखा है

"भारत में बहुत सी बोलियाँ बोली जाती हैं।" (पृ० १६३ और ३८१) विलक्षण बात यह है कि इसने कन्धार को रहबूतों (राजपूतों) का देश बतलाया है। (पृ० ३७२) खम्भात में वह सन् ३०३ हि० में पहुँचा था। वह उस समय राजा वल्लभराय के अधीनस्थ एक ब्राह्मण बनिए के शासन में था। (पृ० २५४) वह सन् ३०० के बाद अपना मुलतान पहुँचना प्रकट करता है और वहाँ के मुसलमान अरब बादशाह और मन्त्रियों के नाम बतलाता है। (पृ० ३७६)।

मसऊदी ने अपनी पुस्तक मुरुजुज़-ज़हब सन् ३३२ हि० में अपनी यात्रा समाप्त करने के उपरान्त लिखी थी। यह पुस्तक पेरिस में फ्रान्सीसी अनुवाद के सहित नौ खंडों में प्रकाशित हुई है और मिस्र में कई बार प्रकाशित हो चुकी है।

(७) इस्तख़री; सन् ३४० हि०

अबू इसहाक इब्राहीम बिन मुहम्मद फारसी साधारणतः इस्तख़री के नाम से प्रसिद्ध है। यह बग़दाद के महल्ले कर्ख का रहनेवाला था। यह बहुत बड़ा यात्री था और इसने एशिया के प्रायः देशों की यात्रा की थी। भूगोल के सम्बन्ध में इसकी दो पुस्तकें हैं—एक किताबुल् अक़ालीम और दूसरी किताबुल मसालिकुल् ममालिक। पहली पुस्तक सन् १८३९ ई० में गोथा में और दूसरी पुस्तक सन् १८७० ई० में लीडन में छपी है। इसमें अरब और ईरान के बाद मावरा उन् नहर या ट्रान्स काकेशिया, काबुलिस्तान, सिन्ध और भारत का उल्लेख है। इसमें भारतीय महासागर का भी, जिसे वह पारस महासागर कहता है, विस्तार पूर्वक वर्णन है। वह सन् ३४० हि० (सन् ९५१ ई०) में भारत आया था। वह अपने समय के इब्न हौकल नामक यात्री से यहीं मिला था। उसने भी वल्लभराय के महा-

नगर का उल्लेख किया है। पर जान पड़ता है कि उस समय उसके राज्य के कई टुकड़े हो चुके थे। वह लिखता है कि इसके अधीन बहुत से राजा हैं। इसके सिवा इसने मुलतान, मन्सूरा, समन्द, अलोर और सिन्धु नद का भी उल्लेख किया है। इसका काम केवल देशों का हाल लिखना नहीं था, बल्कि संसार का मानचित्र या नक्शा तैयार करना था, जिसमें सिन्ध का नक्शा भी है।

(८) इब्न हौक़ल ; सन् ३३१–५८ हि०

(सन् ९४३-७९ ई०)

यह बग़दाद का एक व्यापारी था। सन् ३३१ हि० (सन् ९४३ ई०) में यह बग़दाद से चला था और युरोप, अफ्रीक़ा तथा एशिया के देशों में इसने भ्रमण किया था। स्पेन और सिसली से लेकर भारत तक की जमीन इसने छान मारी। इसने भी देशों के नक़्शे बनाए थे; पर दुःख है कि इसकी जो पुस्तक छपी है, उसमें ये नक़्शे नहीं दिए गए हैं। लेकिन इलियट साहब ने इसकी पुस्तक की एक हाथ की लिखी रद्दी प्रति अवध के शाह के पुस्तकालय में देखी थी। उसी प्रति से लेकर उन्होंने अपनी पुस्तक में सिन्ध का वह नक़्शा लगा दिया है। वह नक़्शा अशुद्ध होने पर भी कदाचित् भारत के किसी प्रदेश का पहला भूगोल सम्बन्धी नक्शा है, जो संसार में बना था। इस नक़्शे में गुजरात से लेकर सीस्तान तक की बस्तियों के स्थान दिखलाए गए हैं। यह पहला अरब यात्री और भूगोल-लेखक है जिसकी पुस्तक में भारत की पूरी लम्बाई चौड़ाई बतलाने का प्रयत्न किया गया है। वह कहता है—"भारत के महादेश में सिन्ध, काश्मीर और तिब्बत का भाग मिला हुआ है। (पृ० ९) "भारत के पूरब में फ़ारस का सागर है और उसके पच्छिम और दक्खिन मुसलमानों के देश हैं और उसके उत्तर में चीन है।" (पृ० ११) भारतवर्ष

की लम्बाई बहुत है। मकरान से मन्सूरा, बुद्ध और सारे सिन्ध प्रान्त से लेकर, यहाँ तक कि कन्नौज तक उसका अन्त होता है। फिर उससे आगे बढ़कर तिब्बत तक चार महीनों का रास्ता है। चौड़ाई फ़ारस के सागर से लेकर क़न्नौज तक तीन महीनों का रास्ता है।" चाहे यह वर्णन कितना ही रद्दी हो, पर भारत की सीमा नियत करने का यह पहला प्रयत्न है।

(९) बुशारी मुक़द्दसी ; सन् ३७५ हि०

शम्सुद्दीन मुहम्मद बिन अहमद बुशारी शाम देश के ज़ेरूसलम का रहनेवाला था। इसने अपनी पुस्तक सन् ३७५ हि० में समाप्त की थी। इसने अपने समय के केवल इस्लामी संसार की यात्रा की थी। यह भारत भी आया था, पर सिन्ध से आगे नहीं बढ़ा था। इसकी पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें देशों के नक्शे थे, पर वे नक़्शे छपी हुई पुस्तक में नहीं हैं। इसकी पुस्तक का नाम अहसनुत तक़ासीम फ़ी मारफतिल् अकालीम है। पुस्तक का अन्तिम प्रकरण सिन्ध के सम्बन्ध में है। हमारे सामने उसका वह दूसरा संस्करण है जो सन् १९०६ ई० में लीडन में छपा था।

मुक़द्दसी की पुस्तक की एक और विशेषता यह है कि उसने महादेशों का विभाग देशों या प्रान्तों में और देशों या प्रान्तों का विभाग नगरों में किया है। फिर हर एक का अलग अलग वर्णन किया है और हर जगह के व्यापार, उपज, कारीगरी, धर्मों और सिक्कों का हाल लिखा है। इस लिये इस पुस्तका का विशेष महत्व है। इसी प्रकार इसने सिन्ध का हाल १४ पृष्ठों में लिखा है।

(१०) अलबेरूनी; सन् ४०० हि०

किताबुल् हिन्द नामक पुस्तक से लोग इतने अधिक परिचित हैं कि उसका विशेष वर्णन करने की अवश्यकता नहीं है। केवल

इतना कहना बहुत है कि अलबेरूनी जो असल में ख्वारिज्म (खीवा) का रहनेवाला था, जब भारत में आया, तब महमूद गजनवी की चढ़ाइयाँ आरम्भ नहीं हुई थीं। पर इसने अपनी पुस्तक महमूद के दो बरस बाद लिखी है। इसने किताबुल् हिन्द के सिवा और भी बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से कानून मसऊदी विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है और जो अभी तक छपी नहीं है। उस में भारत के बहुत से नगरों के नाम लिखे हैं और उनकी लम्बाई चौड़ाई भी निश्चित की है।

किताबुल् हिन्द मूल अरबी में भी छप चुकी है और फिर उसका अँगरेज़ी और हिन्दी अनुवाद भी छप चुका है। इसमें भारत का पूरा भूगोल विस्तार पूर्वक दिया हुआ है।

(११) इब्न बतूता, सन् ७७९ हि० (१३१७ ई०)

यह यात्री मराकश या मरक्को का रहनेवाला था और मुहम्मद तुग़लक़ के समय में भारत में आया था। उसने इस देश का चप्पा चप्पा देखा। उसने अपने अजायबुल् अस्फार नामक यात्रा-विवरण में अपनी देखी हुई बातों का जैसी सुन्दरता से वर्णन किया है, वह सभी लोग जानते हैं। हमारे लिये उसके वर्णन का सब से अधिक महत्व का अंश वह है जिस में दक्षिण भारत के उस समय का वर्णन है, जिस समय मुसलमानों ने उसे जीता नहीं था।

(१२) दूसरे इतिहास लेखक और भूगोल-लेखक

ऊपर के पृष्ठों में केवल उन महाशयों का वर्णन किया गया है जो आप भारत में आए थे। लेकिन इनके सिवा बहुत से ऐसे अरब भूगोल-लेखक या इतिहास-लेखक भी हैं जिन्होंने भारत का हाल लिखा है। इनमें से एक इब्न रस्ता (सन् २९० हि०) और दूसरा कदामा बिन जाफर (सन् २९६ हि०) है। फिर बिलाज़ुरी (सन् २७९

हि० ८९२ ई०) है जिसका फुतूहूल् बुल्दान नामक ग्रन्थ बहुत बहुमूल्य है। इसके सिवा इब्न नदीम बग़दादी (सन् ३७० हि०) की किताबुल् फ़ेहरिस्त नामक पुस्तक भी है।

ये तो आरम्भ के लोग हैं, और अन्त के लोगों में सूफ़ी दमिश्की (सन् ७२८ हि०, १३२६ ई०) है जिसकी पुस्तक अजायबुल् बर्र वल् बहर है। सिसली का अरब भूगोल-लेखक इदरीसी (सन् ५६० हि० ११६५ ई०) है। ईरान का जकरिया कजवीनी (सन् ६८२ हि० १२८३ ई०) है जिसकी पुस्तक का नाम आसारुल् बिलाद है। एक और अबुल् फ़िदा (सन् ७३२ हि० १३३१ ई०) है जिसकी पुस्तक तकवीमुल् बुल्दान है। एक याकूत (सन् ६२७ हि० १२२९ ई०) है जिसकी बहुत बड़ी पुस्तक मुअजमुल् बुल्दान है। मिस्र का नवीरी (सन् ७३३ हि० १३३१ ई०) भी है जिसकी पुस्तक नहायतुल् रब फी अफनूनुल् अदब है; और शहाबुद्दीन उमरी (सन् ७४८ हि० ; १३४६ ई०) है जिसकी पुस्तक का नाम मसालिकुल् अब्सार व ममालिकुल् अम्सार है।

इदरीसी के कुछ अंश और नहायतुल् अरब के ५ खंड और मसालिकुल् अब्सार का केवल एक खंड मिस्र में छपा है। इन सब में भारत का कुछ न कुछ हाल है। इन सब पुस्तकों में भारत के सम्बन्ध की जो बातें हैं, यदि वे सब इकट्ठी कर दी जायँ, तो इलियट का अधूरा काम बहुत कुछ पूरा हो जाय और मध्य काल के भारत के सम्बन्ध की बहुत सी नई बातें हमारे सामने आ जायँ। युरोपियन इतिहास-लेखकों ने प्राचीन भारत का वर्णन करने में यूनानी वर्णनों को बहुत महत्व दिया है और उसकी बालकी खाल निकालने और झूठ को सचकर दिखलाने और एक एक नाम का ठीक पता लगाने में बहुत अधिक परिश्रम किया है। यदि वे अरबों के विवरणों पर थोड़ा भी परिश्रम करते, तो यूनानी और फारसी इतिहासों के बीच जो कई शताब्दियों का गड्ढा पड़ता है, वह बहुत कुछ पट जाता।

व्यापारिक सम्बन्ध

अरबों का देश तीन ओर से समुद्रों से घिरा हुआ है। उस देश में जितने आदमी बसते हैं, उनके हिसाब से वहाँ उतनी उपज नहीं होती। ऐसा देश स्वाभाविक रूप से व्यापारी होगा। फिर सौभाग्य से उसके चारों ओर संसार के बड़े बड़े देश बसे हैं। एक ओर इराक़, दूसरी ओर शाम, तीसरी ओर मिस्र और अफ़्रीक़ा, सामने भारत, एक ओर ईरान है। इन सब देशों के साथ अरब-वालों के पुराने प्रत्यक्ष सम्बन्ध थे। यहाँ हमारा केवल भारत से सम्बन्ध है। लोहित सागर, भारतीय महासागर और फारस की खाड़ी पर बहरीन, उमान, हजरमौत, यमन और हिजाज आदि बसे हुए हैं और स्वभावतः इन्हींको इस समुद्री व्यापार का अवसर मिला था। इससे पहले यह दिखलाया जा चुका है कि अरबलोग भारत के समुद्र-तटों पर आया जाया करते थे और भारत के समुद्र-तटों से जहाज चलकर यमन के बन्दरगाह में पहुँचते थे और वहाँ से उनका सामान ऊंटों पर लद कर स्थल मार्ग से लोहित सागर के किनारे किनारे शाम और मिस्र जाता था और वहाँ से रूम सागर होकर युरोप चला जाता था।

हमको जब से संसार के व्यापारिक विवरणों का ज्ञान है, तब से हम अरबों को कारबार में लगा हुआ पाते हैं। और इसी मार्ग से उनके व्यापारक दलों को शाम और मिस्र तक आते जाते देखते हैं। इस समय हमारे पास संसार की सब जातियों के इतिहास की सब से पुरानी पुस्तक तौरात या तौरेत है। उसमें हज़रत इब्राहीम के दो ही पीढ़ी बाद हज़रत यूसुफ़ के समय में हम इस व्यापारी दल को इसी मार्ग से जाता हुआ पाते हैं। यह वही दल है जो हज़रत यूसुफ़ को

मिस्र पहुँचाता है (जन्म ; २५ ; ३७) । इस मार्ग का उल्लेख यूनानी इतिहास लेखकों ने भी किया है। तात्पर्य यह कि हज़रत यूसुफ़ के समय से लेकर मार्की पोलो और वास्को डि गामा के समय तक भारत के व्यापार के मालिक अरब लोग ही रहे ।[1]

जब यूनानियों ने मिस्र पर अधिकार कर लिया, तब उन्होंने इस व्यापार को सीधे अपने हाथ में ले लिया; क्योंकि मिस्र से शाम तक का मार्ग उनके लिये शान्ति-पूर्ण था। इस प्रकार अरबों के व्यापार की वह पहली रौनक नहीं रह गई। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में "अरब" नामक निबन्ध का लेखक लिखता है—

"उन दिनों दक्षिण-पश्चिमी अरब (हजरमौत और यमन) के सम्पन्न होने का सब से बड़ा कारण यह था कि मिस्र और भारत के बीच का व्यापारिक द्रव्य पहले समुद्र के मार्ग से यहाँ आता था और फिर स्थल के मार्ग से पश्चिमी समुद्र-तट पर जाता था। उस समय यह व्यापार बन्द हो गया, क्योंकि मिस्र के बतलीमूसी बादशाहों ने भारत से इसकन्दरिया तक एक सीधा मार्ग बना लिया था।"[2]

जान पड़ता है कि इस अभिप्राय से यूनानियों ने सकोतरा टापू पर अधिकार कर के वहाँ अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था, जिसका स्मारक मुसलमान अरब मल्लाहों को वहां बाद में भी दिखलाई दिया।[3]

पर यह प्रकट होता है कि यह व्यापार पूरी तरह से यूनानियों के हाथ में नहीं चला गया था ; क्योंकि महात्मा मसीह से दो शताब्दी

---

[1] एलफिन्स्टन कृत भारत का इतिहास; दसवाँ प्रकरण ; "व्यापार"।

[2] एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका ११ वां सं० खंड २ ; पृ० २६४ ।

[3] अबू ज़ैद का यात्रा-विवरण; पृ० १३४ ; (पैरिस में प्रकाशित) ।

पहले आगा थरशीदस नामक यूनानी इतिहास लेखक लिखता है "जहाज भारत के समुद्र-तट से सबा (यमन) आते हैं और वहाँ से मिस्र पहुँचते हैं ।"[१]

इसी प्रकार आर्टीमिडोरस, जो ईसा से सौ वर्ष पहले हुआ था, कहता है—"सबा (यमन की एक जाति) लोग आस पास के लोगों से व्यापार की वस्तुएँ मोल लेते हैं और अपने पड़ोसियों को देते हैं ; और इसी प्रकार हाथों हाथ वे वस्तुएँ शाम और टापू तक पहुँच जाती हैं ।"[२]

इस प्रकार के और दूसरे विवरणों से भी यह सिद्ध है कि अरब लोग उस समय बिलकुल मिट नहीं गए थे, बल्कि यूनानियों के साथ साथ उनका काम भी चला चलता था ?

भारत और अरब का दूसरा मार्ग, जो फ़ारस की खाड़ी में से होकर था, सदा खुला रहा ; और समुद्र-तटों के पारसी और अरब जल और स्थल मार्ग से सदा अपनी वस्तुएँ लाते और ले जाते रहे । वे भारत के समुद्र-तटों के सभी स्थानों और भारतीय महासागर के एक एक टापू को देखते भालते बंगाल और आसाम होकर चीन चले जाते थे और फिर वहाँ से उसी मार्ग से लौट आते थे ।

भारत और युरोप के बीच के मार्ग का पहले भी बहुत महत्व का था और अब भी है । इसी मार्ग के कारण इतिहास में बहुत बड़े बड़े परिवर्तन हुए हैं । पहले कहा जा चुका है कि किसी समय यह मार्ग

---

[१] डन्कर (Duncker) कृत History of Antiquities पहला खंड, पृ० ३१०-१२

[२] एल्फिन्स्टन साहब ने भी बहुत जाँच करके यही परिणाम निकाला है । देखो उनका बनाया हुआ "भारत का इतिहास", पहला खंड, पृ० १८२ (सन् १९१६ ई० वाला संस्करण ।)

केवल अरबों के हाथ में था। महात्मा ईसा से प्रायः तीन सौ बरस पहले जब यूनानियों ने मिस्र पर अधिकार किया, तब इस समुद्री मार्ग पर भी उनका अधिकार हो गया। ईसा के छः सौ बरस बाद जब इस्लाम धर्म चला और अरबों की उन्नति हुई, तब ईसवी छठी शताब्दी में वे लोग मिस्र से लेकर स्पेन तक छा गए और साथ ही रूम सागर पर भी उनका अधिकार हो गया। रूम सागर के क्रीट और साइप्रस आदि महत्वपूर्ण टापुओं को भी उन्होंने अपने अधीनस्थ प्रदेशों में मिला लिया। इसका फल यह हुआ कि संसार में व्यापार करने की सब से बड़ी सड़क अरबों के हाथ में आ गई और कई शताब्दियों तक उसपर उनका अधिकार रहा। ईसवी चौदहवीं शताब्दी में युरोप की ईसाई जातियों ने रूमी प्रदेशों से अरबों को निकालने का पूरा प्रयत्न किया। पर ठीक जिस समय वे लोग स्पेन और उत्तरी अफ्रीक़ा में सफल हो रहे थे और रास्ता साफ कर रहे थे, उसी समय एशियाई कोचक से तुर्कों ने सिर निकाला और फिर रूम सागर का यह मार्ग मुसलमानों के ही हाथ में रह गया। इस कठिनता ने युरोप की जातियों को भारत का कोई दूसरा मार्ग ढूंढ निकालने के लिये विवश किया। इसी प्रयत्न का यह पल है कि उत्तरी अफ्रीक़ा और रूम सागर को छोड़ कर दक्षिणी अफ्रीक़ा के मार्ग से भारत का पता लगाया गया। इस मार्ग में पहले तो डच और पुर्त्तगाली ही थे, पर बाद को अंगरेज़ और फ़्रान्सीसी भी मिल गए। भारत का जो व्यापार अरब के हाथ में था, अब उसे ये लोग उनसे लड़ भिड़कर छीनने लगे। इस छीना झपटी में भारत के समुद्र-तटों पर पश्चिमवालों और पूरबवालों में एक बड़ी समुद्री लड़ाई भी हुई। इस लड़ाई में पूरबवालों की हार हुई और यही हार मानो पूरबवालों की आगे चलकर होनेवाली सब हारों का श्रीगणेश प्रमाणित हुई। इस लड़ाई में मिस्री, अरबी और दक्खिन के भिन्न भिन्न हिन्दू और मुसलमान राज्यों के लड़ाई के जहाज़ों के बेड़े

एक साथ मिलकर युरोप की समुद्री यात्रा करनेवाली जातियों के जहाज़ों से लड़े थे। इस हार का यह फल हुआ कि प्रायः उसी समय से आज तक भारत के सभी टापुओं और समुद्र-तटों का व्यापार युरोपवालों के हाथ में चला गया। मदरास के अरब व्यापारियों के (जो मोपला कहलाते हैं और जो उस समय भारत के उस कोने और टापुओं के व्यापार के मालिक थे) जहाज़ों को सब प्रकार से नष्ट कर दिया गया।

इसके बाद भी रूम सागर के पासवाले मार्ग पर अधिकार करने का विचार युरोपवालों के मन से दूर नहीं हुआ। उस मार्ग को और छोटा करने के लिये लोहित सागर और रूम सागर के बीच का सँकरा स्थल खोद कर स्वेज़ की नहर निकाली गई। अब मिस्र और स्वेज़ पर अधिकार रखना आवश्यक समझा गया, जिसमें युरोप और भारत के बीच का यह महत्व पूर्ण ऐतिहासिक मार्ग सदा के लिये रक्षित हो जाय।

ये ऐसी घटनाएँ हैं जो भारत और उसके टापुओं पर युरोपियन जातियों के व्यापारियों के आने जाने के सम्बन्ध में भारत के हर एक इतिहास में लिखी हुए मिलती हैं। इन घटनाओं से अरबों और हिन्दुओं के व्यापारिक सम्बन्धों के इतिहास के भिन्न भिन्न अंग प्रकट होते हैं।

भारत और अरब का दूसरा व्यापारिक मार्ग, जिसका सम्बन्ध फ़ारस की खाड़ी से था, सदा से बराबर अरबों के ही हाथ में दिखाई पड़ता है। हाँ, उमान, हजरमौत और इराक़ में भिन्न भिन्न राज्यों के अदलने बदलने से और बन्दरगाहों के टूटने और बनने से व्यापार का केन्द्र एक नगर से दूसरे नगर में या एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह में हटता बढ़ता रहा।

उबला बन्दरगाह

सन् १४ हि० में इराक़ पर अरबों का अधिकार होने से पहले ईरानियों के समय में भारत के लिये फ़ारस की खाड़ी का सब से बड़ा

और प्रसिद्ध बन्दरगाह उबला था जो बसरे के पास था। व्यापार के लिये उबले और भारत के बीच इतना अधिक आना जाना होता था कि अरब लोग उबले को भारत का ही एक टुकड़ा समझते थे। चीन और भारत से आनेवाले जहाज़ यहीं ठहरते थे और यहीं से चलते थे।[१]

भारत के व्यापार और उपज का अरबों की दृष्टि में कितना अधिक महत्व था, इसका अनुमान इस बात से हो सकता है कि एक बार हज़रत उमर ने एक अरब यात्री से पूछा था कि भारत के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है ? उसने तीन संक्षिप्त वाक्यों में इसका ऐसा मार्मिक उत्तर दिया, जिससे अधिक मार्मिक और कोई उत्तर हो ही नहीं सकता। उसने कहा था—"उसकी नदियाँ मोती हैं, पर्वत लाल हैं और वृक्ष इत्र हैं।"[२]

इराक़ को जीतने के बाद हज़रत उमर को चिन्ता हुई कि इराक़ का यह बन्दरगाह भी अरबों के हाथ में आ जाय। इस लिये सन् १४ हि० में आपने उसपर अधिकार करने की आज्ञा दी और लिखा—"इसको मुसलमानों का व्यापारिक नगर बना दिया जाय।"[३] उस समय से लेकर सन् २५६ हि० तक यह बन्दरगाह बना रहा।[४] ज़ंगियों की लड़ाई में सन् २५६ हि० में यह नष्ट हो गया। इराक़ का दूसरा प्रसिद्ध बन्दरगाह अरबों ने सन् १४ हि० में बसरे के नाम से बनाया था;

---

[१] उबला का विवरण जानने के लिये देखो अल् अख़बारुत्तवाल ; अबू हनीफ़ा दीनवरी कृत ; सन् २२८; हि० पृ० १३३ (लीडन) और मुअजमुल् बुल्दान ; याकूत रूमी कृत खं० १, पृ० ८८ खं० २ पृ० १६६ (मिस्र) और तारीख़ बसरा नोमान आज़मी (बग़दाद) पृ० ११ की पाद टिप्पणी।

[२] अल् अख़बारुत्तवाल दीनवरी पृ० ३२६ (लीडन)

[३] मुअजमुल् बुल्दान ; याकूत खंड २ ; पृ० १६६ (मिस्र)।

[४] तारीख़े बसराअल् आजमी (बग़दाद) पृ० ११ की पाद टिप्पणी।

पर वह उबला की व्यापारिक मर्यादा को नष्ट न कर सका। इसका कारण कदाचित् यह हुआ कि बसरा व्यापारिक केन्द्र होने के बदले अरबों का सामरिक और राजनीतिक केन्द्र अधिक हो गया। लेकिन इतने पर भी भारत, चीन और हब्श के व्यापार का रुख धीरे धीरे उधर होने गला और राजनीतिक परिवर्त्तन आदि होने पर भी उसकी बहुत उन्नति हो गई। विशेषतः हिजरी पहली शताब्दी के अन्त में सिन्ध पर अरबों का अधिकार हो जाने के कारण यह भारत आने जाने का केन्द्र बन गया। आनेवाली नावों और जहाज़ों का महसूल इतना बढ़ गया था कि वह बग़दाद की ख़िलाफ़त की आय का बहुत बड़ा साधन हो गया। अन्त में सन् ३०६ हि० में मुक़तदिरबिल्लाह के समय में वहाँ की वार्षिक आय २२५७५ दीनार रह गई थी।

सैराफ़

इसके बाद भारत के लिये फारस की खाड़ी का सब से बड़ा बन्दरगाह सैराफ हुआ। यह बसरे से सात दिन के रास्ते पर ईरानी सीमा में था। हिजरी तीसरी शताब्दी में इसके प्रताप का सितारा उगा था। यह बड़े बड़े जहाज़ियों और समुद्री व्यापारियों का अड्डा बन गया। भारत और चीन के लिये यहीं से जहाज़ चलते थे। और इन देशों से जो जहाज़ आते थे, वे भी यहीं ठहरते थे। हिजरी तीसरी शताब्दी में इस बन्दरगाह की जो अवस्था थी, उसका पता अबूज़ैद के वर्णन से लगता है। वह कहता है—"यह फ़ारस का बहुत बड़ा बन्दरगाह है और बहुत बड़ा नगर भी है। जहाँ तक निगाह काम करती है, केवल इमारतें ही इमारतें दिखलाई पड़ती हैं। यहाँ खेती नहीं होती, बल्कि सब चीज़ें समुद्र के मार्ग से बाहर से आती हैं।"[१]

---

[१] मुअजमुल् बुल्दान ; याक़ूत ; खंड ४ पृ० १६३ (मिस्र)।

हिजरी चौथी शताब्दी के मध्य में बुशारी मुक़द्दसी ने जब इसको देखा था, तब इसका वर्णन इस प्रकार किया था—"मैंने यहां की इमारतों से अधिक सुन्दर इमारतें सारे इस्लामी संसार में नहीं देखीं। ये इमारतें साल की लकड़ी और ईंटों से बनी हैं और बहुत ऊंची हैं। एक एक घर का मूल्य एक एक लाख दरहम से अधिक है।"[१]

इसी समय के लगभग इस्तख़री ने भी इसको देखा था। वह कहता है—"यह विस्तार में शीराज़ के बराबर है। इसकी इमारतें साल की लकड़ी की हैं। यह लकड़ी अफ़्रिक़ा के ज़ंगिस्तान प्रदेश से समुद्र के मार्ग से आती है। नदी के किनारे कई कई खंडों के मकान हैं। यहाँ के निवासी इमारत पर बहुत धन लगाते हैं, यहाँ तक कि एक एक व्यापारी एक एक मकान पर तीस तीस हज़ार अशरफ़ी खर्च करता है। सामने बाग होते हैं। पानी पहाड़ से आता है।[२]"

बुशारी का कथन है कि दैलमियों के राज्य की किसी क्रान्ति और भूकम्प के कारण सन् ३२६ हि० में यह नगर नष्ट हो गया था। इसके बाद लोगों ने इसे फिर से बसाना चाहा[३]; और बसाया भी; और कुछ दिनों तक उनको सफलता भी हुई। याक़ूत हमवी ने हिजरी छठी शताब्दी के अन्त में इसे देखा था। उसका कहना है—"इस समय वहाँ टूटे फूटे चिह्नों के सिवा और कुछ भी नहीं है। कुछ दरिद्र लोग वहाँ बसे हुए हैं। इसके नष्ट होने का कारण यह हुआ कि इब्ने उमैरा ने कैस नामक टापू को बसा कर इसका महत्व नष्ट कर दिया।"

---

[१] अहसनुत्तक़ासीम (लीडन); पृ० ४२६

[२] मुअजमुल् बुल्दान ; याक़ूत ; खंड ४ ; पृ० १६३ ; (मिस्र) के आधार पर।

[३] अहसनुत् तक़ासीम ; पृ० ४६४ ।

कैस

इसे कैस या कैश कहते हैं। यह फारस की खाड़ी में उमान के पास एक टापू था इसने सैराफ को मिटा कर भारत और चीन के व्यापार पर अधिकार कर लिया। इसका हाकिम उमान का बादशाह था। याक़ूत ने हिजरी छठी शताब्दी में जब इस को देखा था, तब यह छोटा सा टापू भारत के व्यापार के कारण बहुत सुन्दर और हरा भरा हो गया था। भारत के सब जहाज़ यहीं आकर ठहरते थे। जहाज़ों के इस आने जाने का परिणाम यह हुआ था कि याक़ूत कहता है—"भारत के राजाओं में इस छोटे से टापू के अरब हाकिम की मान-मर्यादा बहुत अधिक है; क्योंकि उसके पास जहाज़ और नावें बहुत हैं।"[१] क़ज़वीनी (सन् ६८६ हि०) कहता है—"कैस भारत के व्यापार की मंडी और उसके जहाज़ों का बन्दर है। भारत में जो अच्छी चीज़ होती है, वह यहाँ लाई जाती है।"[२]

भारत के बन्दरगाह

भारत के बन्दरगाहों के नाम हमको हिजरी पहली शताब्दी से मिलने लगते हैं और तीसरी शताब्दी तक बहुत अधिक बढ़ जाते हैं और अन्त तक वही बने रहते हैं। इनमें से अरबों के लिये फ़ारस की खाड़ी के बाद सबसे पहले बलोचिस्तान का तेज नामक बन्दरगाह और फिर सिन्ध का देवल नामक बन्दरगाह था। गुजरात में थाना खम्भात, सोपारा, जैमूर और मदरास में कोलममली, मलाबार और कन्या कुमारी थी। इसके आगे वे लोग या तो टापुओं में चले जाते

---

[१] मुअजमुल् बुल्दान; याक़ूत; खंड ७; पृ० १२६ (मिस्र) और खंड ४; पृ० १६३।

[२] आसारुल् बिलाद; क़ज़्वीनी; (युरोप में मुद्रित) पृ० १६१।

थे और बंगाल होकर फिर वहाँ से कामरून (कामरूप) अर्थात् आसाम चले जाते थे। फिर वहाँ से चीन जाते थे। अरबी भूगोलों में इन्हीं बन्दरगाहों के नाम आया करते हैं। इब्न हौक़ल ने ईसवी दसवीं शताब्दी में सिन्ध के बन्दरगाह देवल के सम्बन्ध में लिखा है—"यह व्यापार की बहुत बड़ी मंडी है और यहाँ अनेक प्रकार के व्यापार होते हैं।"[1]

समुद्र के व्यापार मार्ग

हिजरी तीसरी शताब्दी में सुलैमान सौदागर इन जहाज़ों के मार्ग इस प्रकार बतलाता है—"पहले बसरे और उमान से सब पदार्थ सैराफ में आ जाते हैं और यहाँ सैराफ में वह जहाज़ों पर लादे जाते हैं। यहीं से पीने का मीठा पानी भी साथ ले लिया जाता है। जब यहाँ से लंगर उठता है, तब मस्कत पहुँच कर लंगर डालते हैं। यहाँ से फिर पीने का पानी लेते हैं। इसके बाद जहाज़ यहाँ से भारत के लिये चल पड़ते हैं। और एक महीने में कोलममली पहुँचते हैं। वहाँ से चीन जाने वाले जहाज़ चीन चले जाते हैं। कोलममली में जहाज़ बनाने और उनकी मरम्मत करने का कारख़ाना है। वहीं से मीठा पानी भी ले लेते हैं। चीनी जहाज़ों से इसका महसूल एक हज़ार दरहम और दूसरे जहाज़ों से दस दीनार से लेकर एक दीनार तक लेते हैं।"[2]

सुलैमान के पचीस वर्ष बाद अबूज़ैद सैराफी कहता है—"भारत के दाहिने हाथ उमान को जहाज़ पहुँचता है। वहाँ से अदन, अदन से जद्दा, जद्दा से जार (शाम का समुद्र-तट) और फिर लाल या

---

[1] इब्न हौकल का यात्रा-विवरण ; पृ० २३० (युरोप में मुद्रित)

[2] सुलैमान सौदागर का यात्रा-विवरण ; (पेरिस में मुद्रित सन् १८११ वाला संस्करण) पृ० १५-१६।

लोहित सागर पहुँचता है। यहाँ समुद्र समाप्त हो जाता है। इसके बाद बर्बर के तट पर समुद्र फिरता है और हब्शा जाता है। जब सैराफ वालों के जहाज़ जद्दा पहुँचते हैं, तब वहाँ से आगे नहीं बढ़ते। मिस्र जाने वाले जहाज़ यहाँ तैयार रहते हैं। सैराफ़ के जहाज़ों से सब सामान उतार कर मिस्री जहाज़ में लादे जाते हैं और वे उनको लाल सागर ले जाते हैं। सैराफ वाले भारत और चीन के समुद्रों से अधिक परिचित हैं। इसके सिवा भारत और चीन के समुद्री व्यापार में जो लाभ है, वह लाल या लोहित सागर के व्यापार में नहीं है।"[१]

इब्न खुर्दाज़बा, जो तीसरी शताब्दी के आरम्भ में था, जद्दा के व्यापार के सम्बन्ध में कहता है—"यहाँ सिन्ध, भारत, जंजीबार, हब्श और फ़ारस की वस्तुएँ मिलती हैं।"[२] साथ ही वह बसरे से भारत के मार्ग और दूरियों का विवरण इस प्रकार देता है—

बसरे से खारक टापू	५० फरसंग
खारक टापू से लावान टापू तक	८० ,,
लावन टापू से ऐरोन टापू तक	७ ,,
ऐरून टापू से खैन टापू तक	७ फरसंग
खैन टापू से केश टापू तक	७ ,,
केश टापू से इब्न कावान टापू तक	१८ ,,
इब्न कावान टापू से हुरमुज टापू तक	७ ,,
हुरमुज टापू से सारा	७ दिन का मार्ग

वह कहता है कि यही सारा फ़ारस और सिन्ध के बीच की सीमा है। यहाँ से जहाज़ देबल के लिए चलता है।

---

[१] अबूज़ैद का यात्रा विवरण ; पृ० १३६ (सन् १८११ ई० का पेरिस का संस्करण)

[२] किताबुल् मसालिक ; इब्न खुर्दाज़बा ; पृ० ६१ (लीडन)

सारा से देबल	८ दिन का मार्ग
देबल से सिन्ध नदी का मुहाना	२ फरसंग
सिन्ध नदी से औतगीन	४ दिन का मार्ग

वह कहता है कि औतगीन से भारत की सीमा आरम्भ होती है।

औतगीन से कोली	२ फरसंग
कोली से सन्दान	५ दिन ; १८ फरसंग
सन्दान से मली	५ दिन का मार्ग
मली से बलीन	२ ,, ,,

बलीन से आगे मार्ग अलग अलग होते हैं। जो जहाज़ समुद्र के किनारे किनारे चलते हैं, वे बलीन से पापटन जाते हैं, जो दो दिन का मार्ग है।

पापटन से संजली और कबश्कान तक	१ दिन का मार्ग
यहाँ से गोदावरी का मुहाना	३ फरसंग
यहाँ से कीलकान	२ दिन का मार्ग
यहाँ से समुद्र	१० फरसंग
यहाँ से औरनचीन	१२ ,,

दूसरे जहाज़ बलीन से सरन्दीप और फिर वहाँ से जात्रा चले जाते हैं ; और कुछ बलीन से ही सीधे चीन चले जाते हैं।[1]

युरोप और भारत के व्यापारिक मार्ग अरब के राज्य से होकर

मिश्र, शाम, इराक़, ईरान, रूम सागर, लाल सागर और भारतीय महासागर पर अरबों का अधिकार हो जाने से भी पूर्व और

[1] इब्न खुर्दाज़बा ; पृ० ६१—६४ ; (लीडन)।

पश्चिम का व्यापार के लिए आना जाना बन्द नहीं हुआ। मुसलमान व्यापारी युरोप नहीं जाते थे और रूमवाले इन देशों में नहीं आते थे लेकिन इन दोनों जातियों के बीच में यहूदियों की एक ऐसी जाति थी, जो दोनों में मध्यस्थता का काम करती थी। इस्लामी देश में वे अहले किताब (अर्थात् ऐसे धर्म्म के अनुयायी, जिनका उल्लेख क़ुरान में है) माने जाते थे और यूनानियों के समय से ही युरोप से परिचित थे। कृष्ण सागर के तट पर एशियाई कोचक और रूस की सीमा पर का तराबजन्द नामक नगर मुसलमान और ईसाई व्यापारियों के मिलने का स्थान था। वे उससे आगे नहीं बढ़ते थे[१]। लेकिन यहूदी व्यापारी बहुत सहज में इस्लामी और ईसाई दोनों जगतों को एक साथ पार कर लेते थे। इब्न खुर्दाजबा लिखता है—"ये लोग अरबी, फ़ारसी, लैटिन, फ़िरंगी, स्पेनी और स्लव भाषाएँ बोलते हैं। ये पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब जल और स्थल में दौड़ते फिरते हैं। ये दासियाँ, दास, दीबा (बहुत बढ़िया रेशमी कपड़े), समूर, पोस्तीन और तलवार बेचते हैं। ये फ़िरंगिस्तान से सवार होकर रूम सागर के मिश्रवाले तट पर आते हैं। वहाँ स्थल पर उतरकर व्यापार की सामग्री पशुओं की पीठ पर लादकर लाल सागर लाते हैं। वहाँ से फिर जहाज पर बैठकर जद्दा आते हैं। और वहाँ से सिन्ध, भारत, और चीन जाते हैं। वहाँ से फिर इसी मार्ग से लौट आते हैं। इनका दूसरा मार्ग यह है कि युरोप से चलकर रूम सागर से निकलकर एन्टोकिया (शाम) आते हैं और फिर स्थलमार्ग से जाबिया (इराक़) चले जाते हैं वहाँ से फ़िरात की नहर में सवार होकर बग़दाद आते हैं। फिर जहाज पर बैठकर दजला के मार्ग

---

[१] नुखबतुद्दहर फ़ी अजायबुल् बर्र वल् बहर; सूफ़ी दमिश्की; पृ० १४६।

से उबला पहुँचते हैं और वहाँ से उमान, सिन्ध, भारत और चीन चले जाते हैं।"[1]

रूसी व्यापारी

इब्न खुर्दाज़बा ने यहूदियों के सिवा रूसी व्यापारियों का भी उल्लेख किया है जो "जल और स्थल दोनों में यात्रा करते हैं और अपने आप को ईसाई बतलाते हैं।" रूसी लोग ईसवी दसवीं शताब्दी में ईसाई हुए हैं। इब्न खुर्दाज़बा का कथन है कि ये लोग स्लव जाति के हैं। ये लोग स्लविया से निकलकर रूम सागर में सवार होते हैं। रूम का कैसर या बादशाह इनसे दसवाँ भाग कर लेता है। वहाँ से वे कैस्पियन सागर के किसी तट पर आकर उतरते हैं। वहाँ से स्थल के मार्ग से ऊँटों पर बैठकर बग़दाद आते हैं और वहाँ ईसाई बनकर जज़िया देते हैं।

कभी कभी ये लोग स्थल के मार्ग से भी पूरी यात्रा करते हैं। वे स्पेन या फ्रान्स से सूस उल् अक्सा (उत्तरी अफ्रिक़ा) आते हैं और वहाँ से तंजा, वहाँ से अल जज़ायर, ट्यूनिस और ट्रिपोली होकर मिस्र, मिस्र से रमला (शाम) होकर दमिश्क, दमिश्क से कोफा, फिर बग़दाद, फिर बसरा, फिर अहवाज़, फिर फ़ारस, फिर करमान, फिर बलोचिस्तान होकर सिन्ध, फिर भारत और तब चीन जाते हैं।[2]

ख़ुरासान से भारत का व्यापारी दल

मसऊदी, जो सन् ३०५ हि० के लगभग भारत आया था और बल्ख तथा ख़ुरासान से भी होकर गुजरा था, लिखता है—"ख़ुरासान

---

[1] इब्न ख़ुर्दाज़बा; पृ० १५३-५४ (लीडन)।

[2] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ।

से चीन के लिये स्थल का भी मार्ग है और भारत का देश .खुरासान से मिल जाता है। सिन्ध से एक ओर मुलतान पर और दूसरी ओर मन्सूरा पर मुलतान है; और व्यापारियों के दल .खुरासान से सिन्ध को और इसी प्रकार भारत को भी बराबर आते जाते रहते हैं, जहाँ यह देश ज़ाबिलस्तान (अफ़गानिस्तान) से मिल जाता है।"[1] इब्न हौकल, जो महमूद ग़ज़नवी से पचास बरस पहले आया था, कहता है—"क़ाबुल और ग़ज़नी भारत के व्यापार के निकास के स्थान हैं।"[2] असीवान, जिसको अरब लोग असीफ़ान कहते थे; पंजाब में एक हिन्दू राज्य था। वहाँ भी मुसलमान व्यापारी थे।[3]

भारत की समुद्री-यात्रा का समय

मसऊदी ने भारतीय महासागार के उतार चढ़ाव और ज्वार भाटा के समय नियत किए हैं और इस दृष्टि से जहाज़ों के चलने के महीने निश्चित किए हैं। उसने लिखा है। हमारे यहाँ (कदाचित् बग़दाद) की ओर भारत की ऋतुओं में अन्तर है। गरमी के दिनों में लोग हमारे यहाँ से भारत की सरदी बिताने के लिये वहाँ जाते हैं। जून के महीने में भारत की ओर कम जहाज़ जाते हैं; और जो जाते भी हैं, वे हलके होते हैं और उनमें अधिक सामान नहीं लादा जाता। उन जहाज़ों को तीरमाही (जूनवाले) जहाज़ कहते हैं।[4]

अबूज़ैद सैराफ़ी का कथन है—"वर्षा के दिनों में जहाज़ नहीं चलते। भारतवाले उन दिनों बैठकर खेती बारी या और कोई

---

[1] मुरूजुज़ ज़हब; मसऊदी।

[2] इब्न हौकल; पृ० ३२८ (युरोप में मुद्रित)।

[3] फ़ुतूहुल् बुल्दान; बिलाज़ुरी; पृ० ४४६ (लीडन)।

[4] मुरूजुज़ ज़हब मसऊदी।

व्यवसाय करते हैं। इसी वर्षा पर उनका निर्वाह होता है। इसी ऋतु में चावल होता है जो उनका भोजन है।"[1]

अरबी में हिन्दी के कुछ नाविक शब्द

भारत के समुद्र-तटों पर अरबों के आने जाने का यह प्रभाव हुआ कि अरबी यात्रा-विवरणों और भूगोलों में और अरब तथा फ़ारस के मल्लाहों की ज़बान पर जहाज़ों और उनके सम्बन्ध के अनेक हिन्दी नाम चढ़ गए। उनमें से एक शब्द बारजा है। अलबेरूनी ने बतलाया है कि वास्तव में यह हिन्दी का "बेड़ा" शब्द है, जिसको अरब लोग बारजा कहते हैं (अरबी में "ड़" के स्थान पर "ज" हो जाता है); और उसका बहुवचन बवारिज होता है। भारतीय समुद्र-तट के समुद्री डाकू इन्हीं नावों पर बैठकर डाके डालते थे ; इस लिये बाद में भारत के समुद्री डाकुओं को ही "बवारिज" कहने लगे[2], जिस प्रकार रूम सागर के समुद्री डाकुओं को करसान कहते हैं ; और आज कल की अरबी भाषा में बारजा लड़ाई के जहाज़ों के बेड़े को कहते हैं।

दूसरा शब्द "दोनीज" है, जिसका बहुवचन "दवानीज" होता है।[3] यह हिन्दी के "डोंगी" शब्द का अरबी रूप है। तीसरा शब्द होरी है, जिसे अब भी बम्बईवाले होड़ी कहते हैं।

भारतवर्ष या भारतीय टापुओं के तीन और शब्द हैं जिनके ठीक ठीक मूल रूप का पता नहीं चलता। "बलीज" जहाज़ की छत को

---

[1] अबूज़ैद सैराफ़ी का यात्रा विवरण पृ० ११६।

[2] किताबुल् हिन्द ; बैरूनी पृ० १०२ (लंडन) अजायबुल्हिन्द ; बुज़ुर्ग; पृ० ११४ (पेरिस)।

[3] याक़ूत हमवी कृत मुअजमुल् बुल्दान में "कैस" शब्द ; खंड ७ ; और अजायबुल् हिन्द ; बुज़ुर्ग ; पृ० ६६ (बरेल लीडन में प्रकाशित)।

कहते हैं; "जोश" नाव के रस्से को कहते हैं और "कनेर" नारियल के छाल की रस्सी को कहते हैं, जो जहाज़ों को बाँधने और तख्तों को सीने के काम में आती थी। ये शब्द भी भारतीय शब्दों से ही निकले हुए हैं।[१] एक शब्द ऐसा है जो उस समय के पूर्वी सार्वराष्ट्रीय समुद्री व्यापार का संक्षिप्त इतिहास है। अरबी में इस शब्द का रूप "नाखूज़ा" है और इसका बहुवचन "नवाख़ज़ा" है। लेकिन भारतवाले उसके फारसी रूप "नाखुदा" से ही अधिक परिचित हैं। असल में यह शब्द नावखुदा है। इसमें नाव शब्द हिन्दी का और स्वामी के अर्थ में खुदा शब्द फ़ारसी का है। हाफ़िज़ कहते हैं—"मा खुदा दारेम मारा नाखुदा दरकार नेस्त।" अर्थात् मेरे साथ खुदा है। मुझे नाखुदा (एक अर्थ ईश्वर-रहित और दूसरामल्लाह) की आवश्यकता नहीं है।

भारत की उपज और व्यापार

ये अरब व्यापारी भारतवर्ष और यहाँ के टापुओं से अपने देश को क्या क्या पदार्थ ले जाते थे, इसका स्थूल अनुमान उस वर्णन से होगा जो सन् १४ हिज० में एक अरब यात्री ने हज़रत उमर से किया था। उसने कहा था—"भारत का समुद्र मोती है; उसका पर्वत लाल है और उसका वृक्ष इत्र है।" इससे जान पड़ता है कि ईसवी छठी शताब्दी में अरबवाले भारतवर्ष से मोती, जवाहिरात और सुगन्धित द्रव्य ले जाया करते थे। ईसवी नवीं शताब्दी में एक अरब यात्री इस बात का कारण बतलाता है कि सैराफ़ के जहाज़ लोहित सागर होकर मिस्र क्यों नहीं जाते और जद्दा से लौटकर भारत क्यों चले जाते हैं।

---

[१] देखो सबा उस् सबील फिल् मौलिद वद् दख़ील (डा० आर्नल्ड का संस्करण)।

वह कहता है—"इसलिये कि वह चीन और भारत के समुद्र की तरह, जिसके पानी में मोती और अम्बर होता है, जिसके पहाड़ों में जवाहिरात और सोने की खानें हैं, जिसके जानवरों के मुँह में हाथीदाँत हैं, जिसकी पैदावार में आबनूस, बेंत, जद, कपूर, लौंग, जायफल, बक्कम, चन्दन और सब प्रकार के सुगन्धित द्रव्य होते हैं, जिसके पक्षियों में तोते और मोर हैं और जिसकी भूमि की विष्ठा मुश्क या कस्तूरी और जुबाद मुश्क बिलाई जिसका पसीना सुगन्धित होता है।[1]

इब्न ख़ुर्दाज़बा (सन् २५० हि०) जो ईसवी आठवीं शताब्दी के कुछ पीछे आया था, भारतवर्ष में होनेवाले उन पदार्थों और व्यापार की चीजों की यह सूची देता है जो पदार्थ यहाँ से अरब और इराक़ जाते थे—"सुगन्धित लकड़ियाँ, चन्दन, कपूर, लौंग, जायफल, कबाबचीनी, नारियल और सन् के कपड़े, रूई के मख़मली कपड़े और हाथीदाँत; और सरन्दीप से सब प्रकार के लाल, मोती, बिल्लौर और कुरुंड जिससे जवाहिरात साफ़ किए और चमकाए जाते हैं; मलाबार से काली मिर्च, गुजरात से सीसा, दक्खिन से बक्कम और सिन्ध से कुट, बाँस और बेंत।[2]

मसऊदी (सन् ३०३ हि०) और बुशारी (सन् ७३० हि०) दोनों ने खम्भात (काठियावाड़) के जूतों की प्रशंसा की है, जो यहाँ से बनकर बाहर जाते थे।[3] थाना (बम्बई) के कपड़े प्रसिद्ध थे।

---

[1] अबूज़ैद सैराफ़ी; पृ० १३४ (सन् १८११ ई० का पेरिसवाला संस्करण)।

[2] किताबुल् मसालिक वल् ममालिक; इब्न ख़ुर्दाजबा; पृ० ७१ (लीडन)।

[3] मुरूजुज़ ज़हब; मसऊदी; पहला खंड; पृ० २५३ (पेरिस) और अहसनुत् तक़ासीम; बुशारी; (लीडन) पृ० ४८२।

वे या तो वहीं बनते थे और या देश के भीतरी भागों से आते थे। लेकिन वे सब इसी बन्दरगाह से बाहर जाते थे। जो हो, उनको थाने के कपड़े कहते थे।[१]

मुसइर बिन मुहलहिल, जो सन् ३३१ हि० में भारत आया था और जिसने दक्षिणी भारत की सैर की थी, कोलम (ट्रावन्कोर; मदरास) का वर्णन इस प्रकार करता है—"यहीं वे मिट्टी के बरतन "ग़ज़ायर"[२] बनते हैं जो हमारे देश में चीनी बरतनों के नाम से बिकते हैं; पर वास्तव में वे चीन के नहीं होते; क्योंकि चीन की मिट्टी कोलम की मिट्टी से कडी होती है और आग पर अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। कोलम की मिट्टी का रंग मैला होता है और चीनी मिट्टी सफेद या और और रंगों की होती है। यहाँ सागौन की लकड़ी इतनी लम्बी होती है कि कभी कभी सौ हाथ तक पहुँच जाती है। इसके सिवा बक्कम, बत और नेज़े की लकड़ी भी वहाँ बहुत होती है। रेवन्दचीनी और तेजपत्ता भी होता है, जो दूसरे स्थानों में बहुत कम मिलता है और जो आँखों के रोगों में बहुत लाभदायक है। व्यापारी लोग ऊद, कपूर और लोबान भी यहीं से ले जाते हैं।[३]

भारत से एक प्रकार का ज़हर भी बाहर जाता था जिसे क़ज़वीनी ने "बेश" लिखा है। यह विष का बिगड़ा हुआ रूप है, जिसे हिन्दी में ज़हर कहते हैं।[४]

---

[१] तकवीमुल् बुलदान; अबुल फ़िदा; पृ० ३०६।

[२] ग़ज़ायर का अर्थ सुगन्धित मिट्टी है; पर आगे चलकर सम्भवतः यह शब्द चीनी बरतनों के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। देखो मुअजमुल् बुल्दान; खंड ८ पृ० ३४८ में "नहरवान" शब्द।

[३] आसारुल् बिलाद; क़ज़वीनी; पृ० ७० (गोटिंजन, सन् १८४८ ई०)

[४] उक्त ग्रन्थ; पृ० ८५।

इलायची

इलायची मन को जितना अधिक प्रसन्न करनेवाली है, उसकी व्युत्पत्ति भी उतनी ही मनोरंजक है। कारोमंडल और मलाबार के बीच में हेली नाम का एक अन्तरीप है।[1] इलायची शब्द का मूल यही नाम है। यह समझा जाता है कि संस्कृत में जो इसे एला और फ़ारसी में जो हेल कहते हैं, वह इसी हेली अन्तरीप के नाम से लिया गया है। इसी एला शब्द से उर्दू में उसी प्रकार इलायची शब्द बन गया जिस प्रकार अगर या ऊद का नाम जो मंडल (कारोमंडल) से जाता था, अरबों में मन्दल हो गया।[2]

ईसवी दसवीं शताब्दी के अन्त में मसऊदी कहता है—"दीप (भारत के मालदीप और सिंहलदीप आदि टापू) से व्यापारी लोग नारियल, बक्कम की लकड़ी, बेद और सोना ले जाते हैं।"[3] महाराज के टापुओं के वैभव का वह इस प्रकार वर्णन करता है—"इन टापुओं में अनेक प्रकार की सुगन्धियाँ होती हैं। यहीं से कपूर, अगर, लौंग, जायफल, कबाबचीनी, जावित्री और बड़ी इलायची आदि ले जाते हैं।"[4] "कुछ लोग इन टापुओं से छोटी छोटी नावों पर बैठकर, जो केवल एक लकड़ी को खोदकर बना लेते हैं, नारियल, गन्ने, केले और नारियल का पानी लेकर आते हैं और उनके बदले में लोहा लेते हैं।"[5]

---

[1] इब्न बतूता ; दूसरा खंड ; और तकवीमुल् बुल्दान; अबुल्फ़िदा ; पृ० ३५४ ।

[2] आसारुल् बिलाद ; कज़वीनी (गोटेंजन) पृ० ८२ ।

[3] मुरूजुज़ ज़हब ; १६ वाँ प्रकरण ।

[4] उक्त ग्रन्थ और प्रकरण ।

[5] सुलैमान सौदागर ; पृ० १८ ।

इब्नुल् फक़ीह हमदानी (सन् ३३० हि०) लिखता है—"भारत और सिन्ध को ईश्वर ने यह विशेषता दी है कि वहाँ सब प्रकार के सुगन्धित द्रव्य, रत्न जैसे लाल, हीरा-आदि, गैंडा, हाथी, मोर, अगर, अम्बर, लौंग, सम्बुल, कुलंजन, दालचीनी, नारियल, हर्रे, तूतिया, बक्कम, बेद, चन्दन, सागौन की लकड़ी और काली मिर्च उत्पन्न होती है।"[१]

अरबी कोषों की पुरानी साक्षी

यह जानने के लिए कि भारत से अरबवाले क्या क्या चीजें अपने देश को ले जाते थे, स्वयं अरबी भाषा के कोषों में ही कुछ साधन मिलते हैं। अरब में भारत की बनी हुई तलवारें प्रसिद्ध थीं। इसी लिये अरबी में तलवार के नाम हिन्दी, हिन्दवानी और मुहन्नद आदि बहुत प्रचलित हैं। अरबी के नीचे लिखे हुए शब्द हिन्दी भाषा से निकले हुए हैं जो स्वयं अपनी व्युत्पत्ति और जन्मभूमि का पता देते हैं। अधिकतर इनका सम्बन्ध मसालों, सुगन्धित पदार्थों और ओषधियों आदि से है। हमने उनके मूल हिन्दी रूपों का पता लगाने का प्रयत्न किया है, जिसमें आज उन शब्दों के देश के लोग उन शब्दों को उसी प्रकार पहचान सकें, जिस प्रकार अपने घर के लोगों को पहचानते हैं।

अरबी	हिन्दी (या संस्कृत)	उर्दू (या हिन्दी)
सन्दल	चन्दन	सन्दल
मस्क	मूषिका	मुश्क
तम्बोल	ताम्बूल	पान, तम्बोल
काफ़ूर	कपूर	काफ़ूर

[१] किताबुल् बुल्दान; इब्नुल् फक़ीह अल् हमदानी; पृ० २५१ (लीडन)।

अरबी	हिन्दी (या संस्कृत)	उर्दू (या हिन्दी)
करनफल	कनकफल	लौंग
फ़िलफ़िल	पिप्पली, पिप्पला	गोलमिर्च (सम्भवतः इसी से अँगरेज़ी का पेपर शब्द भी बना है)।
फोफल	कोबल, गोपदल	सुपारी, डली
जंजबील	जरंजा वीरा (?)	सोंठ, अदरक
नीलोफ़र	नीलोत्पल.	नीलोफ़र
हेल	एला	एलायतची, इलायची

औषधियाँ

जायफल	जायफल	जायफल
इत्रीफ़ल	त्रिफला	इत्रीफ़ल
शखीरा	शिखर (? शिखिकंठ)	तूतिया
बलीलह	बहेड़ा	बहेड़ा
हलीलज	हर्रे	हलीला
बलादर	भिल्लातक	भिलावाँ

ऊद (अगर) हिन्दी, किस्त हिन्दी (कुट), साजज हिन्दी (तेजपत्ता), कुरतुम हिन्दी (कुसुंब) और तमर हिन्दी (हिन्दुस्तानी खजूर अर्थात् इमली) आदि शब्दों के साथ का "हिन्दी" शब्द ही यह सूचित करता है कि ये सब चीज़ें भारत से जाती थीं और भारत की थीं। ऊद या अगर की लकड़ी कारोमंडल से जाती थी; इस लिये अरबवालों ने उसका नाम मंदल रख दिया।[1]

---

[1] आसारुल् बिलाद; क़जवीनी; पृ० ८२ (गोटेंजन सन् १८४८ ई०)।

कपड़ों के प्रकार

अरबी	हिन्दी	उर्दू
कर्फस	कार्पास	मलमल
शीत	छींट	छींट
बौतः	पट, लुंगीवाल	रूमाल

रंग

नीलज	नील	
किर्मिज	किरमिज	

फल

मोज	मोचा	केला
नारजील	नारियल	
अम्बज	आम	
लेमूँ	निम्बू (इसीसे अँगरेज़ी का "लेमन" शब्द निकला है ।)	

ये शब्द अपना हाल आपही अपनी ज़बान से बतला रहे हैं कि वे किस देश में उत्पन्न हुए थे और कहाँ जाकर उन्होंने यह नया रूप रंग पाया ।

.कुरान में हिन्दी के तीन शब्द

विद्वानों में इस सम्बन्ध में बहुत कुछ मतभेद रहा है कि कुरान में अरबी के सिवा किसी दूसरी भाषा का कोई शब्द है या नहीं । पर अन्त में निर्णय यही हुआ कि उसमें दूसरी भाषाओं के ऐसे शब्द हैं जो अरबों की भाषा में आकर प्रचलित हो गए थे और जो अपना पहला रूप बदलकर अरबी भाषा के शब्द बन गए थे । हाफ़िज़ इब्न

हजर और हाफ़िज़ सुयूती ने कुरान के इस प्रकार के शब्द एकत्र किए हैं। हम भारतवासियों को भी इस बात का अभिमान है कि हमारे देश के भी कुछ शब्द ऐसे भाग्यवान् हैं जो इस पवित्र ग्रन्थ में स्थान पा सके। पहले विद्वानों ने जिन शब्दों को हिन्दी बतलाया था, वे तो ठीक नहीं थे और न उनका कोई आधार था। जैसे '"इबलई" के सम्बन्ध में यह कहना कि हिन्दी में इसका अर्थ पीना होता है, या "तूबा" को हिन्दी कहना जैसा कि सईद बिनजुबैर का प्रवाद है[१], कोई आधार नहीं रखता। लेकिन फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि जन्नत या स्वर्ग की प्रसंशा में इस स्वर्गतुल्य देश के तीन सुगन्धित पदार्थों का नाम अवश्य आया है ; अर्थात् मस्क (मुश्क या कस्तूरी) ज़ंजबील (सोंठ या अदरक) और काफ़ूर (कपूर)।

तौरेत की साक्षी
अरबों के भारतीय व्यापार की प्राचीनता के सम्बन्ध में

ऊपर जो बातें कही गई हैं और जो शब्द दिए गए हैं, उनको सामने रखकर तौरेत में दी हुई कुछ बातों पर विचार करना चाहिए। ईसा से दो हज़ार बरस पहले अरब के जो व्यापारी अनेक बार मिस्र को जाते हुए दिखाई दिए हैं, उनका सामान यह था—बल्सान (एक सुगन्धित फूल) सनोबर और दूसरे सुगन्धित द्रव्य।[२] यमन देश की मल्का या महारानी ई० पू० सन् ९५० में हज़रत सुलैमान के लिये जो उपहार शाम लाई थी, उनमें भी सुगन्धित द्रव्य, बहुत सा सोना और बहुमूल्य रत्न थे।[३] हिजकयाल नबी (ई० पू०

---

[१] देखो अल इत्क़ान फ़ी उलूमिल् क़ुरान ३८।

[२] उत्पत्ति ; ३७-२६।

[३] दूसरे दिन ; ९-९।

सन् ५२८) के समय में औजाल (यमन) से फ़ौलाद, तेजपत्ता और मसाला आदि अरब लोग ही शाम देश में ले जाते थे। हिजकयाल नबी कहते हैं—"औजाल (यमन) से तेरे बाज़ार में आबदार फ़ौलाद, तेजपत्ता और मसाले बेचने आते हैं।"[१] यह भली भाँति विदित है कि लोबान और अनेक प्रकार के सुगन्धित फूल स्वयं यमन में ही उत्पन्न होते थे; लेकिन आबदार फ़ौलाद (तलवार) तेज-पत्ते और मसालों का देश भारतवर्ष ही था; और आज भी वही तलवार, तेजपत्ते और मासालों का देश है। इससे स्पष्ट है कि भारत के साथ अरबों का व्यापारिक सम्बन्ध ईसा से कम से कम दो हज़ार बरस पहले का है।

भारत की उपज और व्यापार
अरब यात्रियों की दृष्टि में

अरब के यात्रियों की दृष्टि से भारत के फलों में से सबसे पहला फल नारियल है। ईसवी नवीं शताब्दी का अरब यात्री अबूज़ैद कहता है—"उमान के अरब यह करते हैं कि जिन स्थानों में नारियल होते हैं, वहाँ बढ़इयों के औज़ार लेकर चले जाते हैं। पहले वे नारियल का पेड़ काटकर सूखने के लिये छोड़ देते हैं। जब वह सूख जाता है, तब उसके तख्ते काट डालते हैं और नारियल की छाल को बटकर उसकी रस्सी बनाते हैं उसी रस्सी से तख्तों को सीकर नाव और उसका मस्तूल बनाते हैं और उसके झोंझे को बुनकर पाल तैयार करते हैं। फिर उन नावों में नारियल भरते हैं और उनको उमान लाते हैं और उससे बहुत धन कमाते हैं।"[२]

---

[१] हिजकयाल; २७-१६।

[२] अबूज़ैद; पृ० १२१।

नारियल के उपरान्त वे नीबू और आम के नाम बहुत आश्चर्य से लेते हैं। इब्न हौकल (सन् ३५० हि०) सिन्ध का वर्णन करता हुआ कहता है—"उनके देश में सेब के बराबर एक फल होता है, जिसको लेमूं कहते हैं और जो बहुत खट्टा होता है। उनके यहाँ एक मेवा और होता है, जो शफ़्तालू की तरह का होता है। उसका नाम अम्बीज (अर्थात् आम) है, जिसका स्वाद भी प्रायः शफ़्तालू के समान ही होता है।"[1]

आम के भारतीय प्रेमी ज़रा यह भी देखें कि अरबवाले उस आम का कितना आदर करते हैं।

मसऊदी का कहना है—"नारंगी और नीबू भी भारत की ख़ास चीजें हैं। ये फल हिजरी तीसरी शताब्दी में भारत से अरब लाए गए थे। ये पहले उमान में और फिर वहाँ से इराक़ और शाम पहुँचे। यहाँ तक कि वे शाम के समुद्र-तट के नगरों और मिस्र में घर घर फैल गए।" लेकिन मसऊदी कहता है—"उनमें वह भारत का सा स्वाद नहीं है।"[2]

इब्न हौकल (सन् ३५० हि०) सिन्ध और गुजरात की उपज और व्यापार के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णन करता है—

मन्सूरा—इसका पुराना नाम ब्रह्मनाबाद है। यहाँ नीबू और आम हैं और गन्ने भी हैं। भाव सस्ता है। स्थान हरा भरा है।

अलोर—यह विस्तार में मुलतान के समान है। नगर के चारों ओर परकोटा है। सिन्ध नदी के किनारे है। बहुत हरा भरा और व्यापार का अच्छा स्थान है।

---

[1] इब्न हौक़ल ; पृ० २२८।

[2] मुरूजुज़ ज़हब, दूसरा खंड, पृ० ४३८ (युरोप)।

देवल—सिन्ध नदी के पूरब समुद्र के किनारे है। यह बहुत बड़ी मंडी है और यहाँ अनेक प्रकार के व्यापार होते हैं। यह इस देश का बन्दरगाह है। अनाज भी है। यहाँ की बस्ती केवल व्यापार के कारण है।

काम्हल—काम्हल से मकरान तक बौद्धों और मेदियों का देश है। यहाँ दो कूबड़वाले ऊँट होते हैं, जिनकी ख़ुरासान और फ़ारस में नसल बढ़ाने के लिये बहुत क़द्र है।

कन्दाबील—यह बौद्धों का व्यापारिक नगर है। मकान छप्परों और झोंपड़ों के हैं।

जैमूर और खम्भायत (गुजरात और काठियाबाड़)—यहाँ अधिकतर चावल होता है और शहद भी बहुत है।

कलवान—यहाँ अनाजों की बहुत अधिकता है। फल कम हैं। पशु और ढोर बहुत हैं।

कीजकानान (कजदार की राजधानी)—सस्ती है। यहाँ अंगूर, अनार और ठंढे मेवे हैं। खजूरें नहीं हैं।

कनजपूर—मकरान का सबसे बड़ा नगर है। यहाँ गन्ने और छुहारे होते हैं और फानीज (एक प्रकार का हलुवा) बनता है, जो यहाँ से सारे संसार में जाता है।

कन्दावील—यह भारत के अनाजों की बड़ी मंडी है।

इसके उपरान्त बुशारी मुक़द्दसी (सन् ३७५ हि०) का वर्णन बहुत विस्तृत है। वह एक नगर का वर्णन करता है—

वैहिन्द—यह मन्सूरा से बड़ा नगर है। बहुत साफ़ सुथरा नगर है। बहुत अच्छे फल, बड़े बड़े वृत्त; भाव सस्ता; शहद एक दरहम

का तीन मन (अरबी में मन बहुत छोटा होता था), रोटी और दूध के सस्तेपन का हाल मत पूछो। अखरोट और बादाम के वृक्ष बहुत अधिकता से हैं।

कन्नौज—मुलतान के पासवाला बड़ा नगर है। परकोटा है। यहाँ मांस बहुत सस्ता है। बाग़ बहुत अधिक हैं। यहाँ की मंडी में बहुत लाभ होता है। केले यहाँ सस्ते हैं पर गेहूँ बहुत कम है। लोगों का भोजन प्रायः चावल है।

मुलतान—मन्सूरा के बराबर है। वहाँ से फल यहाँ अधिक नहीं हैं; पर सस्ती वहाँ से अधिक है। रोटी एक दरहम में तीस मन और फ़ानीज़ (हलुआ) एक दरहम में तीन मन मिलता है। व्यापार में यहाँ के व्यापारी झूठ नहीं बोलते। यहाँ के व्यापार की दशा बहुत अच्छी है।

तूरान से फ़ानीज (हलुआ) और सन्दान से चावल तथा कपड़े जाते हैं। सारे सिन्ध में फ़र्श आदि बहुत अच्छे बनते हैं। यहाँ से बारीक कपड़े और नारियल, मन्सूरा से खम्भात के बने हुए जूते, सिन्ध से हाथी, हाथी दाँत, बहुमूल्य वस्तुएँ और अच्छी दवाएँ बाहर जाती हैं। यहाँ विशेष रूप से होनेवाले दो फल हैं। एक का नाम लेमूँ (नीबू) है और दूसरे का आम, जो बहुत स्वादिष्ट होता है। पूरब और फ़ारस में जो अच्छे बख़्ती ऊँट होते हैं, वह सिन्धी ऊँटों से ही नसल लेकर तैयार किए जाते हैं। इन सिन्धी ऊंटों के, जिन्हें पाला (फालिज) कहते हैं, दो कूबड होते हैं; और वे इतने अधिक मूल्य के होते हैं कि दूसरे देशों में केवल बादशाहों की ही सवारी में काम आते हैं। इसी प्रकार खम्भात के जूतों की भी क़दर है।"[1]

---

[1] अहसनुत् तक़ासीम फ़ी मारफ़तिल् अक़ालीम; बुशारी मुक़द्दसी; पृ० ४७४-८२ (लीडन)।

मसऊदी ने भारत के मोर की प्रशंसा की है और लिखा है—"भारत से इराक़ आदि में ले जाकर उनकी नसल तैयार की गई ; पर भारत में उनका जैसा आकार और रूप रंग होता है, वैसा उनमें नहीं होता।"[१]

भारत के बारीक कपड़ों की सदा से प्रशंसा होती आई है और प्रत्येक जाति के वर्णनों से इसका प्रमाण मिलता है कि यहाँ बहुत ही बारीक कपड़े बुने जाते थे। कहा जाता है कि मिस्र में जो ममी या पुराने मृत शरीर मिलते हैं, वे जिन कपड़ों में लपेटे हुए मिलते हैं, वे भारत के ही बने हुए हैं। ख़ैर! यह तो अनुमान ही है! पर ईसवी आठवीं शताब्दी का अरब यात्री सुलैमान एक स्थान के सम्बन्ध में लिखता है—"यहाँ जैसे कपड़े बुने जाते हैं, वैसे और कहीं नहीं बुने जाते ; और इतने बारीक होते हैं कि पूरा कपड़ा (या थान) एक अँगूठी में आ जाता है। ये कपड़े सूती होते हैं और हमने ये कपड़े स्वयं भी देखे हैं।"[२]

अरब लोग गैंडे के सींग भी यहाँ से चीन ले जाते थे। उसमें चित्र बन जाते थे। उसकी पेटी बनती थी, जो इतनी बहुमूल्य होती थी कि चीन में एक एक पेटी दो दो तीन तीन हज़ार अशर्फियों को बिकतीं थी।[३]

यहाँ एक प्रकार का पशु (गन्ध बिलाव) होता था, जिसके पसीने से सुगन्धित द्रव्य निकालते थे। इसको अरब व्यापारी भारत से मरक्को तक ले जाते थे।[४] काला नमक भी भारत से बाहर जाता था।[५]

---

[१] मुरूजुज़्ज़ ज़हब ; दूसरा खंड ; पृ० ४३८ (लीडन)।

[२] सुलैमान व्यापारी का यात्रा-विवरण ; पृ० ३० (पेरिस)।

[३] उक्त ग्रन्थ ; पृ० ३१।

[४] तोहफ़तुल् अहबाब ; अबू हामिद ग़रनाती ; पृ० ४६ (पेरिस)।

[५] मफातीहुल् उलूम ; ख़ारिज़्मी ; पृ० २५६ (लीडन)।

अरबों में से मसऊदी ने पान का विस्तृत वर्णन किया है। यह वर्णन आज से प्रायः नौ सौ बरस पहले का है। वह कहता है—"पान एक प्रकार का पत्ता होता है जो भारत में उत्पन्न होता है। जब इसको चूना और डली मिलाकर खाते हैं, तब अनार के दानों की तरह दाँत लाल हो जाते हैं और मुँह सुगन्धित हो जाता है। चित्त भी बहुत प्रसन्न होता है। भारत के लोग सफेद दाँतों और पान न खाने वालों को पसन्द नहीं करते।" ख़ैर; पान का वर्णन तो यहाँ प्रसंगवश हो गया है। उस समय पान जैसा कोमल पदार्थ अरब नहीं पहुँच सकता था। लेकिन डली बराबर पहुँचती थी। सन् ३०५ हि० में मसऊदी कहता है—"अब आजकल यमन, हज्जाज और मक्के में लोग डली बहुत अधिकता से खाने लगे हैं।"[१] अब आजकल हमारे समय में तो अदन तक हरे पान और मक्के तक सूखे पान बहुत अधिकता से पहुँचने लगे हैं। यह भारतवासियों की शौकीनी का शुभ फल है। जो हो, उसी समय से भारत से डली अरब जा रही है। अरब में ऊद या अगर कन्या कुमारी का प्रसिद्ध था और वहीं से जाता था।[२] वे लोग कन्या कुमारी को कुमार कहते थे; इस लिये उनके यहाँ ऊद कुमारी प्रसिद्ध था। मुश्क या कस्तूरी तिब्बत से लाते थे।[३] हीरा काश्मीर के पर्वतों से आता था।[४]

भारत में समुद्र के मार्ग से आनेवाली चीज़ें

ये वस्तुएँ तो भारत से बाहर जाती थीं, पर इनके बदले में अरबवाले भारतवासियों को क्या लाकर देते थे? टापुओंवाले तो

---

[१] मुरूजुज़्ज़हब; दूसरा खंड; पृ० ८४ (पेरिस)।

[२] सुलैमान और अबू ज़ैद का यात्रा-विवरण; पृ० ९३ और १३०।

[३] उक्त ग्रन्थ; पृ० १११।

[४] अजायबुल् हिन्द; बुज़ुर्ग; पृ० १२८ (पेरिस)।

अपनी अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ लेते थे; जैसे कपड़े आदि। कुछ टापुओं के सम्बन्ध में अरब ने लिखा है कि वहाँ के लोग नंगे रहते हैं। वे कपड़े नहीं लेते, बल्कि लोहा लेते हैं।[१]

हिजरी तीसरी शताब्दी (ईसवीं नवीं शताब्दी) में सिन्ध के सोने के सिक्कों की भारत में बहुत माँग रहती थी। वहाँ की एक एक अशर्फ़ी यहाँ तीन तीन अशर्फ़ियों को बिकती थी। मिस्र से पन्ने की अँगूठी बनकर यहाँ आती थी, जो बड़ी सुन्दरता से डिबिया में रखी हुई होती थी। मूँगा और एक साधारण पत्थर की, जिसका नाम दहंज था, यहाँ माँग रहती थी।[२] मिस्र से शराब भी यहाँ आती थी।[३] रूम से रेशमी कपड़े, समूर, पोस्तीन और तलवारें आती थीं।[४] फ़ारस से गुलाबजल, जो प्रसिद्ध था, भारत में आता था।[५] बसरे से देबल (सिन्ध के बन्दरगाह) में खजूरें आती थीं।[६] कारोमंडल में अरब से घोड़े आते थे।[७]

क्या भारतवासी भी नाविक थे?

भारत के जल और स्थल सब प्रकार के बाहरी व्यापार के सम्बन्ध में कहीं हिन्दुओं का नाम नहीं आता। न कहीं समुद्री यात्रा करनेवालों और जहाज़ चलानेवालों में किसी ने हिन्दुओं का

---

[१] सुलैमान और अबू ज़ैद का यात्रा-विवरण; पृ० ६।

[२] उक्त ग्रंथ; पृ० १४५।

[३] इब्न हौक़ल; पृ० २३१।

[४] इब्न खुर्दाजबा; पृ० २५३ (लीडन)।

[५] इब्न हौक़ल; पृ० २१३।

[६] तक़वीमुल बुलदान अबुल फ़िदा; पृ० ३४६।

[७] उक्त ग्रंथ; पृ० ३५५।

उल्लेख किया है यूनानियों से लेकर अरबों तक के इतिहास, भूगोल और यात्रा-विवरण इससे ख़ाली हैं। सब जगह भारत के समुद्री व्यापारियों के रूप में यूनानियों, रूमियों और अरबों के ही नाम आते हैं; यहाँ तक कि मार्को पोलो के यात्रा-विवरण रण में भी अरबों के ही नाम हैं। इसी आधार पर एल्फिन्स्टन साहब आदि ने यह विचार प्रकट किया है—"सिन्धु और गंगा नदी में नावों और डोंगियों पर और समुद्र के किनारे किनारे एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक जाने के सिवा हिन्दुओं ने समुद्र को पार करने का कभी साहस नहीं किया। यहाँ तक कि सिकन्दर के समय में भी सिन्ध में यूनानियों को न तो जहाज़ मिले और न जहाज़ चलानेवाले। छोटी छोटी डोंगियों और नावों पर मछुए अवश्य उनको मिलते रहे। हाँ, कारोमंडल के लोग अवश्य जावा टापू में जाने का साहस कर सके।"[१]

लेकिन इन महाशयों की इस जाँच से हमारा मत-भेद है। हमारा विचार है कि सभी हिन्दू तो नहीं, पर कम से कम सिन्ध और गुजरात के लोग इसके अपवाद हैं। बल्कि मनु के धर्मशास्त्र में एक ऐसा श्लोक है, जो यह प्रकट करता है कि उस समय के हिन्दुओं में कुछ लोग ऐसे भी थे जो समुद्र की यात्रा से परिचित थे। उस श्लोक का भावार्थ यह है—

"समुद्र यान में कुशल तथा देश, काल और अर्थ इन चार के जाननेवाले जो वृद्धि या ब्याज निश्चित करें, वह ब्याज लेना चाहिए।"

समुद्रयान कुशलः देशकालार्थ दर्शिनः।
स्थापयन्ति तु यां वृद्धि सा तथाधिगमं प्रति॥

(अ० ८ श्लो० १५७)

---

[१] एल्फिन्स्टनकृत "भारत का इतिहास;" दसवाँ प्रकरण (व्यापार)।

यूनानी लेखक एरियन (Arrian) सिकन्दर के प्रकरण में लिखता है—"भारत में उसको अपने जहाज़ स्वयं बनवाने पड़े।" पर साथ ही वह यह भी लिखता है—"हिन्दुओं की चौथी जाति में वे लोग हैं जो जहाज़ बनाते हैं, चलाते हैं या खेते हैं। मल्लाह ऐसे हैं जो नदियों को पार कर लेते हैं।"[1]

यूनानियों के एक विवरण से पता चलता है कि लाल सागर के मुहाने पर एक टापू में, जो कदाचित् सकोतरा हो, अरबों और यूनानियों के साथ साथ कुछ हिन्दुओं की भी बस्ती थी।[2]

इस बात में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है कि मालदीप, लंका, जावा और मलाया द्वीपपुंज के दूसरे टापुओं की बस्ती का एक बड़ा अंश हिन्दुओं का था। उनके आचार विचार और धर्म, बल्कि उनकी भाषा तक यह प्रकट करती है कि वे हिन्दू थे। अरब यात्रियों और व्यापारियों ने इसी लिये उन टापुओं को भारत का अंश माना था और इसी रूप में उनका उल्लेख किया था। बल्कि ईसवी नवीं शताब्दी का अरब यात्री अबू ज़ैद कहता है—"कुमारी अन्तरीप भी जावा के महाराज ने जीत लिया था।"[3] यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने के योग्य है कि अरबों ने जावा के बादशाह को सदा "महाराज" कहा है और उन टापुओं को "महाराज का राज्य" बतलाया है।

पर इससे बढ़कर बात यह है कि ईसवी नवीं शताब्दी में अबूज़ैद सैराफी इस प्रसंग में कि "भारतवासी एक साथ मिलकर नहीं खाते", कहता है—"ये हिन्दू लोग सैराफ (इराक़ का बन्दरगाह) में आते हैं। जब कोई (अरब) व्यापारी उनको भोजन के लिये निमन्त्रण

[1] एलिफन्स्टन ; पहला खंड ; पृ० १८२।

[2] उक्त ग्रन्थ और खंड ; पृ० १८३।

[3] अबूज़ैद, पृ० ९७।

देता है, तब वे कभी सौ और कभी सौ से अधिक होते हैं। पर उनके लिये इस बात की आवश्यकता होती है कि हर एक के सामने अलग अलग थाल रखा जाय, जिसमें कोई दूसरा सम्मिलित न हो।"[1] इससे यह स्पष्ट है कि कम से कम अरबों के समय में इराक़ के बन्दरगाह में हिन्दू लोग बहुत बड़ी संख्या में आने जाने लगे थे। अरबवालों ने भी यह कहा है कि हिन्दू लोग छोटे काश्मीर (पंजाब) से सिन्ध तक नदी द्वारा बराबर यात्रा करते रहते थे।[2]

इससे बढ़कर एक और बड़ा प्रमाण यह है कि बुज़ुर्ग बिन शहरयार मल्लाह ने अपनी अजायब उल् हिन्द नामक पुस्तक में बीसों स्थानों पर "बानियाना" (अर्थात् बनिया) के नाम से जहाज़ के दूसरे यात्रियों के रूप में भारतीय व्यापारियों का नाम लिया है। बल्कि एक स्थान पर तो उसने "बानियाना" और "ताजर" (व्यापारी) ये दो शब्द अलग अलग दिये हैं[3] जिससे क्रमशः हिन्दू व्यापारियों और अरब सौदागरों का अभिप्राय है। अरब में आज तक हिन्दू व्यापारी "बानिया" कहलाता है और इसका बहुवचन "बानियाना" होता है। इराक़, बहरैन, उमान, सूडान, मसूअ, सईद बन्दर और कायरो (मिस्र) में आज भी ये लोग व्यापार करते हैं। हज्जाज और मिस्र की यात्रा में इन बनियों से मेरी भेंट भी हुई है।

ये लोग नित्य प्रति की बाजारू अरबी भाषा ऐसी सुन्दरता से बोलते हैं कि हमारे यहाँ के अच्छे मौलवी उनका मुंह ताकते रहें। ये लोग प्रायः सिन्धी, मुलतानी और गुजराती होते हैं, जो ईश्वर जाने कब से इन देशों में आते जाते रहते हैं। सन् ३००

---

[1] अबूज़ैद; पृ० ४६।

[2] अजायबुल् हिन्द; पृ० १०४।

[3] उक्त ग्रन्थ; पृ० १६५।

हि० में भी ये लोग अदन के पास अरब जहाज़ों में बैठे हुए दिखाई पड़ते हैं।[1]

भारतीय महासागर के जहाज़

भारत के समुद्र में जो जहाज़ चलते थे और रूम सागर में जो जहाज़ चलते थे उन दोनों में एक विशेष अन्तर था। रूम सागर के जहाज़ो के तख्ते लोहे की कीलों से जड़े जाते थे और भारतीय महासागर के जहाज़ों के तख्ते डोरी से सिए जाते थे।[2] इन जहाज़ों के विस्तार का अनुमान एक इसी बात से हो सकता है कि इनमें दो खंड होते थे; अलग अलग कमरे होते थे; पीने के पानी और भोजन का भंडार होता था; यात्रियों के रहने के स्थान के सिवा व्यापार की सामग्री रखने के गोदाम होते थे; और स्वयं जहाज़ में काम करनेवाले ख़लासी, मल्लाह और रक्षक या तीर चलानेवाले सिपाही सब मिलाकर एक हज़ार होते थे।[3] बुज़ुर्ग बिन शहरयार मल्लाह सन् ३०६ हि० की एक घटना इस प्रकार सुनाता है—

"सन् ३०६ में मैं एक जहाज़ पर सैराफ से भारत की ओर चला। हमारे साथ अब्दुल्ला बिन जुनैद का जहाज़ और यात्री का जहाज़ भी था। ये तीनों जहाज़ बहुत बड़े थे और समुद्र के प्रतिष्ठित जहाज़ में से थे। इनके मल्लाह भी बहुत प्रसिद्ध थे। इन तीनों जहाज़ों में व्यापारी, मल्लाह, बनिए आदि सब मिलाकर बारह सौ आदमी थे; और उनमें माल असबाब इतनी अधिकता से था कि उसका अनुमान नहीं हो सकता। ग्यारह दिन के बाद थाना (बम्बई) के चिह्न मिले।[4]

---

[1] उक्त ग्रन्थ; पृ० १४७।

[2] सुलैमान का यात्रा-विवरण; पृ० ८८।

[3] इब्न बतूता का यात्रा-विवरण; दूसरा खंड; चीन की यात्रा।

[4] अजायबुल हिन्द; पृ० १४७ और १६६।

इससे अनुमान हो सकता है कि ये जहाज़ इतने बड़े होते थे कि इनमें असबाब और ख़लासियों, मल्लाहों आदि के सिवा चार सौ आदमी सुखपूर्वक यात्रा कर सकते थे। चीन जानेवाले जहाज़ इतने बड़े होते थे कि उनमें केवल जहाज़ के सम्बन्ध के एक हज़ार आदमी होते थे। उनमें से छः सौ जहाज़ चलानेवाले होते थे और चार सौ तीर चलानेवाले और भाले फेंकनेवाले सैनिक होते थे। अब बाकी यात्रियों का अनुमान आप ही कर लीजिए। प्रत्येक बड़े जहाज़ पर तीन छोटी नावें समय कुसमय के लिये होती थीं।[1]

समुद्री व्यापार की सम्पत्ति

भारतीय महासागर के व्यापार से भारतवर्ष और अरब दोनों देशों को जो लाभ होते थे, उनका अनुमान कुछ बातों और घटनाओं से हो सकता है। वल्लभराय की राजधानी महानगर "सोने का नगर" कहलाता था। महाराज की राजधानी (जावा टापू) के बाज़ार में दूकानों की गिनती नहीं थी। इस बाज़ार में केवल सराफ़ी की ८०० दूकानें थीं।[2] उमानमें मोतियोंका एक व्यापारी था। उसने एक बार दो बहुत ही अद्भुत मोती पाए थे, जिनका मूल्य बग़दाद के ख़लीफ़ा ने एक लाख दरहम दिया था।[3] एक मल्लाह का कथन है—"सन् ३१७ हि० में मैं कल्लह (भारत) से व्यापार की सामग्री लेकर उमान गया। हमारे जहाज़ पर इतना अधिक माल था कि उमान के हाकिम ने हमारे जहाज से ६ लाख दीनार कर लिया। यह कर उस एक लाख दीनार के अतिरिक्त था, जो उसने अपनी कृपा से क्षमा कर दिया था या लोगों

---

[1] इब्न बतूता का यात्रा-विवरण; दूसरा खंड; कालीकट का प्रकरण।

[2] अजायनुल् हिन्द; पृ० १३७।

[3] उक्त ग्रन्थ; पृ० १३६।

ने चोरी से जो माल छिपा लिया था और प्रकट नहीं किया था।[1] इसी वर्ष सरन्दीप से एक और जहाज़ आया था, जिसने अपना कर छ लाख दिया था।[2] उमान में इसहाक नाम का एक यहूदी था जो दलाली का काम करता था। वह एक यहूदी से लड़कर भारत चला आया और फिर चीन चला गया। तीस वर्ष में उसने इतना धन कमाया कि स्वयं जहाज़ों का मालिक हो गया। जब अन्त में तीस बरस के बाद वह सन् ३०० हि० में फिर लौटकर उमान आया, तब उसने वहाँ के हाकिम को एक लाख दरहम इस लिये घूस दिया कि मेरा असबाब सरकारी तौर पर देखा भाला न जाय। इसके पास कस्तूरी का इतना अधिक भंडार था कि इसने एक लाख तोले कस्तूरी केवल एक व्यापारी के हाथ बेची थी। इसके सिवा साठ हज़ार अशर्फ़ी की कस्तूरी दूसरे दो व्यापारियों के हाथ बेची थी।[3] एक और आदमी बहुत दरिद्रता की अवस्था में उमान से गया था। जब वह लौटकर आया, तब एक पूरा जहाज़ उसके माल असबाब से भरा हुआ था, जिसमें दस लाख अशर्फ़ी की तो केवल कस्तूरी थी; और इतने ही मूल्य के रेशमी कपड़े और जवाहिरात आदि थे। इससे पाँच लाख दीनार कर लिया गया था।[4]

दूसरी ओर इन अरब व्यापारियों से भारतीय समुद्र-तट के राजाओं को भी बहुत आय होती थी। इसी लिये वे भी इनका बहुत आदर करते थे।[5] इब्न बतूता ने दक्षिणी भारत के समुद्र-तटों

---

[1] उक्त ग्रन्थ; पृ० १३०।

[2] उक्त ग्रन्थ; पृ० ११८।

[3] उक्त ग्रन्थ; १०८।

[4] मुअजमुल् बुल्दान; याकूत; "कैस" शब्द।'

[5] याकूत कृत मुअजमुल् बुल्दान, "कैस" शब्द।

के नगरों की यात्रा करते हुए स्थान स्थान पर लिखा है कि ये हिन्दू राजा लोग इन अरब व्यापारियों को इस लिये अप्रसन्न नहीं होने देते कि उनके राज्य की आय इन्हीं लोगों के आने जाने के कारण है। कालीकट और कारोमंडल के राजा इस समुद्री व्यापार के कारण असीम सम्पत्ति के स्वामी थे। कारोमंडल के एक राजा के मरने पर उसके एक मुसलमान कर्मचारी को जो सोना और जवाहिरात मिले थे उनको उठाने के लिये सात हज़ार बैलों की आवश्यकता थी।[1] इसी कारोमंडल को जब एक बार अलाउद्दीन ख़िलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर ने जीता था, तब उसको राजकोष से और और पदार्थों के सिवा ९६ हज़ार मन सोना[2] और ५०० मन मोती[3] और जवाहिरात मिले थे। यदि मोतियों और जवाहिरात का मूल्य छोड़ दिया जाय, तो भी ९६ हज़ार मन सोना ही क्या कम है! अलाउद्दीन के समय में प्रा:य तेरह चौदह सेर का मन होता था, अर्थात् अंगरेजी हिसाब से प्रायः २८ पाउंड का मन होता था। इस विचार से केवल इस सोने की तौल २६ लाख २८ हज़ार पाउंड होती है।

कारोमंडल का सारा व्यापार अरब, इराक़ और फ़ारस के समुद्र-तटों से होता था। इसका विवरण आगे दिया जायगा।

रूम सागर से भारत का दूसरा समुद्री मार्ग अरबों ने ढूंढा था

ऊपर कहा जा चुका है कि किस प्रकार पुर्त्तगाली मल्लाहों ने रूम सागर को छोड़कर अफ्रिक़ा की परिक्रमा करके भारत का मार्ग

---

[1] ईलियट, पहले खंड में पृ० ६९-७० में जामअ उत् तवारीख़ और ईलियट, खंड दूसरे पृ० ३२ और ५३ में तारीख़े वसाफ़।

[2] तारीखे ज़ियाबरनी; पृ० ३३३ (कलकत्ते में प्रकाशित)।

[3] ख़ज़ायनुल् फुतूह; अमीर खुसरो; पृ० १७८ (अलीगढ़ में प्रकाशित)।

ढूँढा था ; और यह समझा जाता है कि इस पता लगाने का श्रेय उन्हीं मल्लाहों के प्रयत्नों को है। पर पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इस पता लगाने का सम्मान इनसे सैकड़ों बरस पहले इन अरब व्यापारियों को प्राप्त है, जो भारतीय महासागर में अपने जहाज़ चलाया करते थे। यह विदित हो चुका है कि भारतीय सागर और रूम सागर के जहाज़ों की बनावट में क्या फ़रक़ था। बड़ा फ़रक़ यह था कि रूम सागर के जहाज़ों के तख़्ते लोहे की कीलों से जड़े जाते थे और भारतीय सागर के जहाज़ों के तख़्ते मजबूत रस्सी से, जो खजूर या नारियल की छाल से बनती थी, सीए हुए होते थे। सुलैमान सौदागर ने, जो सन् २३७ हि० में था और जिसका नाम ऊपर कई बार आ चुका है, अपने यात्रा विवरण में एक स्थान पर लिखा है—

"जिन नई बातों का हमारे समय में पता लगा और जिन्हें हम से पहले के लोग नहीं जानते थे, उनमें से एक बात यह भी है कि पहले किसी को इस बात की कल्पना भी नहीं थी कि जिस समुद्र पर भारत और चीन हैं, वह किस प्रकार शाम के सागर (रूम सागर अर्थात् भूमध्य सागर) से मिला हुआ है ; और इस सम्बन्ध में कोई तर्क या प्रमाण भी उनके पास नहीं था। पर हमारे समय में यह हुआ कि अरबों के कुछ सीए हुए जहाज़ों के तख़्ते, जो भारतीय महासागर में टूट गए थे और जिनके यात्री डूब गए थे, एटलान्टिक महासागर से होकर रूम सागर या भूमध्य सागर में पाए गए। इससे यह बात भली भाँति प्रमाणित हो गई कि भारतीय महासागर चीन (या अफ्रिक़ा ?) पर चक्कर खाकर भूमध्य सागर में जाकर मिल गया है ; क्योंकि सीए हुए जहाज़ केवल सैराफ़ में बनते थे और रूम तथा शाम के जहाज़ कीलों से जड़े जाते थे।'[1]

---

[1] सुलैमान का यात्रा-विवरण ; पृ० ८८।

वास्को डि गामा को किसने भारत पहुँचाया

इसमें सन्देह नहीं कि अफ्रिक़ा के दक्षिण से होकर पुर्त्तगाली जहाज़ अन्त में भारतीय महासागर में पहुँच गए; पर फिर भी उन्होंने भारत का पता न पाया। पुर्त्तगाली यह बात मानते हैं और अभागे अरब आप भी यह बात कहते हैं कि इन पुर्त्तगालियों को भारत तक एक अरब मल्लाह ने ही पहुँचाया था। उसका नाम इब्न माजिद था और "असदुल् बहर" (अर्थात् समुद्र का सिंह) उसकी उपाधि थी। भारतीय महासागर में जहाज़ चलाने की विद्या पर अरबी में इसकी कई पुस्तकें हैं, जो पेरिस के पुस्तकालय में रखी हैं। अभी कुछ ही वर्ष हुए, पेरिस के पूर्वी ग्रन्थों के प्रकाशक पाल गाथनर ने वह पुस्तकें दो खंडों में प्रकाशित कर दी हैं। तीसरे खंड में अरबों की नाव चलाने की विद्या और जहाज़ चलाने के उपकरणों का पूरा विवेचन है। इस तीसरे खंड में "अलबर्कुल् यमानी फिल् फतहिल् उस्मानी" के आधार पर, जो उसी समय का यमन का इतिहास है, इन घटनाओं का विस्तृत उल्लेख किया गया है कि किस प्रकार पुर्त्तगाली लोग भारत का पता लगाने के लिये इधर उधर मारे मारे फिरते थे, किस प्रकार समुद्र का सिंह इब्न माजिद उन पुर्त्तगाली लोमड़ियों के फन्दे में फँस गया और तब उसने किस प्रकार नशे की हालत में उन लोगों को भारत तक पहुँचा दिया।

भारत की काली मिर्चें और युरोप

आरम्भ में युरोप के जो पूर्वी व्यापारी ईसवी सत्रहवीं शताब्दी से भारत में आने लगे थे, उनके सम्बन्ध में सब लोग यह जानते हैं कि वे लोग काली मिर्चें बहुत अधिक पसन्द करते थे और उनके बड़े प्रेमी थे। वे लोग भारत से काली मिर्चें ही लाद लाद कर ले जाते थे। पर तेरहवीं शताब्दी का अरबी का एक भूगोल-लेखक ज़करिया

कजवीनी (सन् ६८६ हि०) सम्भवतः अपने से किसी पहले के ग्रन्थ में देखकर मलाबार के सम्बन्ध में कहता है—

"ये काली मिर्चें सुदूर पूर्व से लेकर सुदूर पश्चिम तक जाती हैं; और इनके सब से बड़े शौकीन फिरंग देश के लोग हैं, जो इनको शाम में रूम सागर से लेकर सुदूर पश्चिम के देशों को ले जाते हैं।"[1]

सम्भवतः तुर्कों ने क़ुस्तुन्तुनिया जीतकर और भूमध्य सागर पर अधिकार करके इन लोगों को भारत की इन्हीं काली मिर्चों के आनन्द से वंचित कर दिया था; और अन्त में उन्हीं मिर्चों के लिये जान जोखिम में डालकर वे लोग दूसरे समुद्री मार्ग से इस लिये भारत आए थे जिसमें यह अद्भुत उपहार किसी प्रकार अपने देश में पहुँचा सकें।

एक अरब हिन्दुस्तानी का जन्मभूमि सम्बन्धी गीत

इस प्रकरण का अन्त हम एक ऐसे गीत या कविता से करते हैं जो भारत में रहनेवाले एक देशप्रेमी अरब ने बनाया था। ऐसा जान पड़ता है कि भारत के महत्व के सम्बन्ध में किसी ने कुछ आपत्ति की थी; और उसीके उत्तर में उसने इस कविता में भारत के गुण गाए हैं और यहाँ होनेवाली चीज़ों की प्रशंसा की है।[2] इस कवि का नाम अबू जिलअ सिन्धी है और इसका समय कम से कम सन् ६८६ हि० से पहले होगा। आश्चर्य नहीं कि उसका समय हिजरी तीसरी या चौथी शताब्दी हो; क्योंकि सिन्ध में अरबों का समय यहीं समाप्त होता है। वह मूल कविता अरबी में है; इस लिये यहाँ वह कविता न देकर उसका केवल भावार्थ दिया जाता है।

---

[1] आसारुल् बिलाद; कजवीनी; तीसरा खंड; पृ० ८२ (गोटेंजन)।

[2] आसारुल् बिलाद; कजवीनी; पृ० ८५।

भावार्थ

"मेरे मित्रों ने नहीं माना और ऐसी अवस्था में यह बात ठीक नहीं थी, जब कि भारत की और भारत के तीर की युद्ध में प्रशंसा की जा रही थी।"

"अपने प्राणों की सौगन्द, यह वह भूमि है कि जब इसमें पानी बरसता है, तब उससे उन लोगों के लिये दूध, मोती और लाल उगते हैं जो शृंगार से रहित हैं।"

"इसकी मुख्य चीज़ों में कस्तूरी, कपूर, अम्बर, अगर और अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थ उन लोगों के लिये हैं, जो मैले हों।"

"और भाँति भाँति के इत्र जायफल, सम्बुल, हाथीदाँत, सागोन की लकड़ी, सुगन्धित लकड़ी और चन्दन हैं।"

"और इसमें तूतिया सब से बड़े पर्वत की तरह हैं; और यहाँ सेर बबर और चीते और हाथी और हाथी के बच्चे होते हैं।"

"यहाँ के पक्षियों में कुलंग, तोते, मोर और कबूतर हैं और वृक्षों में यहाँ नारियल आबनूस और काली मिर्चों के वृक्ष हैं।"

"और हथियारों में तलवारें हैं, जिनको कभी सिकली की आवश्यकता नहीं होती; और ऐसे भाले हैं कि जब वे हिलें, तब उनसे सेना की सेना हिल जाय।"

"तो क्या मूर्ख के सिवा कोई और भी ऐसा है जो भारत के इन गुणों का अस्वीकार कर सकता है?"

विद्या-विषयक सम्बन्ध

लेखक और ग्रन्थ जिनका आधार लिया गया है।

(१) जाहिज़

सन् २५५ हि० में इसका देहान्त हुआ था। यह बसरे का रहनेवाला था। यह अरबी भाषा का प्रसिद्ध लेखक, दार्शनिक और व्याख्याता था। इसकी बहुत सी छोटी बड़ी पुस्तकें हैं, जिनमें से किताबुल् बयान वत्तबईन और किताबुल् हयवान नाम की पुस्तिकाओं में कल्पित कथोपकथन हैं। ये छपी हुई हैं। अभी हाल में किताबुत् ताज नाम की इसकी एक पुस्तक मिस्र में प्रकाशित हुई है। जाहिज़ की किताबुल् बयान में भारत के भाषण सम्बन्धी सिद्धान्तों (अलंकार शास्त्र ?) पर एक पृष्ठ है; और पुस्तिकाओं में से एक में भारत के गुणों का वर्णन है। ये पुस्तकें मिस्र में छपी हैं।

(२) या.क़ूबी

इसका नाम अहमद बिन याक़ूब बिन जाफ़र है। अब्बासी राज्य में यह साहित्य विभाग का प्रधान था। इसने भारत और दूसरे देशों की यात्रा की थी। यह पहला मुसलमान इतिहास-लेखक था, जिसने सारे संसार की जातियों का इतिहास अरबी में लिखा था। सन् २८७ हि० में इसका देहान्त हुआ था। इसकी दो पुस्तकें छपी हैं। एक इतिहास की है जो दो खंडों में है; और दूसरी भूगोल की है। आश्चर्य है कि इसने भूगोल में भारत का वर्णन नहीं किया। लेकिन इतिहास के पहले खंड में इसने सबसे पहली बार उन पुस्तकों का वर्णन किया है, जिनका भारत की भाषाओं से अरबी में अनुवाद हुआ था। ये दोनों पुस्तकें लीडन में छपी हैं।

(३) मुहम्मद बिन इसहाक़ उपनाम इब्न नदीम

यह सन् ३७७ हि० में वर्त्तमान था। बग़दाद का रहनेवाला था। इसने उन सब पुस्तकों के नाम और विवरण लिखे हैं, जो उसके समय तक किसी विद्या या कला पर अरबी में लिखी गई थीं या जिनका किसी दूसरी भाषा से अरबी में अनुवाद हुआ था। इसमें भारत का भी अंश है। यह पुस्तक जरमन विद्वान् फ्लूगल (Flügel) के निरीक्षण में और उनकी टिप्पणियों के सहित सन् १८७१ ई० में लेपज़िक में प्रकाशित हुई थी।

(४) अबू रैहान बैरूनी

सन् ४४० हि० में इसका देहान्त हुआ था। इसने भारत की कलाओं और विद्याओं पर किताबुल् हिन्द के नाम से एक पूरी पुस्तक ही लिख डाली थी। प्रोफ़ेसर ज़खाऊ के परिश्रम से सन् १८८७ ई० में यह लंडन में प्रकाशित हुई थी। अँगरेज़ी और हिन्दी में भी इसका अनुवाद हो चुका है।

(५) काज़ी साअद अन्दुलसी

यह स्पेन का निवासी था। इसकी पुस्तक का नाम तबक़ातुल उमम है। सन् ४६२ हि० (सन् १०७० ई०) में इसका देहान्त हुआ था। इसने अपने समय तक की समस्त सभ्य जातियों और उनकी विद्याओं तथा कलाओं का इतिहास लिखा है, जो अरबी के द्वारा उस तक पहुँचा है। इसमें भारत पर भी एक प्रकरण है। इसकी यह पुस्तक बैरूत के कैथोलिक यन्त्रालय में सन् १९१२ ई० में छपी थी। फिर मिस्र में भी छप गई। मेरे सामने बैरूत की छपी प्रति है। दारुल् मुसन्निफ़ीन, आज़मगढ़, ने इसका उर्दू अनुवाद भी प्रकाशित कर दिया है।

(६) इब्न अबी उसैबअ मवफ़िकुद्दीन

यह अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान् और चिकित्सक था। इसका दादा सुलतान सलाहुद्दीन का चिकित्सक था। सन् ५९० हि० (सन् ११९४ ई०) से सन् ६६८ हि० (सन् १२७० ई०) तक इसका समय है। इसने ओयूनुल् अंबिया फ़ी तबक़ातिल अतिब्बा के नाम से समस्त सभ्य जातियों के प्रसिद्ध चिकित्सकों की जीवनियाँ लिखी हैं। दूसरे खंड में भारत का भी एक प्रकरण है। यह पुस्तक दो खंडों में मिस्रमें छपी है।

(७) अल्लामा शिबली नुअमानी

इन्होंने "तराजुम" (अनुवाद) के शीर्षक से अलीगढ़ की मुहम्मडन एजूकेशनल कान्फ़रेन्स में एक विस्तृत अभिभाषण (एड्रेस) पढ़ा था, जो पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हो चुका है। इसमें विस्तार सहित उन पुस्तकों का उल्लेख था जिनका यूनानी फ़ारसी, इब्रानी, सुरयानी आदि भाषाओं से अरबी में अनुवाद हुआ था। इसीके अन्तर्गत उन पुस्तकों का भी संक्षिप्त वर्णन है, जिनका संस्कृत से अरबी और फ़ारसी में अनुवाद हुआ था। लेकिन उस समय तक कुछ पुरानी पुस्तकें छपी ही नहीं थीं; और कुछ ऐसी थीं, जिनके सम्बन्ध की पूरी पूरी और ठीक बातों का तब तक पता ही नहीं चला था; इस लिये इस अभिभाषण का यह अंश अपूर्ण सा था।

विद्या-विषयक सम्बन्धों का आरम्भ

बरामका

अरब और भारत के विद्या विषयक सम्बन्धों का विवेचन करने से पहले यह आवश्यक जान पड़ता है कि उस वंश का कुछ वर्णन कर दिया जाय, जिसके प्रयत्नों से ये सम्बन्ध स्थापित हुए। अरबी भाषा में यह वंश साधारणतः "बरामका" के नाम से प्रसिद्ध है। यह वह वंश है, जिसने बग़दाद की अब्बासी ख़िलाफ़त में पचास वर्ष तक अर्थात् सन् १३६ हि० से सन् १८६ हि० तक बहुत ही शान्ति, सुव्यवस्था, अनुग्रह, दानशीलता और उदारता के साथ मन्त्री के कर्त्तव्यों का पालन किया था। यहाँ तक कि बहुत से ऐसे लोग हैं जो यह समझते हैं कि अब्बासी ख़िलाफ़त की कीर्त्ति, प्रसिद्धि और सुव्यवस्था इन्हीं बरमकी मन्त्रियों के कारण थी। यह इन्हींके अनुग्रह रूपी मेघों के छींटे थे, जिनसे बग़दाद किसी समय हरे भरे उपवन के समान बन गया था। पहले अब्बासी ख़लीफ़ा सफ़्फ़ाह से लेकर पाँचवें ख़लीफ़ा हारूनुर्रशीद तक इसी वंश के भिन्न भिन्न व्यक्तियों ने मन्त्री का काम किया था; बल्कि यों कहना चाहिए कि बादशाही की थी। यद्यपि इनके वंश का आरम्भ सफ़्फ़ाह के ही समय से होता है, पर इनके प्रताप का सूर्य हारूँ के समय में अपने सब से ऊँचे शिखर पर पहुँच गया था; और अभी दोपहर ही थी कि हारूँ के हाथों यह सदा के लिये डूब भी गया। हारूनुर्रशीद ने इस वंश को जिन कारणों से नष्ट किया, वे कारण सदा परदे में ही रहे, प्रकट नहीं हुए। पर फिर भी इतिहास-लेखकों ने यह प्रमाणित किया है कि इसका कारण केवल यह था कि बरामकः ने अपनी उदारता और कीर्त्ति से सब लोगों को पूरी तरह से अपने वश में कर लिया

था। साथ ही देश की सब अच्छी और बढ़िया ज़मीनें अपनी जागीर में कर ली थीं; और सारे राज्य पर इनका इतना अधिक प्रभुत्व हो गया था कि असल अब्बासी वंश मानों इन्हीं की कृपा और अनुग्रह पर बाकी रह गया था। ऐसी दशा में यदि ठीक समय पर बरामका की ख़बर न ली जाती, तो इस्लामी संसार में एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक क्रान्ति आ उपस्थित होती और अब्बासी वंश सदा के लिये मिट जाता। अतः अब्बासी वंश को बचाने के लिये बरमकी वंश को मिटाना आवश्यक था। कारण चाहे जो हो, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि बरामका का ही वह वंश था, जिसके संरक्षण में मुसलमानों में धार्म्मिक बातों को युक्ति से सिद्ध करने की विद्या, दर्शन, चिकित्सा, तर्क और दूसरी जातियों की विद्याएँ सीखने का अनुराग उत्पन्न हुआ।

बरामका कौन थे ?

साधारणतः यही प्रसिद्ध है कि बरामका लोग मजूसी अर्थात् ईरानी अग्निपूजक थे। बल्ख़ में मनोचहर का बनवाया हुआ नौबहार नाम का एक अग्निमन्दिर था। उसी अग्निमन्दिर के ये लोग पुजारी थे। जब मुसलमानों ने सन् ३१ हि० (सन् ६५१ ई०) में बल्ख़ को जीत लिया, तब यह अग्निमन्दिर भी इस आँधी में ठंढा पड़ गया। पर कुछ दिनों बाद फिर इसकी लपटें उठीं; और अन्त में सन् ८६ हि० (सन् ७०५ ई०) में प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति ख़ुरासान क़ुतैबा ने सदा के लिये इस देश को मुसलमानों के शासन क्षेत्र में मिला लिया। इस अग्निमन्दिर के पुजारी लोग पुराने बादशाहों के समय से बल्ख़ और उसके आस पास की मन्दिर के लिए संकल्प की हुई बस्ती के मालिक और हाकिम थे। उनमें से कुछ लोग अपनी इच्छा से मुसलमान हो गए और दमिश्क चले आए। इसके बाद जब फिर अरबों के शासन का केन्द्र सन् १३२ हि० में दमिश्क से हटकर बग़दाद

चला गया, तब वे भी बग़दाद चले आए और धीरे धीरे साम्राज्य और शासन के ऊँचे से ऊँचे पदों को पार करते हुए प्रधान मन्त्री के पद तक पहुँच गए; और एक समय ऐसा आया, जब कि उन्होंने सारे इस्लामी जगत् पर राज्य किया।

इस वंश के लोग उक्त अग्निमन्दिर के सब से बड़े पुजारी थे और यह वंश बरमक के नाम से प्रसिद्ध था। इसी बरमक का बहुवचन बरमका है, जिसके साथ इस वंश की प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि और कीर्ति बनी हुई है। प्रश्न यह है कि बरमक शब्द का मूल क्या है। प्राचीन इतिहास-लेखकों और कोषकारों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है। बाद के इतिहास-लेखकों और कोषकारों ने इसको फ़ारसी की "मकीदन" क्रिया से निकाला है, जिसका अर्थ "चूसना है; और कहा है कि इसमें "बर" उपसर्ग लगाकर इसको "बरमकीदन" कह सकते हैं। फिर इस शब्द के सहारे से एक निराधार कहानी की इमारत खड़ी की है। कहते हैं कि जब पहला बरमक मुसलमान होकर ख़लीफ़ा के सामने गया, यब ख़लीफ़ा ने उसको डाँटकर कहा—"तुझको बादशाहों के दरबार में आने का भी शऊर नहीं है। तू अपने पास ज़हर रखकर दरबार में आया है। मेरे पास ऐसे मोहरे हैं, जिनसे मुझको पता चल जाता है कि किसके पास ज़हर है।" प्रथम बरमक ने निवेदन किया—"मुझसे यह अपराध अवश्य हुआ। मेरी अँगूठी के नीचे ज़हर है; पर वह इस लिये है कि यदि मुझ पर कोई ऐसा कठिन समय आ जाय कि मुझे अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिये अपने प्राण देने पड़े, तो मैं इस अँगूठी को चूसकर प्राण दे दूँ।" उसकी मातृभाषा फ़ारसी थी; इस लिये उसने "चूस लूँ" को फारसी में "बरमकम्" कहा। उस समय से उसका नाम ही बरमक हो गया।[१] यह कहानी बिलकुल

---

[१] तारीख जियाए बरनी रौज़तुस्सफा; बुरहान क़ाते।

गढ़ी हुई है और केवल फ़ारसी कहानी लिखनेवालों की गप है। दमिश्क के दरबार की भाषा फ़ारसी नहीं थी, बल्कि अरबी थी। इसके सिवा इस कहानी का अर्थ यह होगा कि बरमक की उपाधि सन् ८६ हि० से चली। परन्तु अरबी के सभी प्रामाणिक लेखकों ने यही लिखा है कि यह बल्ख़ के प्रधान पुजारी की पुरानी उपाधि थी।

फ़ारसी के कुछ कोषकारों ने बरमक को किसी स्थान का नाम बतलाया है; और कहा है कि उसी नाम के सम्बन्ध के कारण लोग उनको बरमकी कहने लगे थे।[१] एक अरब साहित्यज्ञ ने भाषा विज्ञान की दृष्टि से इस शब्द की और भी मनोरंजक व्युत्पत्ति बतलाई है। उसने कहा है कि बल्ख़ का यह उपासना-मन्दिर काबे के जोड़ पर या उसके जवाब में बनाया गया था; इस लिये उसके प्रधान अधिकारी को "बरमका" अर्थात् मक्के का हाकिम कहते थे; और इसीका संक्षिप्त रूप बरमक है।[२] याक़ूत की मुअजमुल् बुल्दान नामक पुस्तक में इस शब्द की यह व्याख्या की गई है कि—"बर" का अर्थ पुत्र है, और बरमका का अर्थ है मक्का का पुत्र। यहाँ मक्का का अभिप्राय नौ-बहार नामक उपासना मन्दिर से है।

हमारी भाषा (उर्दू) में अल बरामकः के नाम से इस वंश का प्रसिद्ध इतिहास लिखा गया है। उसके सुयोग्य लेखक ने इस शब्द का मूल यह प्रकट किया है कि बरमक शब्द वास्तव में बरमग़ था। फ़ारसी में "मग़" आग के पुजारी या अग्निपूजक को कहते हैं। उर्दू कविता में जो मुग़ाँ या पीरेमुग़ाँ आदि शब्द आते हैं, वे इसीका बहुवचन हैं। इस शब्द का यूनानी रूप "मगोस" और अरबी रूप "मजूस" है। बर का अर्थ होता है प्रधान; इस लिये बरमग़ का अर्थ हुआ

---

[१] बुरहान काते।

[२] रबी उल् अबरार; ज़मख़शरी।

रईस और सरदार मजूस। हमें यह अर्थ मानने में कुछ भी आपत्ति नहीं है; पर शर्त्त यह है कि यह बात प्रमाणित हो जाय कि ईरान देश में नौबहार के अतिरिक्त और जो हजारों अग्नि-मन्दिर थे, उनमें से किसी एक का प्रधान, पुजारी, पुरोहित या दस्तूर भी कभी इस नाम से पुकारा गया है। इस व्याख्या या अर्थ के साथ फ़ारसी में यह शब्द इतना अधिक प्रचलित होना चाहिए था कि फ़ारसी शेरों में इसका व्यवहार बहुत अधिकता से होता और कोषकारों आदि को भी इसका ज्ञान होता। लेकिन इन लोगों के इधर उधर भटकने और परेशान होने से ही यह पता चलता है कि इन लोगों को इस शब्द की व्युत्पत्ति का ज्ञान नहीं था। इसके सिवा बरमग़ शब्द को अरबी में बरमज या अधिक से अधिक बरमुग़ कहना चाहिए था, न कि बरमक। इस बात का कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता कि फ़ारसी का "ग़ैन" या "ग" अरबी में "काफ" या "क" से बदला गया है। हाँ "ज" से वह अवश्य बदला गया है; जैसे "चिराग" से "सिराज"। तुर्की नाम "हलाकू" का मूल रूप लोग साधारणतः "हलागू" समझते हैं; पर वास्तव में यह बात नहीं है, बल्कि उसका मूल रूप "हलागू" है। और फिर आश्चर्य नहीं कि इस अत्याचारी और रक्त के प्यासे बादशाह के नाम के लिये हलाकू का अशुद्ध उच्चारण इस लिये ग्रहण कर लिया गया हो कि अरबी शब्द "हलाक" (मृत्यु) की जो ध्वनि है, वह ध्वनि व्यंग्यपूर्वक उसमें छिपी रहे।

वास्तविक बात यह है कि इस शब्द की व्याख्या या मूल इस भेद के खुलने पर निर्भर करता है कि क्या बल्ख़ का यह उपासना-मन्दिर वास्तव में मजूसियों का अग्निमन्दिर था? और क्या इस्लाम ग्रहण करने से पहले इस वंश का धर्म अग्निपूजन था? ईरानियों की ओर से तो इन प्रश्नों का यही उत्तर मिलेगा कि हाँ, ऐसा ही है। यह अग्निपूजकों का मन्दिर था और वह वंश अग्निपूजक था।

पर वास्तविक बात यह है कि यदि कोई आदमी असाधारण रूप से योग्य या बड़ा होता है, तो सभी जातियों के लोग उसे अपने में सम्मिलित करना चाहते हैं और उसे अपनी जाति का बतलाते हैं। क्या ईरानी लोग सिकन्दर को ईरानी राजवंश का नहीं बतलाते? और क्या मुसलमानों ने अपनी कहानियों में सिंह हृदय रिचर्ड को सुलतान सलाहुद्दीन के ही वंश का वंशधर नहीं बतलाया? यही दशा बरामका की भी हुई। ईरानियों ने तो इनके वंश का सम्बन्ध खींच तानकर गुश्तास्प के मन्त्री जामास्प तक पहुँचा दिया है; और प्रमाणित किया है कि यह ईरानी मन्त्रियों का पुराना वंश था।[1] इसके विपरीत अरबों ने यह कह डाला कि प्रथम जाफ़र बरमकी, जिससे इस वंश की उन्नति का आरम्भ होता है, ख़ुरासान के अरब सेनापति क़ुतैबा का पुत्र था। जाफ़र की माता युद्ध में क़ुतैबा के हाथ लगी थी और सन्धि होने पर गर्भवती होकर लौट गई।[2]

वंश आदि के इन भिन्न भिन्न विवादास्पद वर्णनों से अलग होकर पहले इस उपासनामन्दिर की अवस्था पर विचार करना चाहिए; और यह देखना चाहिए कि क्या एक अग्निमन्दिर की विशेषताएँ इसमें पाई जाती थीं? अग्निमन्दिर के लिये सब से पहली बात यह है कि वह वास्तव में अग्नि का मन्दिर हो, उसमें आग जलती हो। लेकिन बल्ख़ के इस उपासना मन्दिर के सम्बन्ध में केवल पीछे के कुछ ऐसे लोगों ने ही यह बात कही है, जो सतर्क होकर कोई बात नहीं कहते। और किसी ने ऐसा नहीं कहा है। इस उपासनामन्दिर के सम्बन्ध में सब से पुराना उल्लेख इस समय हमारे हाथ में बिलाज़ुरी का है; पर उसने इस सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं दिया है। इसके उपरान्त मसऊदी

---

[1] सियासतनामा व नुज़हतुल् कुलूब; हम्दुल्लाह मुस्तौफ़ी।

[2] तबरी व इब्न असीर।

(सन् ३३० हि०) और इब्नुल् फ़क़ीह हमदानी का समय है। फिर मुअजमुल् बुल्दान याकूत (सन् ६२६ हि०) और आसारुल् बिलाद; जकरिया क़ज़्वीनी (सन् ६८६ हि०) का वर्णन है। इब्नुल् फ़क़ीह और याकूत का आरम्भिक वर्णन अक्षर अक्षर एक है; और याकूत ने जो वर्णन किया है, वह उमर बिन अल्अज़रक से लिया हुआ है।

मसऊदी का वर्णन

इतिहास-लेखक मसऊदी नौबहार के सम्बन्ध में लिखता है—"नौबहार का मन्दिर बहुत मज़बूत और ऊँचा था; और उसके ऊपर बाँसों पर हरे रेशमी कपड़े के झंडे लहराते थे, जिनमें से हर झंडे का कपड़ा सौ सौ हाथ के बराबर होता था। . . . उसके चारों ओर की दीवारें भी ऐसी ही ऊँची थीं। उसके झंडे का रेशमी कपड़ा इतना बड़ा था कि दूर दूर तक जाता था।"[1]

पाठकों ने देख लिया कि इसमें आग का कहीं नाम नहीं है; और न मन्दिर का यह ढंग और न ये झंडे अग्निमन्दिरों में होते हैं।

इब्नुल् फ़क़ीह का वर्णन

इब्नुल् फ़क़ीह हमदानी का वर्णन इस प्रकार है—

"नौ-बहार—यह बरमका का बनवाया हुआ मन्दिर था। उसका धर्म मूर्त्तियों की पूजा करना था। जब उनको मक्के और क़ुरैश के धर्म का पता लगा, तब उन्होंने भी यह उपासना मन्दिर बनवाया, जिसका नाम नौ-बहार हुआ, जिसका अर्थ नया या नवीन है। अरबों से भिन्न लोग यहाँ दर्शन करने के लिये आते थे। इसको रेशम का कपड़ा पहनाया जाता था। इसपर एक गुम्बद था, जिसका नाम अशबत

---

[1] मुरूजुज़ ज़हब; चौथा खंड; पृ० ४८ (पेरिस)।

था। यह गुम्बद सौ हाथ लम्बा और सौ हाथ चौड़ा था। मन्दिर के चारों ओर उसके पुजारियों के रहने के लिये ३६० कोठरियाँ थीं। साल के प्रत्येक दिन के लिये एक पुजारी रहता था; और उन पुजारियों के प्रधान की उपाधि का बरमका थी। इस बरमका शब्द का अर्थ होता है—मक्के का द्वार और प्रधान पुजारी। इस प्रकार हर एक पुजारी की उपाधि बरमक होती थी। चीन और काबुल के बादशाह इस धर्म में थे। जब वे लोग यहाँ आते थे, तब विशाल मूर्त्ति के आगे नमस्कार करते थे।"[१]

पाठकों ने देख लिया कि इस वर्णन में भी अग्नि के होने का कहीं कोई उल्लेख नहीं है; बल्कि उसके बदले में इसमें मूर्त्तियों का उल्लेख है, जिनका अग्निमन्दिरों से कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर मजूस और ईरानी लोग मूर्त्ति की पूजा भी नहीं करते। सब लोग यह भी जानते हैं कि चीन और काबुल में कभी अग्नि की पूजा नहीं होती थी।

या.कूत का वर्णन

रूम का याक़ूत एक पुराने ग्रन्थकार के आधार पर यह वर्णन करता है—

"उमर बिन अज़रक क़िरमानी ने कहा है कि बरामका लोग बल्ख़ में सदा से प्रतिष्ठित माने जाते थे; और जब (सिकन्दर के बाद) ईरान में अराजकता फैली थी, उससे पहले से ये लोग वहाँ थे। उनका धर्म मूर्त्तियों की पूजा करना था। (फिर मक्के के ढंग पर और उसके मुकाबले में नौ-बहार का बनना उसी प्रकार बतलाया है, जिस प्रकार ऊपर कहा जा चुका है।) इसमें चारों ओर मूर्त्तियाँ खड़ी थीं

---

[१] फितावुल् बुल्दान; पृ० ३२१ (लीडन)।

और उनको रेशम के कपड़े पहनाए जाते थे। नौ-बहार का अर्थ नई बहार या वसन्त ऋतु है, क्योंकि हर नई बहार या वसन्त ऋतु में उन मूर्त्तियों पर फूलों की नई कलियाँ चढ़ाई जाती थीं। फ़ारसवाले यहाँ आकर दर्शन करते थे और इसके सब से बड़े गुम्बद पर झंडे खड़े करते थे। इस गुम्बद का नाम "अस्तन" था और इसके चारों ओर ३६० कमरे थे, जिनमें पुजारी रहते थे। भारत, चीन और काबुल के बादशाह इस धर्म में थे और यात्रा के लिये यहाँ आते थे। वे लोग आकर बड़ी मूर्त्ति के आगे प्रणाम करते थे। यह इतना बड़ा था कि इसके झंडे का कपड़ा बल्ख़ से उड़कर तिरमिज़ पर जाकर गिरता था।"[1]

फूल के चढ़ावे और बहार की विशेषताएँ आदि सब फ़ारसी के बहार शब्द की समानता के कारण गढ़ ली गई हैं, जिसमें नौ-बहार नाम की उपयुक्तता और सार्थकता प्रकट हो।

क़ज़वीनी का वर्णन

बल्ख़ के वर्णन में क़ज़वीनी लिखता है—"यहीं वह मन्दिर था, जिसका नाम नौ-बहार था और जो सब मन्दिरों से बड़ा था। (इसके उपरान्त वही मक्के की नकल और समानता की कहानी है।) यह रेशम और जवाहिरात से सजाया गया था और इसमें मूर्त्तियाँ खड़ी थीं। फ़ारसवाले और तुर्क लोग इसपर श्रद्धा रखते थे और आकर इसके दर्शन करते थे। वे लोग भेंट और उपहार भी चढ़ाते थे। इस मन्दिर की लम्बाई सौ हाथ, चौड़ाई सौ हाथ और ऊँचाई सौ हाथ से अधिक थी। बरामका यहाँ के असली पुजारी थे। भारत

---

[1] मुअजमुल् बुल्दान; आठवाँ खंड; पृ० ३२१ (मिस्र) "नौ-बहार" शब्द।

के राजा और चीन के ख़ाक़ान यहाँ आते थे[१] और मूर्त्तियों को प्रणाम करते थे।"

बौद्ध-विहार

इन सब वर्णनों से इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि यह मजूसियों का अग्निमन्दिर नहीं था, बल्कि बौद्धों का विहार था; और इसी विहार का बिगड़ा हुआ रूप यह बहार शब्द है। नौ-बहार वास्तव में नव-विहार है। बौद्धों के मन्दिर और पुजारियों के रहने के स्थान को विहार कहते हैं, जिसका एक उदाहरण स्वयं हमारे देश में बिहार नामक नगर है, जो वास्तव में बौद्धों का विहार है। मुसलमानों ने इसको अपने फ़ारसी उच्चारण के ढंग पर "बहार" बना लिया है। इसी नव-विहार के नामवाले अनेक विहार सिन्ध में मुसलमानों के पहले पहल आने से पूर्व वर्त्तमान थे। अरब इतिहास-लेखकों ने उन विहारों का जो वर्णन किया है, वह बल्ख़ के नौ-बहार के सम्बन्ध में अक्षरशः ठीक घटता है।

बिलाज़ुरी (सन् २४७ हि०) जो बहुत पुराना इतिहास-लेखक है, फ़ुतूहुल् बुल्दान में सिन्ध की विजय के प्रकरण में लिखता है— "देबल में एक बहुत बड़ा बुद (बौद्धों का उपास्य देवता, वास्तव में बुद्ध की मूर्ति) था, जिसके ऊपर एक बहुत बड़ा स्तम्भ था; और उसमें बहुत बड़ा लाल झंडा था, जो इतना बड़ा था कि जब हवा चलती थी, तब वह सारे नगर के ऊपर लहराता था। और 'बुद' जैसा कि (सिन्ध के आने जानेवाले) लोगों ने बतलाया, उस मन्दिर को कहते हैं, जिसमें एक या कई मूर्तियाँ होती हैं। उसमें एक बहुत बड़ा मीनार होता है; और कभी उस मीनार के अन्दर ही वह मूर्त्ति रखी

---

[१] आसारुल् बिलाद; क़ज़वीनी; पृ० २२१ (गोटेंजन)।

रहती है। वे लोग जिस चीज़ को उपास्य समझकर उसका आदर करते हैं, वही बुद्ध होता है; और बुत (मूर्ति) भी 'बुद' ही होता है।"[१] क्या इस वर्णन के उपरान्त भी इस बात में किसी प्रकार का सन्देह रह जाता है कि बल्ख़ का यह नौ-बहार बौद्धों का मन्दिर था, मजूसियों का अग्निमन्दिर नहीं था?

आश्चर्य है कि पुराने इतिहास-लेखकों को छोड़कर युरोप के नए जानकार इतिहास-लेखकों का ध्यान भी इस ओर नहीं गया। वान क्रेमर ने बरामका को मजद्की (अपने आपको पैगम्बर बतलाने वाले मजद्क का अनुयायी) बतलाया है,[२] और प्रोफेसर ब्राउन सरीखे अन्वेषण करनेवाले को भी इस रहस्य का पता न लगा। वह भी नौ-बहार को अग्निमन्दिर और बरामका को मजूसी कहते हैं[३]। लेकिन छान बीन करते समय हमें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि ज़ख़ाऊ ने किताबुल् हिन्द के अँगरेज़ी अनुवाद की भूमिका (पृ० ३१) में नौ-बहार का असल रूप 'नव-विहार' बतलाया है; और कहा है कि यह बौद्ध भिक्षुओं के रहने का विहार था। आजकल के युरोप के अन्वेषकों में से कम से कम एक महाशय डब्ल्यू० बर्थाल्ड (W. Barthald) ने इन्साइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम के "बरामका" शीर्षक विषय (पहला खंड; पृ० ६६३) में कुछ पंक्तियों में यह संकेत किया है—"जैसा कि एक चीनी यात्री का कहना है, नौ-बहार बौद्धों का नव-विहार जान पड़ता है; और इब्न फ़क़ीह ने इस मन्दिर का जो स्वरूप बतलाया है, उससे यह प्रमाणित होता है।" लेकिन

---

[१] फ़ुतूहुल् बुल्दान; पृ० ४३७ (सन् १८६६ में बरेल में प्रकाशित)

[२] सलाहुद्दीन ख़ुदाबख़्श के ग्रन्थ का अँगरेज़ी अनुवाद।

[३] लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया (Literary History of Persia) पहला खंड पृ० २५८।

इनमें से भी किसी ने न तो इस सम्बन्ध में कोई तर्क स्थापित किया है और न कोई प्रमाण दिया है। फिर इसीके साथ सब लोगों ने बार बार यह भूल की है कि बरामका को ईरानी वंश का मजूसी या अग्निपूजक माना है; और यह भी कहा है कि ईरानियों ने इसे अग्निमन्दिर बना लिया है।

लेकिन मेरी समझ में यह बात बिलकुल ग़लत है। मैं ज़ोर देकर कह सकता हूँ कि बरामका लोग बौद्धधर्म के अनुयायी थे और उनका वास्तविक सम्बन्ध भारत से था, न कि ईरान से। यह ठीक है कि बरामका लोगों के समय में कुछ निन्दा करनेवाले कवियों या दुष्ट लोगों ने स्पष्ट रूप से उनको मजूसी या अग्निपूजक बतलाया है, पर इसका कारण यह है कि अरब लोग यही नहीं जानते थे कि अजम (फ़ारस) देश के निवासियों में मजूसियों के सिवा और भी किसी धर्म या जाति के लोग रहते हैं। दूसरी बात यह है कि ईरानियों और बरमकियों की राजनीतिक आवश्यकता यह थी कि दोनों आपस में अजम देश के निवासी बनकर एक दूसरे के साथी और सहायक बने रहें, चाहे अन्त तक उन दोनों का यह मित्रता का सम्बन्ध न निभ सका और इसी कारण से बरामका वंश का पतन हुआ।

मेरा यह कहना है कि नौ-बहार बौद्धों का मन्दिर था और बरामका लोग असल में बौद्ध थे; और इस सम्बन्ध में नीचे लिखे प्रमाण हैं—

(क) नौ-बहार कहीं किसी मजूसी मन्दिर का नाम नहीं था। इसके विरुद्ध यह बौद्धों के मन्दिर का प्रसिद्ध नाम है; और सिन्ध में इसी नौ-बहार के नाम से अनेक बौद्ध मन्दिर उसी समय वर्त्तमान थे।[१]

---

[१] चचनामा का अँगरेज़ी अनुवाद; ईलियट; पहला खंड; पृ० १५०।

(ख) अरब भूगोल-लेखकों और विश्वसनीय इतिहास-लेखकों ने इस मन्दिर का जो वर्णन किया है, वह बिलकुल बौद्ध मन्दिर का चित्र है।

(ग) ईसवी सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग ने बल्ख़ के इस मन्दिर का उल्लेख किया है[१]; और यह समय लगभग वही होगा जब कि अरब विजेता लोग यहाँ पहुँच चुके होंगे या पहुँचनेवाले होंगे।

(घ) इस नौ-बहार का वर्णन करता हुआ मसऊदी कहता है—"लोग ऐसा कहते हैं और कुछ जाँच करनेवालों का भी यह कहना है कि उन्होंने नौ-बहार के फाटक पर फ़ारसी में एक लेख पढ़ा था, जिसमें लिखा था—"बुज़ आसफ़ का कथन है कि राजाओं के द्वार तीन गुणों के इच्छुक रहते हैं—बुद्धि, सन्तोष और धन।" इसके नीचे किसी ने अरबी में लिख दिया था—"बुज़ आसफ़ ने जो कुछ कहा, वह ग़लत है। जिसमें इन तीनों में से एक बात भी होगी, वह किसी राजा के द्वार पर क्यों जायगा।"[२] इतिहास की बातों का पता लगानेवाले लोगों को इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है कि अरबवाले बुद्ध को ही बुज़ आसफ़ कहते थे।[३] यदि यह बौद्धों का मन्दिर न होता, बल्कि मजूसियों का अग्नि मन्दिर होता, तो इसके प्रधान द्वार पर बुद्ध का बचन क्यों लिखा होता ?

(ङ) बल्ख़ ख़ुरासान का एक नगर है; और पुराने तथा इस समय के सभी अन्वेषकों का यह कहना है कि ख़ुरासान देश में इस्लाम

---

[१] इन्साइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम; पहला खंड; पृ० ६६४।

[२] मुरूजुज़ ज़हब; चौथा खंड; पृ० ४६ (पेरिस)।

[३] किताबुल् फ़ेहरिस्त; इब्न नदीम; पृ० ३४५ (फ़्लूगल की टिप्पणियों से युक्त)।

धर्म का प्रचार होने से पहले बौद्ध धर्म का प्रचार था। इब्न नदीम ने भी .खुरासान के एक पुराने इतिहास के आधार पर लिखा है—"इस्लाम से पहले .खुरासान का धर्म बौद्ध था।"[१]

(च) बरामका से धर्म के सम्बन्ध में इतिहास-लेखकों ने यह भी लिखा है—"नौबहार के पुजारी का जो धर्म था, वही धर्म भारत, चीन और तुर्कों के बादशाह का भी था।"[२] सब लोग यह बात जानते हैं कि भारत, काबुल, चीन और तुर्किस्तान का धर्म बौद्ध था, अग्निपूजा या मजूसियत नहीं।

(छ) याक़ूत के ग्रन्थ में एक पहले के इतिहास-लेखक उमर बिन अज़रक क़िरमानी (यह क़िरमानी अवश्य ही ईसवी तीसरी चौथी शताब्दी का है; क्योंकि ठीक यही वाक्य इब्नुल् फ़क़ीह में भी हैं जो चौथी शताब्दी के मध्य में था) के आधार पर लिखा है—"जब हज़रत उस्मान के समय में बल्ख़ जीता गया, तब नौ-बहार का प्रधान पुजारी बरमक भी ख़िलाफ़त के दरबार में गया; और वहाँ वह अपनी इच्छा से मुसलमान हो गया। जब वह वहाँ से लौटकर बल्ख़ आया, तब लोग उसके धर्म परिवर्त्तित करने से असन्तुष्ट हो गए, और उसको प्रधान पुजारी के पद से हटाकर उन लोगों ने उसके स्थान पर उसके लड़के को प्रधान पुजारी बनाया। फिर नेजक तरख़ान (तुर्किस्तान का बादशाह) ने उसको लिखा कि तुम इस्लाम छोड़कर फिर अपने पुराने धर्म में आ जाओ। उसने उत्तर दिया कि मैंने अपनी इच्छा से इस्लाम ग्रहण किया है; और इसको अच्छा समझकर ग्रहण किया है; इस लिये मैं इसे छोड़ नहीं सकता। तरख़ान ने उस पर चढ़ाई करने

---

[१] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ।

[२] इब्नुल फ़क़ीह, क़ज़वीनी और याक़ूत के कथन ऊपर दिये जा चुके हैं।

का विचार किया; पर बरमक की धमकी से उस समय वह चुप हो गया। पीछे से उसने धोखा देकर उसको और उसके साथ उसके दस पुत्रों को भी मरवा डाला। केवल एक छोटा बालक बच गया।"

अब प्रश्न यह है कि यदि नौ-बहार अग्निमन्दिर होता और बरामका लोग अग्निपूजक होते, तो बौद्धों के बादशाह तरख़ान को उस पर क्रोध क्यों आता और वह उसके तथा उसके वंश के पीछे क्यों पड़ता?

(ज) बरमक और उसके पुत्रों के मारे जाने के बाद बरमक की स्त्री छोटी अवस्थावाले अपने बालक को लेकर भाग गई और भागकर काश्मीर आई। उस छोटे बच्चे की शिक्षा आदि काश्मीर में ही हुई; और यहीं उसने चिकित्सा, ज्योतिष् और भारत की दूसरी विद्याएँ सीखीं और वह अपने बाप दादा के धर्म का पालन करता रहा। संयोग से एक बार बल्ख़ में मरी फैली। वहाँ के लोगों ने यह समझा कि अपना पुराना धर्म छोड़ने के कारण लोगों पर यह आपत्ति आई है। इस लिये उन लोगों ने नवयुवक बरमक को काश्मीर से बल्ख़ बुलवाकर नए सिरे से नौ-बहार का शृंगार किया।[१]

बल्ख़ से भागकर काश्मीर आने और यहाँ शिक्षा प्राप्त करने का इसके सिवा और कोई कारण नहीं हो सकता कि इस वंश का सम्बन्ध भारत से था और उनका धर्म बौद्ध था, जिसका एक केन्द्र काश्मीर भी था। नहीं तो उनके लिये यह सहज था कि वे लोग तुर्कों के अत्याचार से भागकर अपनी जाति और अपने धर्मवाले लोगों के पास ईरान जाते या मुसलमानों के पास आकर शरण लेते। फिर एक मजूसी या अग्निपूजक लड़के की शिक्षा दीक्षा किसी दूसरे देश और धर्म में क्या

---

[१] देखो याक़ूत कृत मुअजमुल् बुल्दान में "नौ-बहार" शब्द और किताबुल् बुल्दान इब्नुल फ़क़ीह पृ० ३२४ (लीडन)।

हो सकती है ; और यहाँ काश्मीर में उसको अपने धर्म की क्या शिक्षा मिलती।

(झ) जिस समय यह वंश भारत में इस्लाम धर्म लाया था, उससे पहले का भारत के साथ यह सम्बन्ध था। इस देश में अपने साथ इस्लाम धर्म लाने के बाद इस वंश ने भारत के साथ अपना सम्बन्ध और दृढ़ कर लिया ; और भारत के पंडितों को इराक़ में बुलवाकर अपने दरबार में स्थान दिया। सिन्ध के सम्भवतः बौद्ध विद्वानों और चिकित्सकों को बुलवाकर उसने बग़दाद के अनुवाद-विभाग और चिकित्सालयों में नियुक्त किया ; और भारत के धर्मों तथा ओषधियों आदि की जाँच के लिये कुछ लोगों को यहाँ भेजा। इब्न नदीम ने अपनी किताबुल् फ़ेहरिस्त में, जो सन् ३७७ हि० की लिखी हुई है, इस प्रकार लिखा है—

"अरबों के राज्य के समय भारत के विषयों में जिसने सबसे अधिक हृदय से ध्यान दिया, वह यहिया बिन ख़ालिद बरमकी और दूसरे बरामका लोग हैं, जिनका यह कार्य और व्यवस्था भारत के विषय में और वहाँ के पंडितों और वैद्यों को भारत से बग़दाद बुलवाने के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है।"[१]

यदि ये लोग ईरानी अग्निपूजक होते, तो इनके ध्यान और प्रयत्न का केन्द्र भारत के बदले ईरान होना चाहिए था।

(ञ) सब से बड़ी बात एक और है। वह यह कि इनके वंश का नाम बरमक है और नौबहार के प्रधान पुजारी की प्रतिष्ठासूचक उपाधि भी बरमक ही है और यह बरमक शब्द संस्कृत के "परमक" से निकला है। डा० जखाऊ, जो स्वयं संस्कृत के पंडित हैं, कहते हैं कि संस्कृत में "परमक" शब्द का अर्थ है—श्रेष्ठ और बड़े पदवाला। हमने

---

[१] किताबुल् फ़ेहरिस्त ; पृ० ३४५ (लेपज़िक ; सन् १८७१ ई०)

भी जब संस्कृत जाननेवाले लोगों से पूछा, तो उन्होंने कहा कि हाँ, यह ठीक है।

(ट) नौबहार के भवन में जो बहुत बड़ा गुम्बद बना हुआ था उसका नाम भिन्न भिन्न ग्रन्थों में थोड़े थोड़े अन्तर से कई रूपों में लिखा हुआ मिलता है। याकूत की मिस्रवाली प्रति में उसका नाम "अस्तन" बतलाया गया है। यूरोप की प्रति इस समय मेरे पास नहीं है; पर इब्नुल् फ़क़ीह की लीडन की छपी हुई जो प्रति इस समय मेरे सामने है उसमें असल पाठ में तो इसका नाम "आसबत" लिखा हुआ है, पर प्रसिद्ध विद्वान् डी गोजी (De Goeje) ने और दूसरी दूसरी प्रतियों के आधार पर उसके नीचे लिखे कई रूप दिए हैं; जैसे अस्तन, अस्त, अस्वत। मेरी समझ में इस शब्द का शुद्ध रूप "आस्तब" है और यह बौद्ध शब्द "स्तूप" का फ़ारसी और अरबी रूप है। सब लोग जानते हैं कि स्तूप बौद्धों का उपासना मन्दिर होता है, जिसमें बुद्ध की राख या समाधि होती है। भारत में भी इस तरह के कई स्तूप निकल चुके हैं और पुरातत्त्ववेत्ताओं ने उनका पूरा पूरा वर्णन किया है। यहाँ भी फ़ारसी के एक शब्द की समानता ने धोखा दिया है। फ़ारसी में "अस्तन" खम्भे को कहते हैं (सं० स्तम्भ) जिसका दूसरा फ़ारसी रूप "सतून" हमारी (उर्दू) भाषा में प्रचलित है। इसी लिये लिखनेवालों ने अपने विचार के अनुसार अस्तब या आस्तब शब्द निरर्थक समझकर उसको फ़ारसी रूप दे दिया है, जिसमें उसका कुछ अर्थ निकलने लगे। लेकिन इससे बढ़कर निरर्थक बात और क्या होगी कि एक गुम्बाद का नाम खम्भा रखा जाय!

हमने इस प्रश्न के एक ही अंग पर बहुत विस्तार से विवेचन किया है। सम्भव है कि लोग कहें कि हमने व्यर्थ ही इस प्रसंग को बहुत बढ़ाया है। पर इतना विवेचन होने पर इस प्रश्न का जो निराकरण होता है, यदि उसके महत्व का विचार किया जाय, तो मेरा यह अपराध

बहुत हलका हो जायगा; और पाठक समझ लेंगे कि बरामका लोगों ने अपने मन्त्री होने के समय विद्याओं और कलाओं आदि का प्रयत्न पूर्वक जो प्रचार किया और उनको जो आश्रय दिया, कविता आदि का जो आदर किया और भारत के चिकित्सा और ज्योतिषशास्त्र को अरबी में ले जाने का जो प्रयत्न किया, उसका श्रेय, मेरे ऊपर दिए हुए प्रमाणों के बाद, ईरान के बदले भारतवर्ष को मिल जायगा; और भारत का यह कोई साधारण काम न होगा।

अरबी भाषा की सबसे बड़ी इन्साइक्लोपीडिया या विश्वकोष इब्न फ़ज़्लुल्लाह अल् उमरी मिस्री का मसालिकुल् अब्सार फ़ी ममालिकिल् अम्सार नामक ग्रन्थ है, जिसका पहला खंड अभी हाल में छपा है। उसमें नौबहार का इतिहास और वर्णन इस प्रकार दिया गया है।[१]

"नौबहार को भारत (के राजा) मतोशहर ने बल्ख़ में बनाया। यहाँ नक्षत्रों की पूजा करनेवाले वे लोग आते थे, जो चन्द्रमा को पूजते थे; और इसके प्रधान पुजारी का नाम बरमक होता था। फ़ारस के बादशाह इसका और इसके पुजारी का सम्मान करते थे। अन्त में यह पद ख़ालिद बिन बरमक के पिता को मिला; और इसी लिये इनको बरामका कहते हैं। यह बहुत ऊँची इमारत थी, हरे रेशमी कपड़े से ढाँकी जाती थी और इसी हरे रेशमी कपड़े के सौ सौ हाथ के झंडे उस पर फहराते थे। उस मन्दिर पर यह वाक्य लिखा हुआ है .....।"

इसके आगे वही वाक्य लिखा है, जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। उसमें केवल एक अन्तर है। वह यह कि इसमें "बुज़ आसफ़" के स्थान पर "सोराश़फ़" लिखा है, जो ठीक नहीं है।

---

[१] उक्त विश्वकोष; पहला खंड; पृ० २२३ (मिस्र)।

इस वर्णन में यह कहा गया है कि इस मन्दिर का बनानेवाला भारतीय था; और इससे हमारे कथन के समर्थन में एक और प्रमाण मिलता है। इस वर्णन में नौबहार को चन्द्रमा की पूजा करनेवालों का मन्दिर कहा गया है; लेकिन फिर भी अग्निपूजकों का मन्दिर नहीं कहा गया है। यदि यह चन्द्रमा के उपासकों का मन्दिर था, तो भी इससे भारत की ओर ही संकेत होता है; क्योंकि कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू शब्द का मूल रूप इन्दु है जो चन्द्रमा को कहते हैं; और इसी सम्बन्ध से इस देश का यह नाम पड़ा।[1] यही वह साक्षियाँ हैं, जिन्हें हम अपने कथन के समर्थन में उपस्थित करते हैं। इन साक्षियों से भारत और अरब के विद्या विषयक सम्बन्धों की वह खोई हुई कड़ी मिल जाती है, जिससे बरामका और भारत के विद्या विषयक सम्बन्धों की शृंखला बहुत दृढ़ हो जाती है; और यह रहस्य खुल जाता है कि बरामका लोगों की भारत की विद्याओं और कलाओं की ओर क्यों इतना अधिक अनुराग था; और यहाँ के पंडितों से उनका इतना मेल जोल रखने के क्या कारण हैं।

पिछले प्रकरणमें अरब और भारत के व्यापारिक सम्बन्धों का पूरा विवेचन हो चुका है। पर वास्तविक बात यह है कि भारत और अरब में केवल व्यापार का ही सम्बन्ध नहीं था, बल्कि और कई उद्देश्यों से भी हिजरी पहली शताब्दी के अन्त में ही लोगों का यहाँ आना जाना आरम्भ हो चुका था। सिन्ध पर आक्रमण करने के समय मुहम्मद क़ासिम (सन् ९६ हि०) जब एक छोटे नगर में पहुँचा, तब उसे पता चला कि यहाँ के निवासी बौद्ध धर्म माननेवाले दो

---

[1] ज़ुब्दतुस सहायफ़ फ़ी स्याहतुल् मआरिफ़, जिसका रचयिता नौफ़ल आफ़िन्दी था, (यह उन्हीं दिनों शाम में रहता था और ईसाई विद्वान् था।) पृ० ६३।

आदमियों को इराक़ के शासक हज्जाज के पास भेजकर पहले से ही उससे सन्धि कर चुके हैं और उससे अभयदान प्राप्त कर चुके हैं। इसके बाद जब ख़िलाफ़त का केन्द्र शाम से हटकर इराक़ आ गया, अर्थात् अमवियों की जगह पर अब्बासी लोग इस्लाम के राजसिंहासन पर बैठे, तब सिन्ध और इराक़ की समीपता ने फ़ारस की खाड़ी में इन दोनों जातियों में मेल का एक नया संगम उत्पन्न कर दिया। सफ़्फ़ाह के दो तीन वर्ष के शासन के बाद अब्बासी वंश का दूसरा ख़लीफ़ा मन्सूर सन् १३६ हि० में बादशाह हुआ। सन् १४६ हि० में राजधानी का बनना समाप्त हुआ और बग़दाद बसा; और उसके आठ बरस बाद अरब और भारत में विद्या विषयक सम्बन्धों का नियमित रूप से आरम्भ हुआ।

संस्कृत से अनुवाद का आरम्भ

दूसरी भाषाओं के शास्त्रों आदि का अनुवाद कराने का विचार अरबों में हिजरी पहली शताब्दी के मध्य में ही हो चुका था। पर उस समय तक शासन का केन्द्र शाम में था; इसी लिये यूनानी और सुरयानी भाषाओं की प्रधानता रही। फिर जब इराक़ में अब्बासी ख़िलाफ़त का तख़्त बिछा, तब भारत और ईरान की भाषाओं को भी अपने गुण दिखलाने का अवसर मिला। जब मन्सूर के विद्याप्रेम की चर्चा फैली, तब सन् १५४ हि० (सन् ७७१ ई०) में गणित और ज्योतिष् आदि का एक बहुत बड़ा पंडित अपने साथ सिद्धान्त और कुछ बड़े बड़े पंडितों को लेकर बग़दाद पहुँचा[१] और ख़लीफ़ा की आज्ञा से दरबार के एक गणितज्ञ इब्राहीम फ़िज़ारी की सहायता से उसने अरबी में सिद्धान्त का अनुवाद किया।[२] यह पहला दिन था कि

---

[१] किताबुल् हिन्द; बैरूनी; पृ० २०८; (लंडन)।

[२] अख़बारुल् हुकमा; क़िफ़्ती; पृ० १७७ (मिस्र)।

अरबों को भारत की योग्यता और पांडित्य का अनुमान हुआ। फिर हारूँ ने अपनी चिकित्सा के लिये यहाँ से वैद्य बुलवाए, जिन्हों ने अरबों पर भारत के विद्या सम्बन्धी महत्व और बड़प्पन की धाक बैठा दी। इसके बाद बरामका लोगों के संरक्षण में संस्कृत के चिकित्सा गणित, ज्योतिष्, फलित ज्योतिष, साहित्य और नीति आदि के ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद हुआ। इसने भारत की कीर्त्ति और प्रसिद्धि को और भी उज्वल कर दिया।

अरबों में भारत की प्रतिष्ठा

यह दिखलाने के लिये कि इन अनुवादों के कारण अरबों के हृदय में भारत के लिये कितना अधिक आदर भाव उत्पन्न हुआ था, मैं पाठकों को अरबी के दो तीन पुराने ग्रन्थकारों के विचार बतलाना चाहता हूँ। इनमें से पहला व्यक्ति जाहिज़ है। यह बहुत प्रसिद्ध लेखक दार्शनिक और तार्किक था। यह बसरे का रहनेवाला था; इस लिये भारत से भी इसके सम्बन्ध थे।[1] सन् २५५ हि० में इसका देहान्त हुआ था। इसने एक छोटा निबन्ध इस विषय पर लिखा था कि संसार की गोरी और काली जातियों में से कौन बढ़कर है। वह अपना निर्णय काली जातियों के पक्ष में देता है। इस सम्बन्ध में वह कहता है—

"परन्तु हम देखते हैं कि भारत के निवासी ज्योतिष् और गणित में बढ़े हुए हैं और उनकी एक विशेष भारतीय लिपि है। चिकित्सा में भी वे आगे हैं और इस शास्त्र के वे कई विलक्षण भेद जानते हैं। उनके पास भारी भारी रोगों की विशेष औषध होती हैं। फिर मूर्त्तियाँ बनाने, रंगों से चित्र बनाने और भवन आदि बनाने में भी वे लोग बहुत अधिक योग्य होते हैं। शतरंज का खेल उन्हीं का निकाला हुआ है, जो बुद्धिमत्ता और विचार का सब से अच्छा खेल है।

---

[1] इब्न ख़लकान में अमरू बिन वहरुल्जाहिज़ का विवरण।

वे तलवारें बहुत अच्छी बनाते हैं और उनके चलाने के करतब जानते हैं। वे विष उतारने और पीड़ा दूर करने के मन्त्र जानते हैं। उनका संगीत भी बहुत मनोहर है। उनके एक साज का नाम "कंकलः" (?) है, जो कद्दू पर एक तार को तानकर बनाते हैं और जो सितार के तारों और झाँझ का काम देता है। उनके यहाँ सब प्रकार का नाच भी है। उनके यहां अनेक प्रकार की लिपियां हैं। कविता का भंडार भी है और भाषणों का अंश भी है। दर्शन, साहित्य और नीति के शास्त्र भी उनके पास हैं। उन्हीं के यहां से कलेला दमना नामक पुस्तक हमारे पास आई है। उनमें विचार और वीरता भी है; और कई ऐसे गुण है जो चीनियों में भी नहीं हैं। उनके स्वच्छता और पवित्रता के भी गुण हैं। सुन्दरता लावण्य, सुन्दर आकार और सुगन्धियाँ भी हैं। उन्हीं के देश से बादशाहों के पास वह ऊद या अगर की लकड़ी आती है, जिसकी उपमा नहीं है। विचार और चिन्तन की विद्या भी उन्हीं के पास से आई हैं। वे ऐसे मन्त्र जानते हैं कि यदि उन्हें विष पर पढ़ दें तो विष निरर्थक हो जाय। फिर गणित और ज्योतिष् विद्या भी उन्हीं ने निकाली है। उनकी स्त्रियों को गाना और पुरुषों को भोजन बनाना बहुत अच्छा आता है। सर्राफ़ और रुपये पैसे का कारबार करनेवाले लोग अपनी थैलियाँ और कोष उनके सिवा और किसी को नहीं सौंपते। जितने (इराक़ में) सर्राफ़ हैं, सब के यहाँ ख़ज़ानची ख़ास सिन्धी होगा या किसी सिन्धी का लड़का होगा; क्योंकि उनमें हिसाब किताब रखने और सराफ़ी का काम करने का स्वाभाविक गुण होता है। फिर ये लोग ईमानदार और स्वामिनिष्ठ सेवक भी होते हैं।"[१]

---

[१] रिसाला फ़ख़रुस्सूदान अलल् बैजान जाहिज़; मजमूआ रसायल जाहिज़ पृ० ८१ (सन् १३२४ हि० में मिस्र का छपा हुआ)।

दूसरा व्यक्ति याकूबी है; जो यात्री, इतिहास-लेखक और विद्वान भी था। कहते हैं कि यह भारतवर्ष में भी आया था सन् २७८ हि० के लगभग इसका देहान्त हुआ था। यह अपने इतिहास में भारत का कहानी सा जान पड़नेवाला इतिहास लिखकर कहता है—

"भारतवर्ष के लोग बुद्धिमान् और विचारशील हैं; और इस विचार से वे सब जातियों से बढ़कर हैं। गणित और फलित ज्योतिष् में इनकी बातें सब से अधिक ठीक निकलती हैं। सिद्धान्त उन्हीं की विचारशीलता का परिणाम है, जिससे यूनानियों और ईरानियों तक ने लाभ उठाया है। चिकित्सा शास्त्र में इनका निर्णय सब से आगे है। इस विद्या पर इनकी पुस्तक चरक और निदान है। . . . चिकित्सा-शास्त्र की इनकी और भी कई पुस्तकें हैं। तर्क और दर्शन में भी इनके रचे हुए ग्रन्थ हैं और इनकी बहुत सी रचनाएँ हैं, जिनका बहुत बड़ा विवरण है।"[1]

तीसरा वर्णन अबूज़ैद सैराफ़ी का है, जो हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त में था। वह लिखता है—

"भारत के विद्वान् लोग ब्राह्मण कहलाते हैं। उनमें कवि भी हैं, जो राजाओं के दरबारों में रहते हैं; और ज्योतिषी, दार्शनिक, फ़ाल खोलनेवाले और इन्द्रजाल जाननेवाले लोग भी हैं। ये लोग क़न्नौज में बहुत हैं, जो जौज के राज्य में एक बड़ा नगर है। (पृ० १२७)

तात्पर्य यह कि ख़लीफ़ा मन्सूर और हारूँरशीद के संरक्षणों और बरामका की गुणग्राहकता और उदारता के कारण भारत के बीसियों पंडित और वैद्य बग़दाद पहुँचे और राज्य के चिकित्सा तथा विद्या विभागों में काम करने लगे। उन लोगों ने गणित और फलित ज्योतिष, चिकित्सा, साहित्य और नीति के बहुत से ग्रन्थों का अरबी में

---

[1] तारीख़े इब्न वाज़ह याक़ूबी, दूसरा खंड; पृ० १०५ (लीडन)।

अनुवाद किया। दुःख यह है कि उन पंडितों के भारतीय नाम अरबी रूप में जाकर ऐसे बदल गए हैं कि आज ग्यारह बारह सौ बरसों के बाद उनका ठीक ठीक रूप और उच्चारण समझना एक प्रकार से असम्भव सा हो गया है। कदाचित् इसका एक कारण यह भी है कि मेरे विचार से इनमें से अधिक लोग बौद्धधर्म के अनुयायी थे; और उस समय के नामों के ढंग से आजकल के वैदिक नामों के ढंग से बिलकुल अलग हैं। फिर इनमें से कुछ नाम ऐसे भी हैं जो नाम नहीं, बल्कि उपाधि हैं। इन भारतीय नामों की अरबी में ठीक वैसी ही काया पलट हो गई है, जैसी अरबी नामों की युरोप की भाषाओं में हो गई है।

पंडितों और वैद्यों के नाम

जो हो, अरबा के लेखों में भारत के जिन पंडितों और वैद्यों के नाम आए हैं, वे इस प्रकार हैं—बहला, मनका, बाजीगर (विजय कर ?) फलबरफल (कल्पराय कल ?) सिन्दबाद। ये सब नाम जाहिज़ (सन् २५५ हि०) ने दिए हैं और इतने नाम लिखकर औरों के नाम के लिये आदि आदि लिखकर छोड़ दिए हैं; और लिखा है कि इनको यहिया बिन ख़ालिद बरमकी ने भारत से बग़दाद बुलवाया था। ये सब चिकित्सक और वैद्य थे।[१]

इब्न अबी उसैबअ ने उन वैद्यों में से मनका और बहला के बेटे का, जो शायद मुसलमान हो गया था जिसका नाम सालह था, उल्लेख किया है। इब्न नदीम ने एक और नाम इब्न दहन लिखा है; और यही तीनों बग़दाद में उस समय के प्रसिद्ध वैद्य थे। एक दूसरे स्थान पर उन भारतीय पंडितों के नाम दिए गए हैं जिनके चिकित्सा

---

[१] किताबुल् बयान पृ० ४० (मिस्र)।

और ज्योतिष् के ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद हुआ था। वे नाम इस प्रकार हैं—बाखर, राजा, मनका, दाहर, अनकू, जनकल, अरीकल, जबूभर, अन्दी, जबारी।[1]

मनका

इब्न अबी उसैबआ ने अपनी तारीखुल् अतिब्बा में लिखा है कि यह व्यक्ति चिकित्सा शास्त्र का बहुत बड़ा पंडित था। एक बार हारूँ रशीद बहुत बीमार पड़ा। बग़दाद के सब चिकित्सक उसकी चिकित्सा कर के हार गए। तब एक आदमी ने भारत के इस चिकित्सक का नाम लिया। यात्रा का व्यय आदि भेजकर यह बुलया गया। इसकी चिकित्सा से ख़लीफ़ा अच्छा हो गया। ख़लीफ़ा ने इसको पुरस्कार आदि देकर मालामाल कर दिया। फिर यह राज्य के अनुवाद विभाग में संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद का काम करने के लिये नियत किया गया।[2] क्या हम इस मनका नाम को माणिक्य समझें ?

सालेह बिन बहला

यह भी भारतीय चिकित्साशास्त्र का पंडित था। इब्न अबी उसैबआ ने इसको भी भारत के उन्हीं विज्ञ चिकित्सकों में रखा है, जो बग़दाद में थे। एक अवसर पर जब ख़लीफ़ा हारूँ रशीद के चचेरे भाई को मूर्च्छा या मिरगी का रोग हो गया और दरबार के प्रसिद्ध यूनानी ईसाई चिकित्सक जिबरईल बख़्तीशू ने कह दिया कि यह अब

---

[1] फ़ेहरिस्त इब्न नदीम चिकित्सा और ज्योतिष् के ग्रन्थों का प्रकरण।

[2] तारीख़ुल् अतिब्बा; दूसरा खंड; पृ० ३३ (मिस्र) और फ़ेहरिस्त इब्न नदीम; पृ० २४५।

नहीं बच सकता, तब जाफर बरमकी ने इस भारतीय चिकित्सक को उपस्थित किया और कहा कि इसी का इलाज होना चाहिए। ख़लीफ़ा ने मान लिया; और इसने बड़े मार्के की चिकित्सा की।[१]

इब्न दहन

यह बरमकियों के चिकित्सालय का प्रधान था और उन लोगों में से था, जो संस्कृत से अरबी में अनुवाद करने के काम पर लगाए गए थे।[२] प्रोफ़ेसर ज़खाऊ ने "इंडिया" नामक ग्रन्थ की भूमिका में इस दहन नाम का मूल रूप जानने का प्रयत्न किया है। उनकी जाँच का फल यह है कि यह नाम धन्य या धनन होगा। यह नाम कदाचित् इस लिये रखा गया हो कि यह धन्वन्तरि शब्द से मिलता जुलता है, जो मनु के धर्मशास्त्र में देवताओं का वैद्य बतलाया गया है।[३]

संस्कृत से अरबी में नीचे लिखी विद्याओं और शास्त्रों की पुस्तकों का अनुवाद किया गया था—गणित ज्योतिष, फलित ज्योतिष, चिकित्सा, नीति सम्बन्धी कथाएँ, राजनीति, खेल और तमाशे।

गणित

अरबवाले स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उन्होंने १ से ९ तक के अंक लिखने का ढंग हिन्दुओं से सीखा[४]; और इसी लिये अरबवाले अंकों

---

[१] तारीख़ुल् अतिब्बा; दूसरा खंड; पृ० ३५ (मिस्र)।

[२] फ़ेहरिस्त इब्न नदीम; पृ० २४३।

[३] उक्त ग्रन्थ के अँगरेज़ी अनुवाद की भूमिका; पृ० ३३।

[४] रसायल अख़वानुस्सफ़ा जो चौथी शताब्दी में रचे गये थे। फ़स्ल फ़ी माफ़ित बिदायतुल् हरूफ़ व खुलासतुल् हिसाब बहाउद्दीन आमिली कृत (कलकत्ते का छपा हुआ) और मौलवी इस्मतुल्लाह कृत उसकी टीका और

को हिन्दसा और इस प्रणाली को हिसाब हिन्दी या हिन्दी हिसाब कहते हैं। यह प्रणाली अरबों से युरोप की जातियों ने सीखी थी, इसी लिये उनकी भाषाओं में इसका नाम अरब के अंक (Arabic Figures) है। उस ठीक समय का पता तो नहीं चलता जिस समय अरबों ने यह ढंग हिन्दुओं से सीखा था, पर समझा यही जाता है कि सन् १५६ हि० में सिन्ध से जो पंडित सिद्धान्त लेकर मन्सूर के दरबार में बग़दाद गया था, उसीने अरबों को यह ढंग सिखलाया था। मेरी समझ से ठीक बात यह है कि जिस सिद्धान्त का अनुवाद हुआ था, उसीके "तेरहवें और चौबीसवें प्रकरण में गणित और अंकों का उल्लेख है; और उसीके द्वारा यह ढङ्ग अरबों में चला था। अरबी में पहले अक्षरों में संख्याएँ लिखते थे। फिर यहूदियों और यूनानियों की तरह अबजद के ढंग से (जिसमें अ से १, ब से २, ज से ३, आदि का बोध होता है) संख्याएँ लिखने लगे थे। अब भी अरबो ज्योतिष् में संक्षेप और शुद्ध लिखने के विचार से यही ढंग चलता है; और इसी ढंग से अरबी फ़ारसी आदि में तिथि और सन् संवत् आदि लिखने की प्रथा है। जो हो, पहले मुहम्मद बिन मूसा ख्वारिज़्मी ने इस भारतीय हिसाब को अरबी साँचे में ढाला।[१] इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के ग्यारहवें संस्करण (Encyclopædia Britannica, XI Ed.) में अंकों (Numeral) पर जो निबन्ध (उन्नीसवाँ खंड, पृ० ८६७) है, उसमें पुराने लेखों और हस्तलिखित पुस्तकों से लेकर पूर्वी अरबी, पश्चिमी अरबी और युरोप के अंकों के रूप लेकर दिए गए हैं। उसे एक ही बार देखने से पता लग सकता

कश्फ़ुज़्ज़ुनून (चलपी) और मिफ़ताहुस सआदत ताश्करीजादा इल्मुल् हिसाब और किताबुल्हिन्द बैरूनी पृ० ८३ (लन्दन में प्रकाशित)।

[१] तबक़ातुल् उमम; साइद अन्दलसी पृ० १४ (बेरूत)।

है कि हिसाब रखने का यह ढंग भारत से चलकर अरब के रास्ते किस प्रकार आगे बढ़ा। अरबी में मामूँ रशीद के दरबारी ज्योतिषी ख्वारिज़्मी (सन् ७८०-८४० ई०) ने इन अंकों के स्वरूप ठीक किए, और वही रूप अन्दलुस के मार्ग से युरोप पहुँचे। युरोप में गणित की एक विशेष शाखा को एलगोरिथ्म, एलगोरिटेम और एलगोरिज़म (Algorithm, Algoritems, Algorism) कहते हैं। ये सब इसी अलख्वारिज़्मी के बिगड़े हुए रूप हैं।[१] अन्दलुसवाले इन्हीं भारतीय अंकों को हिसाबुल् गुबार कहते हैं (इसे संस्कृत में धूलि-कर्म्म कहते हैं।) यह कदाचित् इस लिये कि हिन्दू लोग अपनी यह प्रणाली, जैसा कि अब तक देहाती पाठशालाओं में दस्तूर है, ज़मीन या धूल पर लिखकर सिखाते थे। युरोप के अंक इन्हीं "गुबारी" अंकों से निकले हुए हैं।

ये अंक अरब के नहीं, बल्कि बाहर के हैं, इसका एक प्रमाण यह भी है कि अरबी लिपि लिखने के ढंग के बिलकुल बिपरीत ये बाँए से दहिने लिखे जाते हैं, लेकिन अरबवाले इन्हें पढ़ने के समय दाहिने से बाएँ पढ़ते हैं। इब्न नदीम ने इन भारतीय अंकों को सिन्धी अंक कहकर उद्धत किया है और हज़ार तक लिखने का ढंग बतलाया है। इससे यह भी पता चलता है कि अरबी में यह ढंग सिन्धी पंडितों के द्वारा चला था।

अलख्वारिज़्मी के बाद, जिसका समय हिजरी तीसरी शताब्दी और ईसवी नवी शताब्दी का आरम्भ है, मुसलमानों में भारतीय गणित का प्रचार करनेवाला दूसरा आदमी अली बिन अहमद नसवी (सन् ९८०—१०४० ई०) है, जिसने अलमुकन्नअ फ़िल् हिसाबिल

---

[१] इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका; १४वाँ खंड; पृ० ८६७; दूसरा कालम।

हिन्दी (भारतीय गणित में कामना पूरी करनेवाली पुस्तक) लिखी। इसके बाद इस विषय की और भी पुस्तकें लिखी गईं, यद्यपि इससे बहुत पहले अलख़्वारिज़्मी के ही समय में यूनानियों की अस्मातीकी (Arithmetic या गणित) अरबी भाषा में लिखी जा चुकी थी।[1] लेकिन फिर भी भारतीय गणित की प्रतिष्ठा और आदर में कोई कमी नहीं हुई। लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि भारतीय गणित सर्व साधारण में भी चल पड़ा था। प्रसिद्ध मुसलमान हकीम और दार्शनिक बूअली सैना (सन् ४२८ हि०) १०१५ ई०) ने लड़कपन में यह भारतीय हिसाब एक कुँजड़े से सीखा था, जो उसका बहुत अच्छा जानकार था।[2]

गणित और फलित ज्योतिष्

ऊपर कहा जा चुका है कि सन् १४५ हि० (सन् ७७० ई०) के लगभग सिन्ध से जो डेपुटेशन बग़दाद गया था[3], उसके साथ एक पंडित गणित ज्योतिष् की एक पुस्तक लेकर गया था। संस्कृत में इस पुस्तक का पूरा नाम वृहस्पति सिद्धान्त है, जो अरबी में असिंद

---

[1] अँगरेज़ी में इस विषय की सबसे अच्छी जानकारी एच० सुटर (H. Suter) साहब के "गणित" नामक निबन्ध में इन्साइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम के खन्ड २२; (सन् १९१६ ई०) के पृ० ३१४ में है। अरबी में मुहम्मद बिन अहमद ख्वारिज्मी (सन् ३८१ हि०) की पुस्तक मफातीहुल् उलूम में हिसाबुल् हिन्द के शीर्षक से दो तीन पृष्ठों में इसका विवरण है। देखो उसका पृ० १९३ (सन् १८९४ में लीडन में प्रकाशित)।

[2] उयूनुल् अम्बा दूसरा खंड; पृ० २ (मिस्र)।

[3] तबकातुल् उमम; साइद अन्दलसी; पृ० ४९ (बेरूत)।

हिन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद संस्कृत की एक दूसरी पुस्तक का अरबी में अनुवाद हुआ, जिसका अरबी नाम अरजबन्द है और जिसका शुद्ध संस्कृत रूप आर्यभट्ट है। इसके बाद संस्कृत की तीसरी पुस्तक का अरबी में अनुवाद हुआ, जिसका अधिक प्रसिद्ध नाम "अरकन्द" और कम प्रसिद्ध नाम "अहरक़न" है और जिसका असल संस्कृत नाम खंडन-खाद्यक है। जिस भारतीय पंडित के द्वारा पहले ग्रन्थ सिद्धान्त का सन् १५४ हि० में अरबी में अनुवाद हुआ था, बग़दाद में दो अरब उसके शिष्य हुए थे। उनमें से एक का नाम इब्राहीम फ़िजारी है और दूसरे का याक़ूब बिन तारिक़। इन दोनों ने सिद्धान्त को अपने अपने ढंग से अरबी रूप दिया। हिन्दुओं में ग्रहों का जो विभाग है, उसका आधार समय का विभाग है, जिसको संस्कृत में "कल्प" कहते हैं। दूसरी पुरानी जातियों की तरह इनका भी यही विश्वास था कि चन्द्र, सूर्य, शनि, बृहस्पति आदि सातों सितारे, जिनको अरब लोग "सबअ (सात) सैयारा" कहते हैं, सब के सब एक समय में गोलसन्धि में (जहाँ नाड़ी वृत्त, क्रान्तिवृत्त, पूर्वापरवृत्त और क्षितिजवृत्त इन चारों का सम्पात होता है) एक साथ उत्पन्न हुए और एक साथ उनकी गति आरम्भ हुई। अब यह अपनी अपनी चाल चल रहे हैं। फिर करोड़ों बरसों के बाद जब यह सातो उसी गोलसन्धि नामक विन्दु पर एकत्र हो जाते हैं, तब प्रलय होकर संसार का नाश हो जाता है और वह फिर से बनता है और फिर उससे गति का आरम्भ होता है। इन दोनों के बीच में ज्योतिष् के अनुसार जितने सौर वर्ष होते हैं, उन सब की संख्या का नाम "कल्प है। ब्रह्मगुप्त के हिसाब से एक कल्प में ४ अरब, ३२ करोड़ वर्ष होते हैं; और फिर इन्हीं से दिनों का हिसाब लगाया जा सकता है। अरबों ने इसी कल्प का नाम "सनी उस्सिंद हिन्द" सिद्धान्त के वर्ष और दिनों का नाम "अय्यामुस्सिंद हिन्द" रखा।

अरबों और करोड़ों बरसों का हिसाब लगाना बहुत कठिन होता था, इस लिये ईसवी पाँचवीं शताब्दी के अन्त में आर्यभट ने सरलता के विचार से कल्प के कई हज़ार भाग कर लिए और उसीके अनुसार गणना स्थापित की। इन्हीं भागों का नाम युग और महायुग है। इस सिद्धान्त का आर्यभट का जो ग्रन्थ है, उसको अरब लोग "अरजबहर" या "अरजबहज़" और युग को "सनी अरजबहज" अर्थात् आर्यभट के वर्ष कहने लगे। अरबों ने अस् सिंद हिन्द और अरजबहर के असल संस्कृत अर्थ समझने में यह भूल की कि उन्होंने समझा कि इनसे इसी सिद्धान्त का अभिप्राय है। इस लिये उन्होंने भूल से अलसिंद हिन्द का अर्थ "अद्दहरुद्दाहर" अर्थात् अनन्त काल और अरजबहज का अर्थ हज़ारवाँ भाग मान लिया। इस अन्तिम पुस्तक का अबुल्हसन अहवाजी ने अरबी में अनुवाद किया था।

याकूब बिन तारिक ने सन् १६१ हि० में इसी पंडित से या और किसी आनेवाले पंडित से अरकन्द अर्थात् खंड या खंडीक की पद्धति सीखी। यह भी ब्रह्मगुप्त की ही रचना है; पर इसकी कुछ बातें सिद्धान्त से अलग हैं।

आरम्भ के अरब ज्योतिषियों में इन तीनों पुस्तकों में से सिद्धान्त का अधिक प्रचार हुआ। यद्यपि इसके कुछ ही दिनों बाद यूनानी बतलीमूस की "मजिस्ती" नामक पुस्तक का अरबी में अनुवाद हो गया; और मामूंरशीद के समय में रसदखाना या वेधशाला भी बन गई और बहुत सी नई बातों का भी पता लग गया; लेकिन फिर भी बहुत दिनों तक अरब ज्योतिषी बग़दाद से लेकर स्पेन तक इसी भारतीय सिद्धान्त के पीछे लगे रहे। उन्होंने इसके संक्षिप्त संस्करण बनाए, इस पर टीकाएँ लिखीं, इसकी भूलें सुधारीं, इसमें नई बातें बढ़ाई आदि आदि। हिजरी पाँचवीं शताब्दी (ईसवी ग्यारहवीं शताब्दी) अर्थात् बैरूनी के समय तक यह क्रम चलता रहा। मामूँरशीद के समय

में ख्वारिज़्मी ने जो सूची बनाई, उसमें भी यूनानी और ईरानी सिद्धान्तों की वृद्धि के साथ साथ मूल भारतीय सिद्धान्तों को भी उसने रहने दिया; और इसी लिये अपनी पुस्तक का नाम अस् सिंद हिन्दुस् सगीर (अर्थात् छोटा सिद्धान्त) रखा।[1] इसी प्रकार हसन बिन सब्बाह, हसन बिन खसीब, फजल बिन हातिम तबरेजी, अहमद बिन अब्दुल्लाह मरूजी, इब्नुल् अदमी, अब्दुल्लाह और अबू रैहान बैरूनी ने हिजरी तीसरी, चौथी और पाँचवीं शताब्दी में सिद्धान्त के संशोधन और पूर्त्ति के सम्बन्ध में बहुत कुछ काम किया और यूनानी सिद्धान्तों तथा अपनी निजी जाँच के साथ वे इसमें पैवन्द भी लगाते रहे।

स्पेन में सिद्धान्त की मुख्य मुख्य बातें हिजरी चौथी शताब्दी में पहुँचीं। मुसलिमा बिन अहमद मजरीती (मजरीति या मेड्रिड के निवासी; मृत्यु सन् ३९८ हि० ; १००७ ई०) ने ख्वारिज़्मी की सिंदहिन्द सगीर का संक्षेप किया। फिर स्पेन के अबुलकासिम असबग उपनाम बेह इब्नुससमह (मृत्यु सन् ४२६ हि०; १०३५ ई०) ने सिद्धान्त पर एक बहुत बड़ी टीका तैयार की। फिर अपना अपना पांडित्य दिखलाने के लिये लोग नई नई बातें ढूँढकर सिद्धान्त में बतलाई हुई बातों के परिणाम भी निकालते थे; जैसा कि स्पेन के इब्राहीम जरकाली ने इस्तरलाब या नक्षत्र-यन्त्र विषय की "सफह जरकालिया" नामकी पुस्तक में किया है। स्पेन के इन्हीं अरबों के द्वारा सिद्धान्त का यह ग्रन्थ यहूद तक और फिर वहाँ से युरोप तक पहुँचा; और यूनानी विद्वान इब्राहीम बिन अजरा ने अपनी इब्रानी रचनाओं में सिद्धान्त की कुछ बातों पर टिप्पणियाँ तैयार की।[2]

---

[1] किफ़्ती पृ० १७८ (मिस्र)।

[2] सिंधा हिन्द, अरजबहिन्द और अरकन्द का उल्लेख फ़ेहरिस्त इब्न नदीम, मसऊदी किफ़्ती और किताबुल् हिन्द, बैरूनी सभी में है; और ये

अरबी में संस्कृत के पारिभाषिक शब्द

अरबों की ज्योतिष् विद्या उनकी नई नई जाँचों और अन्वेषणों के कारण उन्नति की बहुत सी सीढ़ियाँ चढ़ी, फिर भी संस्कृत की एक त्याज्य और दो दूसरी ऐसी परिभाषाएँ उसमें रह गई हैं, जो अब तक यह बतलाती हैं कि अरबों में यह ज्योतिष् विद्या किस मार्ग से आई। सिद्धान्त आदि नामों के सिवा अरबी ज्योतिष् में संस्कृत का एक पुराना पारिभाषिक शब्द "कर्दज:" है, जिसका मूल संस्कृत रूप क्रमज्या है। अब इस कर्दजः शब्द का व्यवहार बहुत कम रह गया है, और बाद में अरबी में उसके लिये पारिभाषिक शब्द "वतर मुस्तवी" बना लिया गया है। दूसरा बचा हुआ पारिभाषिक शब्द, जिसका आज तक अरबी गणित और त्रिकोणमिति में व्यवहार होता है, "जैब" शब्द है, जिसे लोग भूल से अरबी का वही "जैब" समझते हैं, जिसका अर्थ पहनने के कपड़े में गला होता है।[1] यह संस्कृत शब्द "जीवा" (ज्या) का अरबी रूप है। फिर इसी जेब शब्द से जेबुल् तमाम, जयूब मन्कूस:, जयूब मब्सूत: और मजीब आदि

सभी पुस्तकें मेरे सामने हैं, पर मिस्र के विश्वविद्यालय में सीनियर कोलो नलनियो नामक एक प्रसिद्ध इटालियन विद्वान् ने अरबों की ज्योतिष् विद्या के इतिहास पर अरबी में बहुत ही गवेषणापूर्ण व्याख्यान दिए थे। ये सब बातें उन्हीं व्याख्यानों में से अंक २१, २२ और २३ के व्याख्यानों मे से ली गई हैं। इनके सिवा साइद अन्दलसी के तबकातुल् उमम (बैरूत में प्रकाशित) के ४०वें पृष्ठ से से भी कुछ बातें लेकर बढ़ाई हैं।

[1] जैब शब्द का मुख्य अर्थ यही है। पहले अरबवाले कुरतों में गले के पास ही थैली भी लगाते थे जो अब बगल में या सामने छाती पर होती है और जेब कहलाती है।—अनुवादक

पारिभाषिक शब्द बने हैं, और इस प्रकार कट छँटकर अरबी साँचे में ढल गए हैं कि आज इनके सम्बन्ध में इस बात का सन्देह भी नहीं हो सकता कि ये अरबी के सिवा किसी और भाषा से आए हुए शब्द से बने हैं।

आखिरी शब्द "ओज" है जो ज्योतिष् की परिभाषा में ऊँचाई में सब से ऊँचे विन्दु का नाम है। यह संस्कृत का "उच्च" शब्द है, जो अरबी में जाकर "ओज" हो गया है।[१] बहुत दिनों से अरबी, फ़ारसी और फिर उर्दू में इस "ओज" शब्द का इतना अधिक व्यवहार होता है कि किसी को इसके भारतीय या संस्कृत होने का सन्देह कभी नहीं होता। यही कारण है कि शुद्ध अरबी शब्दों के कोषों में भी इसकी यह व्युत्पत्ति नहीं मिलती। इसकी बिलकुल ठीक ठीक उपमा अरबी के "जिन्स" शब्द के साथ दी जा सकती है, जो यूनानी शब्द "जीनस" का अरबी रूप है। लेकिन अरबी में आकर यह जिन्स हो गया है, जिससे "मजानिसत" और "तजनीस" आदि कई रूप बन गए हैं, जो सब के सब प्रचलित हैं। लेकिन पुरानी अरबी में इस शब्द का कहीं पता नहीं चलता।

ऐसे दो और भी शब्द हैं जो उल्लेख कर देने के योग्य हैं। हिन्दू विद्वानों ने नक्षत्रों की गति में याम्योत्तर रेखा का हिसाब लगाया था, जो पृथ्वी के बीचोबीच से उत्तर दक्षिण जाती है। उनके विचार से बस्ती का यह आधा हिस्सा या मध्य भाग लंका टापू था, जिसे अरब लोग सरन्दीप कहते हैं और जो अब सीलोन कहलाता है। हिन्दुओं

---

[१] कुछ लोगों का मत है कि यह फ़ारसी के "ओग" शब्द से निकला है, जैसा कि ख़्वारिज़्मी ने मफ़ातीहुल् उलूम पृ० २२१ (लीडन) में लिखा है; और असदी तूसी के प्राचीन फ़ारसी कोष में भी यह शब्द है। पर समझा यह जाता है कि स्वयं फ़ारसी में भी यह शब्द संस्कृत से ही गया है।

का विचार था कि लंका भूमध्य रेखा पर है। जिस विन्दु पर याम्योत्तर रेखा और भूमध्य रेखा दोनों आपस में एक दूसरे को काटती हैं, उसे अरब लोग कुब्बतुल अर्ज कहते हैं, जिसका अर्थ होता है पृथ्वी का गुम्बद। भारतवासी भूगोल में देशान्तर का हिसाब इसी लंका की भूमध्य रेखा से लगाते थे, और इसी लिये आरम्भिक अरब भूगोल-लेखकों ने लंका को कुब्बतुल अर्ज या पृथ्वी का गुम्बद कहा है।

भारतवासी यह समझते थे कि जो याम्योत्तर रेखा लंका में है, वही उज्जयिनी (मालवा की नगरी) से भी होकर जाती है; इस लिये सिद्धान्त में इसी उज्जयिनी से देशान्तर का हिसाब लगाया गया है। इसी लिये वे भी उज्जैन से देशान्तर का हिसाब निकालने लगे। अरबों ने इस उज्जैन को अपने उच्चारण के अनुसार "उजैन" कहा; और यह समझा कि यह "उजैन" ही पृथ्वी का गुम्बद या कुब्बतुल अर्ज है। फिर उजैन के "जे" अक्षर पर का विन्दु उड़ गया और वह "उरैन" हो गया; और यहीं से यही परिभाषा उत्पन्न हुई कि "उरैन" प्रत्येक माध्यमिक स्थिति का नाम है, जैसा कि प्रसिद्ध मुसलमान दार्शनिक शरीफ़ जुरजानी ने अपनी परिभाषाओंवाली पुस्तक "किताब तारीफ़ात" में लिखा है।[१]

अरब के पुराने ज्योतिषियों ने एक और शब्द "बजमास:" का व्यवहार किया है। यह संस्कृत के "अधिमास" शब्द से निकला है, जिसका अर्थ अधिक मास या वह चन्द्रमास है, जो दो संक्रान्तियों के बीच में पड़ता है।

---

[१] देखो उक्त व्याख्यान पृ० १५५-१६८ और टिप्पणियाँ। साथ ही देखो "सवाउस् सबील (मि० आर्नल्ड) में जेब" और "ओज" और तारीफ़ जुरजानी पृ० ७ (सन् १३०६ हि० में मिस्र में प्रकाशित।)

कुछ लोग भूल से यह समझते हैं कि अरबी में गणित और अंकों या उनके सांकेतिक चिह्नों का जो हिन्दसा कहते हैं, उसका कारण भी यही है कि इनका हिन्द अर्थात् भारत से सम्बन्ध है। और आश्चर्य है कि विशेष विद्वत्ता होने पर भी एक अँगरेज़ विद्वान् भी जिसने मूसा ख्वारिज़्मी की किताबुल् जब्र वल् मुकाबिला सन् १८३१ ई० में लन्दन से प्रकाशित की है और जिसका नाम फ्रेडरिक रोसन (F. Rosen)है, इसी भ्रम में पड़ना चाहता है।[1] वास्तव में यह फ़ारसी का "अन्दाजा" शब्द है, जिसे यह अरबी रूप दिया गया है और जिसका अरबी में क्रिया का रूप "हन्दज:" और "हन्दस:" है।[2] वास्तव में यह इंजीनिरिंग या वास्तुविद्या के अर्थ में है। पीछे से लोग भूल से फ़ारसी और उर्दू में "हिन्दस:" बोलने लगे और इससे संख्या आदि का अर्थ लेने लगे। और नहीं तो शुद्ध शब्द "हिन्दस:" नहीं, बल्कि "हन्दस:" है। इसी लिये अरबी में "मुहन्दिस" इंजीनियर को कहते हैं, गणित जानने वाले को नहीं कहते।

हिन्दू और आजकल की दो जाँचें

अरबों ने भारतीय ज्योतिष्शास्त्र के जो सिद्धान्त अपने यहाँ लिए हैं, उनमें से दो बातें ऐसी हैं जो आजकल की जाँच में भी ठीक उतरी हैं। ब्रह्मगुप्त ने वर्ष के ३६५ दिन, ६ घंटे, १२ मिनट और ९ सेकेंड निश्चित किए हैं; और आजकल की जाँच से ३६५ दिन, ६ घंटे ९, मिनट ९$\frac{३}{१००}$ सेकेंड हैं। इसी प्रकार पृथ्वी की गति का प्रश्न है। आर्यभट और उसके पक्ष के लोग यह मानते थे कि पृथ्वी घूमती है;

---

[1] अल्जब्र वल् मुकाबिला; ख्वारिज़्मी; अँगरेज़ी भूमिका पृ० १६६-६६ (१८३१ लन्दन)।

[2] मफ़ातीहुल् उलूम; मुहम्मद ख्वारिज़्मी; पृ० २०२ (लीडन)।

और इस सम्बन्ध में आर्यभट पर जो आपत्तियाँ की जाती हैं, ब्रह्मगुप्त ने कहा है कि वे आपत्तियाँ ठीक नहीं हैं। और यही सिद्धान्त आजकल भी ज्यों का त्यों लोगों में माना जाता है।

चिकित्सा-शास्त्र

भारतवर्ष से अरबों को जो तीसरी विद्या मिली, वह चिकित्सा की है। चिकित्साशास्त्र की कुछ पुस्तकें उम्बी वंश के ही समय में सुरयानी और यूनानी भाषाओं के द्वारा अरबी भाषा में आचुकी थीं।[१] पर जब इराक़ में अब्बासी वंश का राज्य हुआ, तब इस विषय में और भी उन्नति हुई; और इसका आरम्भ, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस प्रकार हुआ कि हारूँ रशीद की चिकित्सा करने के लिये भारत से मनकः (माणिक्य) नामक वैद्य बुलवाया गया; और उसके इलाज से ख़लीफ़ा अच्छा हो गया। इस प्रकार भारतीय चिकित्सा की ओर राज्य का ध्यान गया; और बरामका ने उसके प्रचार में बहुत कुछ काम किया। यहाँ तक कि बरामका ने अपने चिकित्सालय का प्रधान एक वैद्य ही बनाया था।[२] उन्होंने केवल यही नहीं किया, बल्कि यहिया बिन ख़ालिद बरमकी ने अपना एक आदमी इस लिये भारत भेजा कि वह जाकर भारत की जड़ी बूटियाँ लावे।[३] और एक वैद्य को सरकारी अनुवाद विभाग में इस लिये नियुक्त किया कि वह संस्कृत की चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकों का अरबी में अनुवाद करावे।[४]

---

[१] उयूनुल् अम्बा फी तबकातुल् अतिब्बा; तजकिरा मआसिर जवीययः और मुख्तसरुद् दवल अबुल्फरज मलती; पृ० १९२ (बैरूत)।

[२] फ़ेहरिस्त इब्न नदीम; पृ० २४५।

[३] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ।

[४] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ।

इसी प्रकार ख़लीफ़ा मवफ्फिक बिल्लाह अब्बासी ने भी हिजरी तीसरी शताब्दी में इस लिये कुछ आदमी भारत भेजे थे कि वे भारत की दवाओं की जाँच करें।[1] यह घटना ज़खाऊ ने इण्डिया की भूमिका में लिखी है; पर अरबी इतिहासों में इस घटना पर स्वयं मेरी दृष्टि नहीं पड़ी है। हाँ, प्रसंगवश एक स्थान पर यह उल्लेख अवश्य मिला है कि ख़लीफ़ा मोतजिद बिल्लाह अब्बासी (सन् २७९-८६ हि०) ने अहमद बिन ख़फ़ी दैलमी को, जो गणित विद्या और तारों आदि की दूरी नापने की विद्या का पंडित था, कुछ बातों की जाँच करने के लिये भारत भेजा था।[2] फिर यह भी जानी हुई है कि ख़लीफ़ा मोतकिद बिल्लाह का सिन्ध के साथ विद्या विषयक और दूसरी बातों में सम्बन्ध स्थापित था। सन् २८० हि० के शव्वाल मास में जब देबल (सिन्ध का बन्दरगाह) में बहुत बड़ा चन्द्रग्रहण लगा और साथ ही भूकम्प आया, जिसमें डेढ़ लाख आदमी दबकर मर गए थे, तब ख़लीफ़ा के समाचार भेजनेवालों ने तुरन्त यह समाचार ख़लीफ़ा के दरबार में भेजा था।[3]

चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थों के अनुवाद

संस्कृत की चिकित्साशास्त्र सम्बन्धी जिन पुस्तकों के अरबी में अनुवाद हुए हैं, उनमें से दो पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं। एक तो सुश्रुत की पुस्तक है, जिसे अरब लोग "ससरो" कहते हैं। यह पुस्तक दस

---

[1] अँगरेज़ी अनुवाद इंडिया की भूमिका ज़खाऊ; पृ० ३०

[2] सवानह (जीवनी) हुसैन बिन मन्सूर हल्लाज; तबकात इब्न बाकूयः शीराज़ी मोसियो लूइस मैसिनन द्वारा सम्पादित; पृ० ४४ (पेरिस सन् १९१४ ई०)।

[3] तारीखुल् खुलफा सुयूती; पृ० ३८० (कलकत्ता)।

प्रकरणों में थी। इसमें रोगों के लक्षण, चिकित्सा और ओषधियों का विवरण है। यहिया बिन खालिद बरमकी की आज्ञा से मनका या माणिक्य ने इस लिये इसका अनुवाद किया था कि बरामका के चिकित्सालय में उसीके अनुसार चिकित्सा का काम हुआ करे। दूसरी पुस्तक चरक की है, जो भारत में चिकित्साशास्त्र का बहुत बड़ा ज्ञाता और ऋषि हुआ है। इस पुस्तक का पहले फ़ारसी में अनुवाद हुआ था। फिर अब्दुल्लाह बिन अली ने इसका फ़ारसी से अरबी में अनुवाद किया था।[१]

तीसरी पुस्तक का नाम इब्न नदीम में "सन्दस्ताक़" और याक़ूबी की छपी हुई प्रति में सन्धशान है। इसी पुस्तक की एक और प्रति में "सन्धस्तान" है। इसका संस्कृत का रूप "सिद्धि स्थान" है।[२] इब्न नदीम ने अरबी में इसका अर्थ "ख़ुलासा कामयाबी" और याक़ूबी ने "सूरत कामयाबी" (अर्थात् जिसके द्वारा सफलता या सिद्धि हो) बतलाया है। मेरी समझ में याक़ूबी का लिखना ठीक जान पड़ता है। जो हो; बग़दाद के चिकित्सालय के प्रधान अधिकारी इब्न दहन ने इसका अनुवाद किया था।[३]

चौथी पुस्तक का नाम याक़ूबी ने "निदान" बतलाया है। इब्न नदीम ने इसका उल्लेख नहीं किया। इसमें चार सौ चार रोगों के केवल लक्षण या निदान बतलाए गए हैं; उनकी चिकित्सा नहीं बतलाई गई है।[४]

---

[१] इब्न नदीम; पृ० ३०३

[२] मूल में सिद्धस्तान या सन्देसन दिया है, पर वास्तव में यह सन्धि स्थान है, जो आयुर्वेद के ग्रन्थों में चिकित्सा के प्रकरणों का नाम है—अनुवादक।

[३] इब्न नदीम पृ० ३०३ और याक़ूबी खं० १ पृ० १०५।

[४] याक़ूबी खं० १ पृ० १०५।

एक और पुस्तक का भी अनुवाद हुआ था, जिसमें जड़ी-बूटियों के भिन्न भिन्न नाम थे। उसमें एक एक जड़ी के दस दस नाम दिए थे। सुलैमान बिन इसहाक के लिये मनका पंडित ने इसका अरबी में अनुवाद किया था।[१]

एक और पुस्तक थी जिसका विषय था कि भारतीय और यूनानी दवाओं में से कौन सी दवाएँ ठंढी हैं और कौन सी गरम हैं, किस दवा में क्या शक्ति और क्या प्रभाव है और वर्ष की ऋतुओं के विभाग में क्या क्या अन्तर और मतभेद हैं। इस पुस्तक का भी अरबी में अनुवाद हुआ था।[२]

इब्न नदीम ने भारतीय चिकित्साशास्त्र की एक और पुस्तक का नाम अस्तानगर लिखा है, जिसका अनुवाद इब्न दहन ने किया था।

नोकशनल (या नोपशनल ?) नाम के एक वैद्य की दो पुस्तकों के भी अनुवाद किए गए थे। उनमें से एक में एक सौ रोगों और सौ ओषधियों का वर्णन था; और दूसरी पुस्तक में रोगों के सन्देहों और कारणों आदि का वर्णन था।

रूसा नाम की एक हिन्दू विदुषी की एक पुस्तक का भी अनुवाद हुआ था, जिसमें विशेषतः स्त्रियों के रोगों की चिकित्सा दी गई थी।

एक पुस्तक गर्भवती स्त्रियों की चिकित्सा के सम्बन्ध में थी।

जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध की एक संक्षिप्त पुस्तक थी।

एक पुस्तक नशे की चीजों के सम्बन्ध में थी।[३]

---

[१] इब्न नदीम, पृष्ठ ३०३; और याक़ूबी खं० १, पृष्ठ १०५।

[२] याक़ूबी खं० १; पृष्ठ १०५।

[३] ऊपर की सात पुस्तकों का उल्लेख इब्न नदीम की पुस्तक के पृष्ठ ३०३ में है।

मसऊदी ने चिकित्साशास्त्र की एक पुस्तक का नाम और वर्णन इस प्रकार लिखा है—"राजा कोरश के लिये चिकित्साशास्त्र की एक बड़ी पुस्तक लिखी गई थी, जिसमें रोगों के कारण, चिकित्सा, ओषधियों की पहचान और जड़ी-बूटियों के चित्र बनाए गए थे।"[१]

पीनेवाली चीज़ों या पेय द्रव्यों में इब्न नदीम ने "अतर" का उल्लेख किया है। बहुत सम्भव है कि यह नाम अत्रि नामक वैद्य के नाम पर रखा गया हो। इब्न नदीम ने एक और पंडित का नाम सावबर्म दिया है।[२] इसका शुद्ध रूप कदाचित् सत्यवर्मन् हो, जिसकी "सत्या" (सत्रा ?) नामक पुस्तक का बैरूनी ने उल्लेख किया है।[३]

पुस्तकों आदि के अतिरिक्त संस्कृत और भारत के उन बचे हुए प्रभावों का भी उल्लेख करना है, जो अरबी चिकित्साशास्त्र में अब तक उपस्थित हैं।

इस प्रसंग में उन प्रभावों का उल्लेख नहीं है, जो भारत के मुसलमान बादशाहों के समय में अरबी चिकित्साशास्त्र पर पड़े थे। वह एक अलग विषय है। यहाँ हमारा अभिप्राय उन प्रभावों से है, जो हिजरा चौथी शताब्दी तक अरबी चिकित्साशास्त्र पर पड़े थे। इस प्रकरण में सब से पहले तो वे दवाएं हैं, जो भारत से अरब गईं और जिनकी जाँच के लिये बरामका और ख़लीफ़ाओं ने अपने आदमी भारत भेजे थे। इनमें से बहुत सी दवाओं के नाम केवल उनकी उत्पत्ति के स्थान के विचार से ही नहीं, बल्कि भाषा के विचार से भी भारतीय ही हैं; और कम से कम एक दवा ऐसी है,

---

[१] मसऊदी; पहला खंड; पृष्ठ १६२ (पेरिस)

[२] इब्न नदीम; पृष्ठ ३०५।

[३] ज़ख़ाऊ की "इंडिया" नामक पुस्तक की भूमिका; पृ० ३३।

जिसका नाम भारत के सम्बन्ध से स्वयं इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद साहब के समय में अरब में सुनाई देता है। कस्त हिन्दी[१] और जंजबील (जरंजा बीरा या अम्बीर ?) अर्थात् सोंठ का शब्द स्वयं कुरान में है। इस प्रकार की कुछ और दवाओं के नाम हमने "व्यापारिक सम्बन्ध के प्रकरण में दिए हैं।

अरबी में दो शब्द सब से बढ़कर विलक्षण हैं; जिनमें से एक तो दवा का नाम है और दूसरा खाद्य पदार्थ का। दवा में इतरीफल है, जो इतना अधिक प्रसिद्ध है और प्रत्येक चिकित्सक और रोगी जिसका व्यवहार करता है। हिजरी चौथी शताब्दी में मुहम्मद ख़्वारिज़्मी ने लिखा है—यह हिन्दी शब्द तिरीफ़ल (त्रिफला) है। यह तीन फलों अर्थात् हर्र, बहेड़े और आँवले से बनता है।"[२] इसी प्रकार की एक और दवा का नाम अंबजात है। ख़्वारिज़्मी कहता है—भारत में आम नाम का एक फल होता है। उसीको शहद, नीबू और हर्रे में मिलाकर "अंबजात" बनाते हैं।" सम्भवतः इसको गुडम्बा या आमों का अचार या मुरब्बा कहना चाहिए। लेकिन इन सब से बढ़कर विलक्षण शब्द "बहत:" (या भत्तः ?) है, जिसके सम्बन्ध में ख़्वारिज़्मी ने यह कहा है—"यह एक प्रकार का रोगियों का भोजन है। यह सिन्धी शब्द है। यह दूध और घी में चावल को पकाकर बनाया जाता है।"[३] आप समझे ? यह हमारा हिन्दुस्तानी भात है, जो अरबों के विचार से रोगियों के लिये एक हल्का भोजन होगा। अब आप इसको चाहे खीर समझिए और चाहे फ़ीरीनी।

---

[१] सहीह बुखारी; दूसरा खंड; पृ० ८५१. किताबुल्मरज़।

[२] मफातीहुल् उलूम; ख़्वारिज़्मी; पृ० १८६।

[३] उक्त ग्रन्थ; पृ० १७७।

पशु-चिकित्सा (शालिहोत्र)

पशुओं की चिकित्सा के सम्बन्ध में शानाक या चाणक्य नामक पंडित की पुस्तक का अरबी में अनुवाद हुआ था।[1]

ज्योतिष और रमल

सभी लोग जानते हैं कि इन विद्याओं का भारत के साथ कितना अधिक सम्बन्ध है। अब्बासी वंश के दूसरे ख़लीफ़ा मन्सूर के ही समय से, जो सन् १४७ हि० में सिंहासन पर बैठा था, अरब में इन विद्याओं का प्रचार हुआ था। इस प्रकार की बातों में मन्सूर को बहुत अनुराग था। जब उसने बग़दाद नगर बनवाया था, तब उसकी हर एक चीज़ कुंडली खींच खींचकर बनाई गई थी। पहले दरबार में ईरानी ज्योतिषियों की प्रधानता थी। फिर हिन्दू ज्योतिषियों ने वहाँ अपना अधिकार जमाया। जान पड़ता है कि मन्सूर के ही समय में इस विद्या की भारतीय पुस्तकों का अरबी में अनुवाद हुआ था इन ज्योतिषी पंडितों में से अरबी में सबसे प्रसिद्ध नाम कनका पंडित का है। इब्न अबी उसैबा ने लिखा है कि यह एक प्रसिद्ध चिकित्सक और वैद्य था।[2]

ज़ख़ाऊ की जाँच के आधार इस नाम का भारतीय रूप कंकनाय या कनकनाय (कनकनाम ?) होगा, क्योंकि इस नाम का एक प्रसिद्ध वैद्य भारत में पहले हो चुका है, जिसका मत भारतीय औषधों के सम्बन्ध में प्रामाणिक माना जाता है।[3]

---

[1] उक्त ग्रन्थ; पृ० १६७।

[2] उयूनुल् अम्बा फ़ी तबक़ातुल् अतिब्बा; दूसरा खंड; पृष्ठ ३३ (मिस्र)।

[3] "इंडिया" नामक पुस्तक की भूमिका; पृ० ३२।

इब्न नदीम ने अरबी में इस पंडित की चार पुस्तकों का उल्लेख किया है[१]—

(१) किताबुन नमूदार फ़िल् अअ्मार—आयुष्य के वर्णन की पुस्तक।

(२) किताब असरारुल् मवालीद—उत्पत्तियों या जन्मों के भेद या जातक।

(३) किताबुल् क़िरानातुल् कबीर—बड़े क़िरान या बड़े लग्न के वर्णन की पुस्तक।

(४) किताबुल् क़िरानातुल् सग़ीर—छोटे लग्न के वर्णन की पुस्तक।

इब्न अबी उसैबा का कहना है कि ये पुस्तकें आयुर्वेद या चिकित्साशास्त्र की हैं; पर इब्न नदीम ने इसका उल्लेख ज्योतिष् की पुस्तकों के साथ ही किया है। सम्भव है कि इसमें दोनों ही विषय हों; क्योंकि पुराने चिकित्साशास्त्र में ज्योतिष् की भी बहुत सी बातें होती थीं। इब्न अबी उसैबा ने इसकी और भी दो पुस्तकों के नाम बतलाए हैं[२]—

(५) किताब फ़ित्तवहहुम—मेस्मेरिज्म के सम्बन्ध में।

(६) किताब फ़ी इहदासुल् आलम वदौर फ़िल् क़िरान संसार की घटनाएँ और ग्रहों के लग्नों में चक्र।

यही लेखक मुसलमान नजूमी या ज्योतिषी अबू मअ्शर बलख़ी (सन् २७२ हि० ८८६ ई०) के आधार पर लिखता है—"भारत के

---

१ इब्न नदीम की पुस्तक; पृ० २७० ।

२ उयूनुल् अम्बा फ़ी तबक़ातुल् अतिब्बा; दूसरा खंड; पृ० ३३ (मिस्र) ।

सब पंडितों के मत से यह कनका ज्योतिषशास्त्र का सबसे बड़ा पंडित है।"

अतारद बिन मुहम्मद नाम का एक मुसलमान ज्योतिषी था, जो कदाचित् हिजरी दूसरी शताब्दी में हुआ था। इसने भारतीय जफ़र (स्वरोदय ?) के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी थी।[1] इसके सिवा इब्न नदीम ने तीन और हिन्दू ज्योतिषियों के नाम लिए हैं।[2]

(१) जौदर हिन्दी (भारतीय)—इसकी पुस्तक का नाम "किताबुल् मवालीद" (उत्पत्तियों की पुस्तक या जातक) है।

(२) नहक या नायक (नहक) हिन्दी। इसकी पुस्तक का नाम असरारुल् मसायल (प्रश्नों का रहस्य) है।

(३) सिंहल (संजहल या संभल) हिन्दी। इसकी पुस्तक का नाम किताबुल् मवालीदुल् कबीर (उत्पत्तियों की बड़ी पुस्तक या बड़ा जातक; बृहज्जातक) है। ज्योतिष् के प्रकरण में बैरूनी ने भी सिंहल का नाम लिया है।[3]

भारत की किसी भाषा से एक ऐसी पुस्तक (सामुद्रिक) का भी अरबी में अनुवाद हुआ था, जिसमें हथेली की लकीरें और हाथ देखकर हाल बताने की विद्या का वर्णन था।[4]

इसके सिवा भारतीय रमल के सम्बन्ध में ज़जरुल् हिन्द नाम की भी एक पुस्तक है।[5]

---

[1] इब्न नदीम पृ० २७८।

[2] उक्त ग्रन्थ; पृ० २७१।

[3] किताबुल् हिन्द; पृ० ७६।

[4] इब्न नदीम; पृ० ३१४।

[5] उक्त ग्रन्थ; पृ० ३१४।

सांपों की विद्या (गारुडी विद्या)

भारत के लोग साँपों के प्रकार जानने और उनके काटे की झाड़ फूँक और जन्तर मन्तर करने के लिये प्रसिद्ध हैं। और यहाँ इसका नाम सर्प-विद्या है। राय नामक एक पंडित की लिखी हुई इस विद्या की एक पुस्तक का अरबी में अनुवाद हुआ था, जिसमें साँपों के भेदों और विषों का वर्णन था।[1] अरबी में एक और भारतीय पंडित की पुस्तक का उल्लेख है जो इसी विद्या पर थी।[2]

विष-विद्या

इस विद्या के भी भारतवासी बहुत बड़े पंडित होते थे। ज़करिया क़ज़वीनी ने अपनी आसारुल् बिलाद नामक पुस्तक में हिन्द या भारत के प्रकरण में बेश (विष) नामक एक जड़ी का उल्लेख किया है; और इसके द्वारा राजाओं का आपस में मित्रता के छल से एक दूसरे को मारने की विलक्षण कथा लिखी है। यह "बेश" हिन्दी का विष है, जिसका अर्थ ज़हर है। जो हो, राजाओं को अपनी रक्षा करने और अपने प्राण बचाने के लिये इस विद्या का ज्ञान रखने की बहुत आवश्यकता हुआ करती थी। युद्ध-विद्या के सम्बन्ध में अरबी में चाणक्य या शानाक पंडित की जो पुस्तक है, उसका नाम पहले आ चुका है। उसका अन्तिम प्रकरण "भोजन और विष" के सम्बन्ध में था। जान पड़ता है कि इसके सिवा इसकी कोई और पुस्तक भी थी, जिसमें विशेष रूप से विषों का ही वर्णन था और जो हिजरी सातवीं शताब्दी (ईसवीं तेरहवीं शताब्दी) तक अरबी भाषा में मिलती थी। क्योंकि इब्न अबी उसैबअ ने सन् ६६८ हि० (सन्

---

[1] उक्त ग्रन्थ; पृ० ३०३

[2] उयूनुल् अम्बा फ़ी तबक़ातुल् अतिब्बा; पृ० ३३ (मिस्र)

१२७० ई०) में इस पुस्तक का पूरा वर्णन इस प्रकार लिखा है—"इस पुस्तक में पाँच प्रकरण हैं। यहिया बिन ख़ालिद बरमकी के लिये मनका या माणिक्य पंडित ने अबू हातिम बलख़ी की सहायता से फ़ारसी में इसका अनुवाद किया था। फिर अब्बास बिन सईद जौहरी ने ख़लीफ़ा मामूँ रशीद (सन् २१८ हि०) के लिये इसका दोबारा अनुवाद किया था।[1] इब्न अदीम की सूची में इसी प्रकार की एक और पुस्तक का नाम मिलता है[2], जिसका अरबी में अनुवाद हुआ था। पर उस पुस्तक के मूल लेखक का उसमें नाम नहीं दिया गया है।

संगीतशास्त्र

जाहिज़ (सन् २५५ हि०) का कथन ऊपर दिया जा चुका है, जिसमें उसने भारतीय संगीत की प्रशंसा की है और विशेष रूप से एक तारे का उल्लेख किया है। बग़दाद के ग्रन्थों में भारत की संगीत विद्या पर किसी पुस्तक का नाम नहीं मिलता। पर स्पेन के एक विद्वान् इतिहास-लेखक क़ाज़ी साइद अन्दलसी (सन् ४६२ हि० ; १०७० ई०) ने लिखा है—"भारत की संगीत विद्या की नाफर नाम की एक पुस्तक हम को मिली है, जिसका शब्दार्थ है—"बुद्धिमत्ता के फल" और जिसमें रागों और स्वरों का वर्णन है।"[3] आश्चर्य नहीं कि यह यह फ़ारसी का नौ-बर शब्द हो, जिसका अर्थ है—नया फल ; और फ़ारसी अनुवाद के द्वारा यह पुस्तक अरबी भाषा में भी हो गई हो। पर नाफर शब्द के सम्बन्ध में हमारे एक हिन्दू मित्र का कहना है कि यह शब्द "नाद" होगा, जो संस्कृत में शब्द या आवाज़ को कहते हैं।

---

[1] उक्त ग्रन्थ; और पृ०।

[2] इब्न नदीम ; पृ० ३१७।

[3] तबक़ातुल् उमम ; क़ाज़ी साइद अन्दलसी ; पृ० १४ (बैरूत)।

महाभारत

पेरिस की लाइब्रेरी में मुजम्मिल उत्तवारीख नाम की फ़ारसी भाषा की एक पुस्तक है जो भारत के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में है और जिसमें महाभारत की बहुत सी कथाएँ हैं। इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि संस्कृत (हिन्दुवानी) भाषा से अबू सालह बिन शुऐब ने अरबी में इसका अनुवाद किया था। फिर सन् ४१७ हि० में अबुलूहसन अली जिबिल्ली ने, जो किसी दैलमी अमीर के पुस्तकालय का प्रबन्धकर्त्ता था, इसका अरबी में अनुवाद किया। ईलियट साहब ने इसकी कुछ संक्षिप्त बातें दी हैं।[१]

युद्ध-विद्या और राजनीति

भारतीय भाषा (संस्कृत या पाली) से इस विद्या की हिन्दू पंडितों की दो पुस्तकों का अरबी में अनुवाद हुआ था। उनमें से एक का नाम अरब लोग "शानाक" बतलाते हैं; और दूसरे का बाखर या बाभ्कर। सम्भवतः पहला नाम चाणक्य हो और दूसरा व्याघ्र। भारतीय चाणक्य या शानाक की पुस्तक (अर्थशास्त्र) का विषय यह है—"युद्ध की व्यवस्था और राजा को कैसे आदमी चुनने चाहिए; सैनिकों की व्यवस्था; और भोजन और विष।"[२] याभ्कर या व्याघ्र की पुस्तक में तलवारों की पहचान, उसके गुण और लक्षण आदि बतलाए गए हैं।[३] संस्कृत से एक और पुस्तक का अरबी में अनुवाद हुआ था, जिसका नाम अदबुल् मुल्क अर्थात् "राज्य की प्रणालियाँ या ढंग" है। इस पुस्तक के अरबी अनुवादक का नाम अबू सालह

---

[१] ईलियट कृत भारत का इतिहास; पहला खंड; पृ० १०० ।

[२] इब्न नदीम; पृ० ३१५ ।

[३] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ ।

बिन शुऐब है। उसके समय का पता नहीं है। इस समय उसका केवल फ़ारसी अनुवाद मिलता है। यह अनुवाद सन् ४१७ हि० में अबुलहसन बिन अली जिबिल्ली ने किया था, जो एक दैलमी अमीर के पुस्तकालय का प्रबन्धकर्त्ता था।[1]

कीमिया या रसायन

पुरानी कीमिया या रसायन का मूल और उद्गम चाहे जो हो, पर इस विद्या की एक हिन्दू विद्वान् की पुस्तक के अनुवाद का पता इब्न नदीम में मिलता है[2]; और एक प्रसिद्ध अरब रसायनिक जाबिर बिन ह्यान की एक पुस्तक "खातिफ" का भी इसी भारतीय सम्बन्ध के सहित उल्लेख है।[3] परन्तु इस भारतीय विद्वान् का नाम बहुत ही सन्दिग्ध है।

तर्कशास्त्र

इब्न नदीम की फ़ेहरिस्त (सन् ३७७ हि०) में एक अरबी पुस्तक का, जिसका भारतीय (संस्कृत) भाषा से अनुवाद हुआ था, इस प्रकार उल्लेख है—

"किताब हुदूद मन्तिक़ुल्हिन्द"[4] (भारत के तर्क शास्त्र की सीमाएँ)। परन्तु याक़ूबी ने, जो इब्न नदीम से सौ बरस पहले हुआ है, इस पुस्तक का उल्लेख तर्क और दर्शन की पुस्तकों के अन्तर्गत इस नाम से किया है—"किताब तूफाफी इल्म हुदूदुल् मन्तिक"[5] (तोफा (टोपा) की पुस्तक, तर्क की सीमाओं की विद्या पर)—यहाँ प्रश्न यह है

---

[1] ईलियट ; पहला खंड ; पृ० ११२।

[2] इब्न नदीम ; पृ० ३५३।

[3] उक्त ग्रन्थ ; पृ० ३५६।

[4] उक्त ग्रन्थ ; पृ० ३०५।

[5] याक़ूबी ; पृ० १०५।

कि इस मन्तिक शब्द से तर्क या न्याय (लॉजिक) का अभिप्राय है; या मन्तक शब्द के पारिभाषिक अर्थ "बोलने और भाषण करने" आदि का अभिप्राय है, जो उस शब्द का शब्दार्थ है; और उस पुस्तक में केवल कहानियाँ और कथाएँ आदि थीं या उसमें नीति और सदाचार आदि की बातें थीं; और इस नाम का यह अभिप्राय था कि मनुष्य के बोलने की सीमाएँ बतलानेवाली पुस्तक; अर्थात् मनुष्य को कहाँ बोलना चाहिए और कहाँ न बोलना चाहिए; और किस प्रकार बोलना चाहिए। इब्न नदीम ने इस पुस्तक का उल्लेख नीचे लिखे शीर्षक के अन्तर्गत किया है—उन भारतीय पुस्तकों के नाम, जो कथा और कहानी की हैं।" इससे जान पड़ता है कि यह पुस्तक तर्कशास्त्र या न्याय की नहीं थी।

अलंकारशास्त्र

जाहिज (सन् २५५ हि०) ने अपनी किताबुल् बयान बत्तबईन नामक पुस्तक में लिखा है[१]—"जिस समय यहिया बिन खालिद बरमकी ने बहुत से हिन्दू पंडितों को बुलवाया था, उस समय मुअम्मिर ने उनमें से एक पंडित से पूछा था—"भारतवासी उत्कृष्ट भाषण किसको कहते हैं?" उसने कहा "मेरे पास इस विषय पर एक छोटा सा निबन्ध है; पर मैं उसका अनुवाद नहीं कर सकता और न यह विद्या जानता हूँ।" मुअम्मिर का कहना है कि मैं वह संक्षिप्त निबन्ध लेकर अनुवादकों के पास गया। उन्होंने उसका यह अनुवाद किया। इसके बाद जाहिज ने इस निबन्ध का संक्षेप एक पृष्ठ में दिया है जिसमें यह बतलाया गया है कि वक्ता या भाषण करनेवाले को कैसा होना चाहिए और किस अवसर पर कैसी बातें कहनी चाहिए।[२]

---

[१] किताबुल् बयान बत्तबईन ; पहला खंड ; पृ० ४० (मिस्र)।

[२] सम्भव है कि इसमें अलंकारशास्त्र की कुछ बातें हों—अनुवादक।

इन्द्रजाल

भारत की यह बहुत प्रसिद्ध और पुरानी विद्या है। अरबी पुस्तकों में जहाँ भारत की विशेषताएँ बतलाई गई हैं, वहाँ इस देश के करतबों, बाजीगरों और जादूगरों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इब्न नदीम कहता है—"भारतवासियों का जादू और मन्त्र पर बहुत विश्वास है।" फिर आगे चलकर कहता है—"भारतवासी तवह्हुम की विद्या के बहुत बड़े जानकार होते हैं और इस विद्या पर उनकी पुस्तकें हैं, जिनमें से कुछ का अरबी में अनुवाद हुआ है।" तवह्हुम की विद्या से शायद इसका उसी विद्या से अभिप्राय है, जिसे आजकल मेस्मरिज्म कहते हैं।[1] याक़ूबी ने इसका यह आशय लिखा है—"अपने मन में किसी प्रकार का विचार रखकर (दूसरे को) उसीके अनुसार विश्वास दिलाया जाय और वैसा ही हो।"[2] साथ ही यह भी लिखा है कि केहन नाम के एक राजा ने इस विद्या का आविष्कार किया था।

इब्न नदीम एक हिन्दू लेखक का उल्लेख करता है, जिसका नाम उसकी पुस्तक के सम्पादक से भी नहीं पढ़ा गया और उसने उसी प्रकार लकीर बनाकर उसे छोड़ दिया है। देखने में वह "सीसा हिन्दी" जान पड़ता है। फिर लिखता है—"यह पुराने लोगों में है और इसका नजरबन्दी का ढंग भारत के ढंग का सा है।" इसकी एक पुस्तक है जिसमें तवह्हुम (मेस्मरिज्म) वालों का सा ढंग रखा गया है।[3]

---

[1] अल् फ़ेहरिस्त ; पृ० ३०९।

[2] याक़ूबी ; पहला खंड ; पृ० ९७।

[3] इब्न नदीम पृ० ३१२।

कथा कहानी

इस विषय की भारत की कई पुस्तकों का अनुवाद अरबी में हुआ था, जिनमें से दो के नाम "सिन्दबाद हकीम (पंडित) की पुस्तक" हैं। इसकी दो प्रतियाँ हैं—एक छोटी और दूसरी बड़ी। इस पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ लोगों का विचार है कि यह ईरानियों की बनाई हुई है। पर इब्न नदीम कहता है—"सच यह है कि यह भारत की बनी हुई है। यह हो सकता है कि कुछ दूसरी पुस्तकों की तरह पर इस पुस्तक का भी पहले फ़ारसी में अनुवाद हुआ हो; और फिर यह फ़ारसी से अरबी में आई हो, और इस लिये लोगों को यह धोखा हुआ हो कि यह ईरानियों की बनाई हुई है।"

कहानियों की प्रसिद्ध "अल्फ़ लैला" नाम की पुस्तक में सिन्दबाद के नाम की दो कहानियाँ हैं, जिनमें से एक में सिन्दबाद नाम के व्यापारी की जल-यात्रा की और दूसरे में स्थल-यात्रा की विलक्षण और अद्भुत घटनाएँ बतलाई गई हैं। इस सिन्दबाद शब्द के ही कारण कुछ लोगों को यह धोखा हुआ[1] कि वह भारतीय कहानी यही है। पर यह बात ठीक नहीं, क्योंकि एक तो यह हकीम सिन्दबाद की[2] कहानियाँ हैं, और अल्फ़ लैला सिन्दबाद नामक व्यापारी की कहानियाँ हैं। और दूसरे अल्फ़ लैला में सिन्दबाद की यात्रा की जो कहानियाँ हैं, वह हिन्दू भावों और परिस्थितियों के बिलकुल अनुकूल

---

[1] रसायल शिवली; पृ० २६३ (पहला संस्करण) अनुवादों का प्रकरण।

[2] फ़ेहरिस्त; पृ० ३०५; पंक्ति २ और २० याक़ूबी; पहला खंड; पृ० १०५।

नहीं हैं। फिर मसऊदी ने[1] इस कहानी के अंग ये लिखे हैं—"सात मन्त्रियों, एक गुरु एक लड़के और एक रानीवाली कहानी।" यह बात अल्फ़ लैला की सिन्दबाद वाली कहानी पर ठीक नहीं बैठती।

इसके सिवा भारत की कुछ और कहानियों का भी अरबों ने अपनी भाषा में अनुवाद कराया था, जिनमें से एक "दीपक हिन्दी की कहानी" है। इसमें एक स्त्री और पुरुष की कथा है। एक हज़रत आदम की भूमि पर आने की कहानी है।[2] यह पता नहीं चलता कि इस कहानी से देववाणी (संस्कृत) की किस कहानी का अभिप्राय है। इसी प्रकार एक राजा की कहानी है, जिसमें लड़ने और तैरने का वर्णन है। एक और कहानी में दो भारतीयों का वर्णन है, जिनमें से एक उदार दाता और दूसरा कंजूस था। दोनों की उदारता और कंजूसी का मुकाबला किया है, और अन्त में राजा का निर्णय दिया है।[3] एक और पुस्तक का भी अनुवाद हुआ था, जिसमें त्रिया-चरित्र का वर्णन था। इसके रचयिता का नाम राजा कोष लिखा है।[4]

एक और पुस्तक इल्मुल् हिन्द (हुक्म उल् हिन्द ?) का भी पता चलता है, जिसका पहले गद्य में अनुवाद हुआ था। फिर अब्बान कवि[5] ने इसे पद्य में लिखा था। भारत की कई कथाओं और कहानियों के उल्लेख इख़वानुस्सफ़ा के निबन्धों में मिलते हैं।

---

[1] तारीख मुरूजुज़ ज़हब; मसऊदी; पहला खंड; पृ० १६२ (लीडन)।

[2] फ़ेहरिस्त इब्न नदीम; पृ० ३०५।

[3] उक्त ग्रन्थ; पृ० ३१६।

[4] तारीख याक़ूबी; पहला खंड पृ० १०५।

[5] इब्न नदीम; पृ० ११६ सम्भवतः यह वही पुस्तक कलेला दमना (पंच तंत्र) है, जिसका उल्लेख आगे चलकर आता है।

सदाचार और नीति

पुराने विद्वानों की यह प्रथा थी कि वे सदाचार, नीति और बुद्धिमत्ता की बातें कथाओं, कहानियों और उदाहरणों आदि के द्वारा बतलाया करते थे और कुत्तों, चूहों, बिल्लियों और कौओं के मुँह से मनुष्यों को समझाते थे। संस्कृत की एक विशेष पुस्तक, जो फ़ारसी और अरबी में इस दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हुई, कलेला दमना है, बैरूनी के अनुसार जिसका संस्कृत नाम पंचतन्त्र है। इस्लाम के प्रचार से ईरान के सासानी बादशाहों के समय इस पुस्तक का संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद हुआ था। फिर अब्दुल्लाह बिन मुकफ़्फ़ा ने हिजरी दूसरी शताब्दी में इसे अरबी रूप दिया था। अरबी में इस पुस्तक ने इतनी प्रसिद्ध प्राप्त की और बादशाहों तथा अमीरों ने इसका इतना अधिक आदर किया कि इसके अरबी से फ़ारसी में, फ़ारसी से अरबी में, पद्य से गद्य में और गद्य से पद्य में कई अनुवाद होते रहे और कई प्रतियाँ बनती रहीं और अनुवादक, कवि तथा लेखक लोग इसके अनुवाद, कविता और गद्य-लेखन में अपना कौशल दिखा दिखाकर मुसलमान बादशाहों से बड़े बड़े पुरस्कार पाते थे। हिजरी दूसरी शताब्दी के अन्त में जब अरबी के अब्बान नामक एक कवि ने इसका अरबी पद्य में अनुवाद करके हारूँ रशीद के मन्त्री जाफ़र बरमकी की सेवा में उपस्थित किया, तब उसने उसको एक लाख दरहम पुरस्कार दिया।[१] अरबी भाषा से इस पुस्तक के संसार भर की भाषाओं में अनुवाद हुए। युरोप, अफ़्रिक़ा और एशिया की कोई ऐसी शिक्षितों की भाषा नहीं है, जिसमें इसका अनुवाद न हुआ हो इस पुस्तक के

---

[१] किताबुल् वुज़रा वल् किताब जहुशियारी। (सन् १६२६ में वियाना आस्ट्रिया से प्रकाशित) पृ० २५६।

अनुवादों और प्रतियों के उलट-फेर का स्वयं एक अच्छा इतिहास है। उर्दू में स्व० डाक्टर सैयद अली बिलग्रामी ने सन् १८९१ ई० में अलीगढ़ में मुस्लिम एजुकेशनल कान्फ्रेंन्स की बैठक में इस विषय पर बहुत छान बीन करके एक बड़ा व्याख्यान दिया था। इसके सम्बन्ध में इस विषय का दूसरा लेख इस पुस्तक के लेखक का है, जो अलीगढ़ की मन्थली मैगज़ीन (Monthly Magazine) मासिक पत्रिका में कदाचित् सन् १९०५ ई० में या उसके एक आध बरस आगे पीछे प्रकाशित हुआ था।

इस पुस्तक के लेखक का नाम बेदपा पंडित बतलाया गया है; और जिस राजा के लिये यह लिखी गई थी, उसका नाम दाबशलीम बतलाया गया है। राजाओं और महाराजाओं को जिन बातों के जानने की आवश्यकता होती है, वे सब बातें पशुओं और पक्षियों आदि की कहानियों के रूप में दस प्रकरणों में दी गई हैं। ऐसा जान पड़ता है कि जिस राजा का नाम दाबशलीन बतलाया गया है, वह गुजरात का राजा था। क्योंकि हिजरी चौथी शताब्दी (ईसवी दसवीं शताब्दी) के अरब यात्री इब्न हौकल ने गुजरात के राजा वल्लभराय का नाम लेकर लिखा है—"उदाहरणोंवाली पुस्तक (किताबुल् अम्साल वाला) राजा।"[1] और अरबी में उदाहरणोंवाली पुस्तक यही कलेला दमना समझी जाती है। याकूबी ने लिखा है कि राजा दाबशलीन के समय में बेदपा पण्डित ने यह पुस्तक लिखी थी।[2] और फ़रिश्ता में लिखा है कि जिस समय सुलतान महमूद ने गुजरात पर चढ़ाई की थी उस समय गुजरात का जो राजा राजगद्दी पर से हटाया गया था, उसके वंश का नाम बोदा बशलीन था।

---

[1] सफ़रनामा इब्न हौक़ल; पृ० २२७।

[2] पहला खंड; पृ० ९७।

प्रो० ज़खाऊ की भूल

इण्डिया नामक पुस्तक की भूमिका में प्रो० जखाऊ ने इब्न नदीम के आधार पर "बेदपा फ़िल् हिकमत" (बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध में बेदपा की पुस्तक) का नाम लिया है; और अपनी समझ से जांच करके यह बतलाया है कि वेदपा वास्तव में वेद व्यास हैं जो वेदान्त के आचार्य और प्रवर्त्तक थे। इस लिये बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध में बेदपा की जो पुस्तक है वह वेदान्त है। फिर इस भ्रमात्मक अनुमान पर एक और अनुमान खड़ा कर लिया है कि मुसलमानों में एकेश्वर-वाद या ईश्वर के एक होने के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त है, वह इन्हीं वेद व्यास के वेदान्त के अनुवाद से आया है।[१] हम यह मानते हैं कि बाद के सूफ़ी सम्प्रदाय के मुसलमानों पर वेदान्त का प्रभाव पड़ा था; पर हम यह नहीं मान सकते कि इतने दिनों पहले ही अरबों और मुसल-मानों को वेदान्त का किसी प्रकार का ज्ञान न था। पहले के मुसलमान सूफ़ियों पर के एकेश्वरवाद पर एलेक्ज़ेंड्रिया के नव-अफ़लातूनी दर्शन का प्रभाव अवश्य पड़ा है। जो हो, यहाँ इस सिद्धान्त के इतिहास से हमारा कोई मतलब नहीं है, बल्कि इब्न नदीम के इस वाक्य से पूर्वी विद्याओं के उक्त विद्वान् को जो भ्रम हुआ है, हम वह भ्रम दूर करना चाहते हैं। ज्ञान और उपदेश की जो बातें बुद्धिमत्ता और चतुराई के उदाहरणों और कहानियों आदि के द्वारा समझाई जाती हैं, उन्हें अरबी में "हिकमत" कहते हैं। बेदपा की पुस्तक से यहाँ उसी कलेला दमना का अभिप्राय है, जिसका बनानेवाला उसके फ़ारसी अनुवाद के आरम्भ में बेदपा पंडित बतलाया गया है[२] और जिसमें कहानियों

---

[१] "इंडिया की भूमिका; पृ० ३३।

[२] याक़ूबी; पहला खंड; पृ० ९७।

और उदाहरणों के द्वारा ज्ञान और बुद्धिमत्ता की बातें बतलाई गई हैं। और इसी लिये इब्न नदीम ने बेदपा की इस हिकमतवाली पुस्तक का नाम कथाओं और कहानियों के प्रकरण में लिया है, दर्शन के प्रकरण में नहीं लिया है।

जो हो, यह वह महत्वपूर्ण पुस्तक है जिसकी बातें भारतवासियों के मस्तिष्क से निकली हैं और जो अरबों के प्रयत्न से संसार के कोने कोने में फैल गई है। बैरूनी लिखता है—"अब्दुल्लाह बिन मुकफ़्फा ने जो मजूसियों या अग्निपूजकों के "मानी" नामक सम्प्रदाय का अनुयायी था, मूल पुस्तक के अनुवाद में अपने विचारों और धार्मिक विश्वास के अनुसार कई जगह पाठ बदले हैं। मैं हृदय से यह चाहता था कि मुझे इसकी मूल पुस्तक पंचतन्त्र का शुद्ध और ज्यों का त्यों अनुवाद करने का अवसर मिलता।"[१] पर जान पड़ता है कि बैरूनी को ऐसा अनुवाद करने का अवसर नहीं मिला। इस पुस्तक का अरबी में बहुत प्रचार है; और वह अब तक कहीं कहीं बालकों को पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ाई जाती है।

भारतीय ज्ञान और बुद्धिमत्ता की दूसरी पुस्तक का नाम "बोज़ आसफ़ व बलोहर" है। इसकी प्रसिद्धि तो कलेला दमना से कम है, पर इसका महत्व और श्रेष्ठता उससे कहीं बढ़कर है। इब्न नदीम ने इसका उल्लेख उन भारतीय कहानियों के प्रकरण में किया है, जिनका अरबी में अनुवाद हुआ था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बोज़ आसफ़ से बुद्ध का अभिप्राय है। पुरानी फ़ारसी में "दाल" या "द" के स्थान पर "ज़ाल" या "ज" लिखते थे। इस लिये बोद आसफ़ की जगह बोज़ आसफ़ हो गया। इस शब्द के अन्त में जो "सफ" है, वह ख़्वाऊ के कहने में अनुसार "सत्व" है। बोधिसत्व का फ़ारसी में बोज़ासफ़ हो गया

[१] किताबुल् हिन्द; पृ० ७६ (लन्दन)।

है। कुछ विशेष अवसरों पर "वाव" या "व" जैसे रोमन की, अरबी में "फे" या "फ" हो जाता है। बलोहर शब्द का मूल ज़खाऊ साहब पुरोहेतर या पुरोहित समझते हैं। इस पुस्तक में बुद्ध के जन्म और शिक्षा आदि की कथा है; और बतलाया गया है कि किस प्रकार संयोग से एक घटना हो जाने के कारण संसार से उनका मन हट गया था। इसका समाचार पाकर सरन्दीप से किस प्रकार एक योगी व्यापारी के भेस में इनके पास आया था और गुरु शिष्य दोनों में सृष्टि के गूढ़ रहस्यों के सम्बन्ध में कथाओं, कहानियों, उपमाओं और उदाहरणों आदि के रूप में ऐसी बातें और प्रश्नोत्तर हुए थे, जिनसे बुद्ध का सन्तोष हो गया था। अरबी से यह पुस्तक अनेक भाषाओं में फैली और धार्मिक क्षेत्रों में लोगों ने इसे इतना अधिक पसन्द किया कि ईसाई लोग यह कहने लगे कि यह तो हमारे ही सम्प्रदाय के एक महात्मा की बनाई हुई है। मुसलमानों के एक सम्प्रदाय ने इस पुस्तक के बड़े अंश को लेकर यह कहना आरम्भ किया कि यह तो हमारे एक इमाम का बनाया हुआ है। इख़वानुस सफ़ा नाम की पुस्तक हिजरी चौथी शताब्दी में बनी थी। उसमें कुछ तो धर्म की बातें हैं और कुछ दर्शन की; और इस दृष्टि से वह बहुत महत्व की पुस्तक है कि वह विचारशीलों की एक विशेष शाखा की पुस्तक है और एक गुप्त सभा के सदस्यों ने इस ढङ्ग से लिखी थी कि मानो इसमें बहुत ही गुप्त और रहस्य की बातें हैं। इस्लाम के एक सम्प्रदाय के लोग इसे अपना एक बड़ा धर्म-ग्रन्थ समझते हैं। बोजासफ़ और बलोहर की इस पुस्तक के कई अध्याय इस इख़वानुस सफ़ा में मिला लिए गए हैं। प्रायः तीस बरस हुए, बिहार के स्वर्गीय मौलवी अब्दुल गनी साहब वारिसी ने अरबी से बहुत ही सीधी और बढ़िया उर्दू में इसका अनुवाद किया था। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब इस पुस्तक का यह उर्दू अनुवाद छपा और वह मेरे प्रिय

अभिभावक के पास आया, तब मैं अरबी की साधारण पस्तकें पढ़ता था। मैंने अपने अभिभावक से इस पुस्तक के देखने की इच्छा प्रकट की। पर उन्होंने यह कह कर पुस्तक नहीं दी कि तुम इसे पढ़कर संसार से विरक्त हो जाओगे और लिखना पढ़ना छोड़ दोगे। उनकी यह बात सुनकर मेरी इच्छा और भी बढ़ गई और मैं उसे पाने के लिये "अपराध" तक करने को तैयार हो गया। रात को जब वे सो गए, तब मैं उनके टेबुल पर से चुपचाप वह पुस्तक उठा लाया। सवेरा होते होते मैंने उसे समाप्त कर दिया और फिर ले जाकर वहीं टेबुल पर रख दिया। उस दिन से आजतक मैं उस पुस्तक को संसार की उन बहुत थोड़ी और चुनी हुई पुस्तकों में समझता हूँ जो पापियों के हृदयों पर भी प्रभाव डालकर उनमें घर कर लेती हैं। उसमें कुछ ऐसे प्रभावशाली उदाहरण भी हैं, जो हमको आज ईसा मसीह के वचनों में मिलते हैं; और हम नहीं कह सकते कि ये मोती पहले किस समुद्र के तल से निकले हैं।

अन्त में हम उन दो मुसलमान विद्वानों के सम्बन्ध की भी कुछ बातें बतला देना चाहते हैं जो भारतवर्ष में सैर करने के विचार से नहीं बल्कि यहाँ की विद्याओं और गुणों की गंगा से लाभ उठाने के लिये आए थे और सफल मनोरथ होकर यहाँ से लौटे थे।

तनूखी

इनमें से पहला व्यक्ति शेख मुहम्मद बिन इस्माईल तनूखी है। सम्भवतः इसका समय हिजरी तीसरी शताब्दी (ईसवी नवीं शताब्दी) होगा। यह ज्योतिषशास्त्र का प्रसिद्ध पंडित था। यहाँ से यह अपने शास्त्र के बहुत से अद्भुत ज्ञान लेकर लौटा था[१]।

---

[१] तबकातुल् उमम; काजी साइद अन्दलसी; पृ० ४६ (बैरूत); अखबारुल् हुकमा; कफ्ती; पृ० ८४ (मिस्र)।

दुःख है कि इस विद्वान् के सम्बन्ध की कुछ विशेष बातों का पता नहीं चलता। यदि स्पेन का मुसलमान इतिहास-लेखक काजी साइद इसका उल्लेख न करता, तो शायद लोग इसका नाम भी न जान सकते।

बैरूनी

दूसरा विद्वान प्रसिद्ध पंडित और गणितज्ञ ख़्वारिज़्म (आधुनिक ख़ीवा) का रहनेवाला अबू रैहान बैरूनी है। इस विद्वान को भिन्न भिन्न जातियों के विचारों, धार्मिक विश्वासों और सिद्धान्तों आदि के जानने का बहुत शौक था। इस लिये इसकी बनाई हुई पुस्तकों में से शायद ही कोई ऐसी पुस्तक हो जिससे इसके इस शौक का पता न चलता हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में आने से पहले भी इसने भारतवर्ष और उसकी विद्याओं के सम्बन्ध में पुराने ग्रन्थकारों के द्वारा बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उसके समय तक अरबी विद्याएँ और मुसलमानों के विद्या विषयक अन्वेषण अपनी चरम सीमा तक पहुँच गए थे। इन लोगों ने हिन्दुओं, ईरानियों और यूनानियों से जो विद्याएँ सीखी थीं, उनकी इन्होंने बहुत अधिक उन्नति भी की थी। इन्होंने बहुत से भ्रमात्मक सिद्धान्तों के भ्रम दूर किए थे, और उनमें जो दोष इन्हें दिखाई दिए थे, वे भी इन्होंने निकाल दिए थे। बैरूनी को नई नई बातें जानने का बहुत शौक था, और केवल इसी शौक के कारण उसने भारतवर्ष की अनेक विद्याएँ सीखी थीं।

अभी स्पष्ट रूप से यह पता नहीं चलता कि वह भारतवर्ष में कब आया था और यहाँ कितने दिनों तक रहा था और कहाँ कहाँ घूमा था। हाँ, लोग यह जानते हैं कि वह सन् ४०८ हि० में ख़्वारिज़्म से ग़ज़नी आया था, और सन् ४२३ हि० में ग़ज़नी में ही उसने अपनी किताबुल् हिन्द नाम की पुस्तक पूरी की थी। इससे तीन वर्ष पहले

सन् ४२० हि० में सुलतान महमूद ग़ज़नवी की मृत्यु हो चुकी थी। अब ऐसा जान पड़ता है कि वह सन् ४०८ हि० से सन् ४२२ हि० तक अर्थात् प्रायः बारह तेरह बरस तक यहाँ रहा था। फ़ारसी में दुर्रतुल अख़बार नाम की एक पुस्तक है जिसमें विज्ञान और दर्शन का इतिहास है। यह पुस्तक अली बिन जैद बेहक़ी (मृत्यु सन् ५६५ हि०) की अरबी पुस्तक ततिम्मा सफ़वानुल् हिकमत का अनुवाद है। उस पुस्तक में लिखा है—"इसने (बैरूनी) भारत में चालीस बरस बिताए थे।" यदि यह समय ठीक हो[१] तो मानों इसने पहले पहल सन् ३८३ हि० में यहाँ पैर रखा था, और उस समय तक ग़ज़नवी वंश का अस्तित्व भी नहीं था। पर बैरूनी के जीवन की और घटनाओं के सनों से मिलान करने पर इसका इतना पहले भारत में आना ठीक नहीं जान पड़ता। यद्यपि भारत में इसने पंजाब और सिन्ध से आगे यात्रा नहीं की[२], पर किताबुल् हिन्द में इसने भारत का जो भूगोल दिया है, उसमें उसने पूरे भारत को नाप दिया है, और क़ानून मसऊदी नाम की दूसरी पुस्तक में, जो इसके थोड़े ही बरसों बाद लिखी थी, भारत के सभी बड़े बड़े नगरों के देशान्तर और अक्षांश दिए हैं।

जो, हो, भारत में वह उस समय आया था, जब इस देश में सुलतान महमूद की चढ़ाइयों के कारण हलचल मची हुई थी। पर ठीक उसी समय विद्या और गुण का यह दूसरा सुलतान बहुत ही

---

[१] यह पुस्तक फ़रवरी १९२९ ई० से लाहौर की ओरिएन्टल कालिज मैगज़ीन के परिशिष्ट रूप में प्रकाशित होने लगी है। मूल पुस्तक पर उसका नाम केवल "दरविलाद" लिखा है। पर सम्पादक ने उक्त "ततिम्मा" से लेकर इस नाम के बाद "हिन्द" शब्द बढ़ा दिया है।

[२] किताबुल् हिन्द ; पृ० ११ (लन्दन)।

शान्ति और सुख से अकेला विद्या-विषयक विजय प्राप्त करने में लगा हुआ था और इस राजनीतिक लड़ाई भिड़ाई और उपद्रव से मन ही मन कुढ़ रहा था।[१] जैसा कि डाक्टर ज़खाऊ ने लिखा है, उसने किताबुल् हिन्द लिखकर एक तो मुसलमानों को यह सौभाग्य प्रदान किया कि उनके धर्म के एक व्यक्ति ने ऐसी पुस्तक लिखी जिसने यूनानी राजदूतों और चीनी यात्रियों के भारत सम्बन्धी वर्णनों को पुराना और रद्दी कर दिया; और दूसरी ओर भारत पर यह एहसान किया कि उसकी पुरानी संस्कृति, पुरानी विद्याओं और पुराने विचारों को संसार में स्थायी रहने दिया। उस समय भारत को अपनी विद्याओं के सम्बन्ध में जो अभिमान था, उसके विषय में बैरूनी की एक बात याद रखने के योग्य है। वह लिखता है—"हिन्दुओं को अपने सिवा और लोगों का कुछ भी ज्ञान नहीं है। उनका यह पक्का विश्वास है कि हमारे देश के सिवा संसार में और कोई देश नहीं है और न कोई दूसरी जाति इस संसार में बसती है, और न हमारे सिवा और किसी के पास कोई विद्या है। यहाँ तक कि जब उनका ख़ुरासान या फ़ारस के किसी विद्वान का नाम बतलाया जाता है, तब वे उस नाम बतानेवाले को मूर्ख और अयोग्य समझते हैं।" फिर कहता है—"यदि ये लोग दूसरी जातियों से मिलें जुलें, तो उनका यह भ्रम दूर हो सकता है।" फिर कहता है—"पुराने समय के हिन्दू पंडित ऐसे नहीं थे। वे दूसरी जातियों से भी लाभ उठाने में कमी नहीं करते थे। वराह मिहिर कहता है कि यूनानी या यवन लोग चाहे अपवित्र और म्लेच्छ हों, पर फिर भी उनकी विद्या के कारण उनका आदर करना चाहिए।" आगे चलकर बैरूनी कहता है—"जब तक मैंने भारतवासियों की भाषा नहीं सीखी थी, तब तक तो

---

[१] बैरूनी की किताबुल् हिन्द की भूमिका।

मैं उनके सामने शिष्यों की तरह बैठता था। पर जब मैंने उनकी भाषा कुछ कुछ सीख ली और मैं उन्हें ज्योतिष् तथा गणित के नए नए सिद्धान्त और नई नई बातें बतलाने लगा, तब वे चकित हो गए और स्वयं मुझ से सीखने लगे और आश्चर्य से पूछने लगे कि तुम किस पंडित के शिष्य हो ? फिर जब मैं उनकी विद्या सम्बन्धी योग्यता की त्रुटियाँ दिखलाने लगा तब वे मुझे जादूगर और परोक्षदर्शी समझने लगे और मुझे "विद्यासागर" कहने लगा।"[1]

बैरूनी सब से बड़ा काम यह किया कि हिन्दुओं और मसलमानों के बीच विद्या विषयक दूत का काम किया। उसने अरबों और ईरानियों को हिन्दुओं की विद्याओं का ज्ञान कराया और हिन्दुओं को अरबों तथा ईरानियों के नए नए अन्वेषणों से परिचित कराया। उसने अरबी जाननेवालों के लिये संस्कृत से और संस्कृत जाननेवालों के लिये अरबी से पुस्तकों का अनुवाद किया, और इस प्रकार उसने वह ऋण चुकाया जो भारत का बहुत दिनों से अरबी भाषा की विद्याओं और विज्ञानों पर चला आता था। उसने भारत के सम्धन्ध में तीन प्रकार की पस्तकें लिखीं। एक अरबी से संस्कृत में दूसरी संस्कृत से अरबी में और तीसरी भारतीय विद्याओं और सिद्धान्तों की छान बीन और जाँच पड़ताल के सम्बन्ध में।

बैरूनी ने भारतवासियों के लिये जो पुस्तकें लिखीं, उनकी सूची इस प्रकार है—

(१) भारतवर्ष के ज्योतिषियों के प्रश्नों के उत्तर।

(२) काश्मीर के पंडितों के दस प्रश्नों के उत्तर और उनके सन्देहों का विवरण।

(३) इस्तरलाब या नक्षत्रयन्त्र पर एक निबन्ध।

---

[1] किताबुल् हिन्द ; पृ० १२।

(४) बतलीमूस की "मजस्ती" का अनुवाद ।

(५) उक्लैदिस या यूक्लिड की समस्याएँ ।

(६) गणित ज्योतिष् पर एक पुस्तक ।

इसने दूसरे प्रकार की जो पुस्तक अरबी जाननेवालों के लिये लिखी थीं, वे इस प्रकार हैं—

(१) किताबुल् हिन्द ; भारतवासियों के विश्वासों, विद्याओं और अन्वेषणों का संक्षिप्त वर्णन ।

(२) ब्रह्मगुप्त के पुस्तक का अरबी में अनुवाद ।

(३) ब्रह्मगुप्त के ब्रह्म (स्फुट) सिद्धान्त का अनुवाद ।

(४) चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण के सम्बन्ध में भारतीय अन्वेषणों का अनुवाद ।

(५) भारत की अंक विद्या की पुस्तक ।

(६) गणित सिखलाने के लिये भारत के चिह्नों का वर्णन ।

(७) भारतीय त्रैराशिक का अनुवाद ।

(८) सांख्य का अनुवाद ।

(९) पतंजलि का अनुवाद ।

(१०) वराह मिहिर की लघुजातक नामक पुस्तक का अनुवाद ।

(११) बसुदेव के फिर से संसार में आने के सम्बन्ध में एक निबन्ध । (इससे कदाचित् लेखक का अभिप्राय श्रीकृष्ण के अवतार से है ।) आदि आदि ।

तीसरे प्रकार की पुस्तकें ये हैं—

(१) सिद्धान्त आर्यभट और खंडाखंड आदि भारतीय ज्योतिष् की पुस्तकों को संस्कृत से अरबी में जो अनुवाद हुए थे, उन अनुवादों में अनुवाद को अथवा मूल में लेखकों से जो भूलें हुई थीं, एक पुस्तक में वे भूलें इसने ठीक की थीं ।

(२) सिद्धान्त पर पाँच सौ पृष्ठों की एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम "जवामि उल् मौजूद व खवातिरुल् हुनूद" है।

(३) एक निबन्ध इस विषय पर लिखा था कि भारत मे अंकों के लिखने की जो प्रथा है, उससे अरबी में अंक लिखने की प्रथ अधिक शुद्ध है।

(४) एक पुस्तक में भारत के ज्योतिष्सम्बन्धी सिद्धान्तों की भूलें सुधारी थीं। उसका नाम था "फिल् इरशाद इला तसहीहिल् मबादी अलल् नमूदारात।" कानून मसऊदी के पाँचवें प्रकरण में बैरूनी ने भारत के नीचे लिखे नगरों का अक्षांश और देशान्तर बतलाया है—लोहारो (लाहौर), ओस्तान (अवस्थान, जो काश्मीर का राज नगर था।) नेपाल (कहता है कि यह भारत और तिब्बत के बीच में एक रक्षित स्थान है।), वैहिन्द (यह सिन्ध की तराई में भारत का एक प्रसिद्ध नगर था।), स्यालकोट, मुलतान, तेज (बलोचिस्तान का बन्दरगाह), सोमनाथ, नहलवाला (नहरवाला), खम्भात, विहार, (मालवा) उज्जैन, भड़ौच (मध्य भारत में) कालिंजर, माहोरा (मथुरा), कन्नौज (कहता है कि कन्नौज का राज्य देश के मध्य भाग में है। यहाँ बड़े बड़े राजाओं की राजधानी थी। यह गंगा के पश्चिम है।), मारी (यह कन्नौज के राज्य की आजकल की राजधानी है।) ग्वालियर का किला, लोबरानी, देबल (सिन्ध का बन्दरगाह), खजुराहा, अयोध्या, बनारस (बनारस ; कहता है कि यह पवित्र नगर है और आजकल यहीं हिन्दुओं की सब विद्याओं का केन्द्र है।), लंका टापू, जमकोट, तंजौर, सिंहलद्वीप, मनकरी (महानगरी)।

भारत में बैरूनी ने एक और बहुत बड़ा काम यह किया था कि पृथ्वी की गति नापी थी। अरबों में मामूँ रशीद ने हिजरी तीसरी शताब्दी के आरम्भ में पृथ्वी की गति की नाप कराई थी। अब उस बात को दो सौ बरस बीत चुके थे। बैरूनी को इस प्रकार की बातों

की जाँच करने का बहुत शौक था। पर इस काम के लिये ख्वारिज्म या अफ़ग़ानिस्तान में उसको ऐसा मौके का मैदान नहीं मिला था। संयोग से भारत में उसको ऐसा मैदान मिल गया, जिसके एक ओर पहाड़ भी था। इस लिये उसने इसी मैदान में अपने हन्दसी (इंजीनियरी) के हिसाब से पृथ्वी के घेरे का हिसाब लगाया था।[1]

ज्योतिष् और आकाश के नक्षत्रों की विद्या के सम्बन्ध में मुसलमानों पर भारत और संस्कृत का जो ऋण था, वह ऋण उन्होंने अकबर और मुहम्मद शाह के समय में चुकाया था। "जीचअलगबेगी" नाम की एक पुस्तक थी, जिसमें वे सब बातें दी हुई थीं जो मुसलमानों ने आकाश के नक्षत्रों के सम्बन्ध में जाँच करके जानी थीं; और मरागा नामक स्थान में तैमूर वंश की जो वेधशाला थी, उसमें जिन नई बातों का पता लगा था, उनका भी उस पुस्तक में वर्णन था। अकबर ने उस पुस्तक का संस्कृत में अनुवाद कराया था।[2] फिर मुहम्मद शाह के समय में जब राजा जयसिंह ने दिल्ली, बनारस और जयपुर में वेधशालाएँ बनवाईं, तब अरबी की ज्योतिष् विद्या की अच्छी अच्छी पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद कराया था।[3]

गम्भीर खेल

विद्या और विज्ञान की ठोस पारिभाषिक बातें और विषयों के विवेचन सुनते सुनते शायद उपस्थित सज्जनों की तबीयत घबरा गई होगी; इस लिये अन्त में खेल की बिसात बिछाता हूँ, जिसमें थोड़ी

---

[1] कानून मसऊदी। इसकी हाथ की लिखी प्रति मैंने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय में देखी थी।

[2] आईन अकबरी।

[3] सबहतुल् मरजान फ़ी तारीखे हिन्दोस्तान; आज़ाद बिलग्रामी।

देर तक कहनेवाले और सुननेवाले दोनों का जी बहले। संसार में दो खेल बहुत प्रसिद्ध हैं—एक शतरंज और दूसरा चौसर। ये दोनों ही खेल भारतवासियों के दिमाग से निकले हैं। अरब लेखकों में से सब से बढ़कर याक़ूबी ने इस विषय पर लिखा है। उसने बतलाया है कि ये कोरे खेल ही नहीं हैं, बल्कि गणित और नक्षत्र विद्या के सूक्ष्म सिद्धान्तों पर इसका आधार है फिर उसने इन सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए बतलाया है कि यह बिसात वास्तव में समय के परिवर्त्तन का चित्र है। चौसर की बिसात, चौसर के चिह्नों और चौसर के खेल में आकाश की राशियों, ३६० दिनों, हर दिन के २४ घंटों, १२ घंटे के दिन और १२ घंटों की रात का पूरा चित्र है। शतरंज का आधार कुल ६४ घरों, फिर ३२, फिर १६, फिर ८ और फिर ४ घरों पर है। लेकिन गणित के इन दाँव-पेचों के सिवा इस बात पर बहुत ही कम विचार किया गया है कि ये दोनों खेल भारत की दो धार्मिक या दार्शनिक विचार-धाराओं (शाखाओं) की सूचक हैं। चौसर इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य सब प्रकार से विवश है और आकाश तथा नक्षत्रों के चक्कर जो कुछ चाहते हैं, वही उससे कराते हैं। संसार क्षेत्र में कोई आदमी स्वयं अपनी इच्छा और विचार से पैर नहीं उठाता, बल्कि वह कोई और ही है, जो उससे बलपूर्वक पैर उठवाता है। हमारा लाभ और हानि किसी दूसरे के हाथ में है। इसके विरुद्ध शतरंज इस बात का प्रमाण है कि संसार में जो कुछ होता है, वह मनुष्य अपने प्रयत्नों का ही फल है। उसकी हार और जीत, सफलता और विफलता, दोनों उसकी बुद्धि, विचार, समझ बूझ और दौड़ धूप पर निर्भर है। तात्पर्य यह कि संसार की जिन समस्याओं का और किसी प्रकार निर्णय नहीं हो सकता, ये दोनों खेल उन समस्याओं के विद्वत्तापूर्ण निर्णय हैं। यक़ूबी ने लिखा है कि पहले एक पंडित ने चौसर बनाकर एक राजा की भेंट की थी; और इसके

द्वारा भाग्य और मनुष्य की परवशता के सिद्धान्त की पुष्टि की थी। इसके बाद एक दूसरे पंडित ने शतरंज बनाकर राजा को भेंट की, जिससे यह सिद्ध होता था कि मनुष्य के हाथ में ही सब कुछ है; वह जो चाहे, वह कर सकता है। मतलब यह कि इन दोनों खेलों ने यह सिद्ध कर दिया कि जिस प्रकार मनुष्य अपने गम्भीर तर्कों और दार्शनिक विचारों की सहायता से भाग्य और पराक्रम के प्रश्न का निपटारा नहीं कर सका है, उसी प्रकार खेलों के तर्कों से भी वह प्रकृति के इस खेल का पता नहीं लगा सकता।

शतरंज का खेल निकालनेवाले ने राजा बारानी (इस सम्बन्ध के दो प्रवदा हैं) से जो पुरस्कार माँगा था वह भी हिसाब का एक बहुत ही विलक्षण खेल है। उसने यह पुरस्कार माँगा था कि शतरंज के पहले खाने या घर में गेहूँ का एक दाना रखा जाय, दूसरे में दो दाने रखे जायँ, तीसरे में चार और चौथे में आठ रखे जायँ; और इसी प्रकार हर खाने या घर में उससे पहले के घर के दानों से दूने दाने रखे जायँ; और इस प्रकार सब घर पूरे कर दिए जायँ। यों देखने में राजा को यह पुरस्कार बहुत साधारण जान पड़ा; पर जब इसका हिसाब लगाया गया, तब इतनी बड़ी रकम हो गई कि उतनी रकम देना राजा के बस का काम नहीं था। याक़ूबी और मसऊदी ने इसका पूरा हिसाब लगा कर बतलाया है।[1] यदि वह पूरा पूरा हिसाब यहाँ दिया जाय, तो यह खेल की बिसात गणित की पाठशाला हो जायगी।

ये दोनों खेल हिजरी पहली शताब्दी में ही ईरान से अरब पहुँच चुके थे; और इनमें से चौसर तो शायद इससे भी और पहले

---

[1] इसका पूरा वर्णन याक़ूबी के पहले खंड के पृ० ६८-१०५ में दिया है। साथ ही देखो मसऊदी; पहला खंड; पृ० १६० (लीडन)।

ही पहुँच चुकी थी; क्योंकि हदीसों में इसका नाम आया है। और इसके बाद दूसरी शताब्दी में शायद अब्बासी वंश के शासन के समय शतरंज का भी अरब में प्रचार हुआ था। इस सम्बन्ध में इस्लाम के बड़े बड़े विद्वानों की हिजरी दूसरी शताब्दी की सम्मितियाँ मिलती हैं। स्वयं शतरंज शब्द के सम्बन्ध में ईरानवालों का यह कहना है कि यह शब्द हमारे यहाँ का है और इसका मूल हश्तरंज है।[1] क्योंकि इसमें आठ खाने या घर होते हैं। पर यह ईरानियों की खुली ज़बरदस्ती है। शतरंज नाम भी भारतवासियों का ही रखा हुआ है। इसका मूल चतुरंग[2] (चार अंगोंवाला) है। फिर यद्यपि इसको मोहरों का नाम शाह (बादशाह), फ़रज़ीन (वज़ीर), और प्यादा आदि रखकर ईरानियों ने उसपर अधिकार कर लिया है, लेकिन फिर भी दो चीजें ऐसी बची हुई हैं जिनसे यह बात पूरी तरह से सिद्ध हो जाती है कि यह खेल भारत का ही है। ये दोनों चीजें हाथी और रुख हैं। हाथी तो खैर भारत का चिह्न ही है; पर रुख नाम की सवारी भी, जिसका संस्कृत रूप रथ है, भारत के बाहर नहीं मिल सकती। जाँच करनेवाले बड़े बड़े विद्वानों का कहना है कि चतुरंग के खेल का उल्लेख रामायण आदि में भी मिलता है।[3] ईरानियों के सिवा यूनानियों, रूमियों, मिस्रियों या यलियों आदि दूसरी पुरानी जातियों ने भी इस खेल पर अपना अधिकार जतलाया; पर जाँच के न्यायालय में भारत के सिवा और किसी का अधिकार नहीं माना

---

[1] याकूबी; पहला खंड; पृ० १०१ (लीडन)।

[2] सवाउस् सबील फी मारफतिल् मौलिद वहखील; प्रो० (अब डाक्टर) आर्नल्ड।

[3] देखो एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका; ६ठा खंड पृ० १०० "चेस" (Chess) शब्द।

गया।[1] साथ ही यह बात भी भूल नहीं जानी चाहिए कि चाहे पहले ईरान में इसका नाम हश्त-रंज रहा हो और चाहे भारत में चतुरंग रहा हो, पर अरबी ने इन्हीं अक्षरों को उलट फेरकर अपनी भाषा में जो नाम (शतरंज) रखा, वही नाम इस समय ईरान में भी है और भारत में भी।

---

[1] उक्त ग्रन्थ ; खंड और पृष्ठ।

धार्मिक सम्बन्ध

लेखक और ग्रन्थ जिनका आधार लिया गया है

इस विषय में जो बातें कही जायँगी, वे उन सब ग्रन्थों से तो ली ही गई हैं, जिनके नाम पहले आ चुके हैं; उनके सिवा नीचे लिखी और चार नई पुस्तकें भी हैं।

(१) हिजरी दूसरी शताब्दी में यहिया बिन खालिद बरमकी ने भारतवर्ष के सब धर्मों का एक विवरण तैयार कराया था, जिसे संक्षिप्त करके इब्न नदीम ने अपनी किताबुल् फ़ेहरिस्त में मिला लिया था। इस समय संसार में उसका यही संक्षिप्त रूप मिलता है।

(२) वैतुल् मुकद्दस अर्थात् जेरूसलम के एक अरब विद्वान्, दार्शनिक, व्याख्याता और इतिहास-लेखक मुतहहर बिन ताहिर मुकद्दसी (सन् ३३५ हि०) ने किताबुल्बदअ वत्तारीख नाम की एक बहुत अच्छी पुस्तक लिखी थी, जो उसके स्मारक स्वरूप है। यह पुस्तक सन् १८९९ ई० में पेरिस छः खंडों में प्रकाशित हुई थी। इसमें एक प्रकरण भारत के धर्मों के सम्बन्ध में भी है।

(३) तीसरी चीज़ अब्बुल् अब्बास ईरान शहरी की किताबु द्दयानात है, जिसकी मूल प्रति तो इस समय कहीं नहीं मिलती, पर जिसके उद्धरण बैरूनी की किताब उल् हिन्द में हैं। इसमें अधिकतर बौद्धों के सम्बन्ध की बातें थीं।

(४) इन सब से बढ़कर महत्त्व की पुस्तक अब्दुलकरीम शहरिस्तानी (सन् ४६९-५४९ हि०) की "मिलल व नहल" है, जो कई बार युरोप, मिस्र और बम्बई में छप चुकी है।

इनके सिवा अब्दुल काहर बग़दादी (सन् ४२९ हि०; १०३७ ई०) की मिस्र में छपी हुई "अल्फिरक बैनल् फिरक" (इस्लामी सम्प्रदायों

का इतिहास), और मुर्त्तजा जैदी की किताबुल् मोतजिला से, जिसे प्रो० आर्नल्ड ने हैदराबाद के दायरतुल् मआरफ़ से प्रकाशित कराया था, कई भिन्न भिन्न विषय लिए गए हैं।

अरब और तुर्क, अफ़ग़ान तथा मुग़ल विजेताओं में अन्तर

आगे बढ़ने से पहले एक बात की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना आवश्यक जान पड़ता है। भारत में जो तुर्क, अफ़ग़ान और मुग़ल विजेता आए, वे सब मुसलमान थे ; इस लिये उनकी सभी कार्र-वाइयों का ज़िम्मेदार इस्लाम समझा जाता है। पर हमें सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो तुर्क विजेता भारत में आए थे, उनके कुछ ख़ास अफ़सरों या पदाधिकारियों को छोड़कर और लोग जाति की सामूहिक दृष्टि से इस्लाम के प्रतिनिधि नहीं थे और न उनके राजकीय सिद्धान्तों का इस्लाम की शासन-प्रणाली या शासन सिद्धान्तों के साथ कोई सम्बन्ध था। उनके अधिकतर तुर्क पदाधिकारी नए बनाए हुए मुसलमान दास थे, जो इस्लाम के शान्ति और युद्ध के नियम शायद जानते भी नहीं थे।

जिस देश में आकर ग़ज़नवी वंश का राज्य स्थापित हुआ था, वह देश इस्लामी राज्य की सीमाओं का सब से आख़िरी कोना था। वहाँ इस्लाम ने अभी अच्छी तरह पैर भी नहीं जमाया था। सुल्तान मह-मूद की सेना में जो सिपाही भरती होकर आए थे, वे ग़ज़नी, ख़िलजी, तुर्कों और अफ़ग़ानों के भिन्न भिन्न वंशों या दलों के थे। उसकी सेना में कुछ हिन्दू भी मिले हुए थे।[१] तुर्क कबीलों की यह दशा थी कि वे प्रायः मुसलमान नहीं थे। वे दासों के रूप में हज़ारों का

[१] कामिल इब्न असीर ; नवाँ खंड ; पृ० १३४ (बरेल, लीडन, सन् १८६२ ई०)

संख्या में बिकते थे और बादशाह या अमीर लोग उनको मोल लेकर और मुसलमान बनाकर सेना में भरती करते थे। अथवा वे लोग आप लूट मार करने की इच्छा से मध्य एशिया से निकलकर इस्लामी देशों में चले आते थे, मुसलमान होकर भिन्न भिन्न बादशाहों या अमीरों की सेना में भरती होते थे और आगे चलकर सेना में बड़े बड़े पद पाते थे, यहाँ तक कि बादशाह भी बन जाते थे। अलप्तगीन और सुबक्तगीन, जिन्होंने इस ग़ज़नवी राज्य की जड़ जमाई थी, इसी प्रकार के तुर्क दास थे। सुलतान ग़ोरी के उत्तराधिकारी अल्तमश आदि भी थे। इसके कुछ ही बरसों के बाद जिन सलजूकी तुर्कों ने विशाल सलजूकी राज्य स्थापित किया था, वे इसी समय में इस्लामी देश में आकर मुसलमान हुए थे। सुलतान महमूद की सेना की भी यही दशा थी। तुर्किस्तान और ट्रान्स-काकेशिया के तुर्क रजाकार[1] आकर उसकी सेना में मिल गए थे, जिनमें से अधिक लोग प्रायः उसी समय मुसलमान हुए थे।[2]

मुग़ल उस समय तक मुसलमान ही नहीं हुए थे। वे हिजरी सातवीं शताब्दी तक काफ़िर समझे जाते थे। अलाउद्दीन ख़िलजी (मृत्यु सन ७१६ हि०) के समय तक सेना में मुग़ल लोग मुसलमान बनाकर नौकर रखे जाते थे। अलाउद्दीन ख़िलजी की आज्ञा से एक बार एक ही समय में चौदह पन्द्रह हज़ार नए बनाए हुए मुसलमान सिपाही मारे गए थे।[3]

यद्यपि अफ़ग़ानों के बड़े बड़े नगरों में इस्लाम फैल गया था, पर स्वयं अफ़ग़ान अभीतक मुसलमान नहीं हुए थे और वे काफिर ही समझे

---

[1] तारीख फ़रिश्ता ; पहला खंड; पृ० २९-३२ (नवलकिशोर प्रेस)

[2] उक्त ग्रन्थ और खंड ; पृ० २४ (नवलकिशोर)

[3] उक्त ग्रन्थ और खंड; पृ० १२० (नवलकिशोर)

जाते थे।[१] यद्यपि खास काबुल का बादशाह हिजरी तीसरी शताब्दी के आरम्भ में अर्थात् ग़ज़नवियों से सौ बरस पहले मुसलमान हुआ था,[२] लेकिन अफ़ग़ानों के प्रायः कबीले या दल महमूद ग़ज़नवी के ही समय में मुसलमान होने लगे थे।[३]

इनके सिवा ग़ोरी कबीले हिजरी चौथी शताब्दी के मध्य तक, अर्थात् ग़ज़नवियों की उत्पत्ति के बाद तक, मुसलमान नहीं हुए थे।[४] और सुलतान महमूद से पहले उस समय तक उन प्रान्तों में न तो इस्लामी पाठशालाएं थीं न इस्लामी शिक्षाओं का प्रचार हुआ था और न मुसलमान विद्वान फैले थे। इन्हीं सब कारणों से उन जातियों के उस समय के रंग ढंग, युद्ध सम्बन्धी सिद्धान्तों और शासन-प्रणाली को इस्लामी नहीं कहा जा सकता।

इसके विरुद्ध जो अरब विजेता एक सौ बरस के अन्दर ही अन्दर एक ओर शाम की सीमा पार कर के मिस्र और उत्तरी अफ्रिक़ा के रास्ते स्पेन तक पहुँच चुके थे और दूसरी ओर इराक़ के रास्ते से ख़ुरासान तक और ईरान तथा तुर्किस्तान पार कर के एक ओर काशग़र और दूसरी ओर सिन्ध तक जीत चुके थे, ऐसे लोग थे जिनमें इस्लाम की शिक्षाओं का पूरा पूरा प्रचार था। युद्ध के सम्बन्ध में इस्लाम के जो नियम थे, उनका वे पूरा पूरा पालन करते थे। कहीं कहीं अफ़सरों में कुछ ऐसे वृद्ध भी थे जो इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद साहब के साथ

---

[१] कामिल इब्न असीर; नवाँ खंड; पृ० २१८।

[२] फुतूहुल् बुल्दान; बिलाज़ुरी; पृ० ४०२ (लीडन)।

[३] कामिल इब्न असीर; नवाँ खंड; पृ० २१८ (लीडन)।

[४] इब्न हौकल का यात्रा-विवरण; पृ० ३६३। कामिल इब्न असीर; नवाँ खंड पृ० १२६; (लीडन) और तारीख बैहक़ी; पृ० १२७ (कलकत्ते से प्रकाशित)।

भी रह चुके थे; और ऐसे तो बहुत से लोग थे जिन्होंने उनके समय में होने का सौभाग्य प्राप्त किया था। इस लिये उन लोगों का आचार व्यवहार और शासन की प्रणाली तथा सिद्धान्त ख़ैबर से आनेवाली जातियों के सिद्धान्तों आदि से बिलकुल अलग थे।

सन् ९३ हि० में क़ुतैबा ने समरकन्द जीता था। उस समय उसके आस पास के प्रान्तों के रहनेवाले लोग बौद्ध थे। कतीबा ने किसी कारण से (कदाचित् आर्थिक कठिनता के कारण) विवश होकर उन बौद्धों की मूर्त्तियों को जलाकर उनसे सोना और चाँदी निकालना आवश्यक समझा। पर इसके लिये उसने उन मूर्त्तियों को ज़बरदस्ती तोड़कर जला नहीं दिया, बल्कि सफ़ाई के साथ सन्धि की शर्त्तों में एक शर्त्त यह भी रख ली थी कि उन मूर्त्तियों पर मुसलमानों का अधिकार हो जायगा और वे उसे जिस प्रकार चाहेंगे, काम में ला सकेंगे। दूसरे पत्त ने यह बात मान भी ली थी। पर जब मूर्त्तियों को जलाने का समय आया, तब तुर्क बादशाह ने कहा कि मुझ पर आपका उपकार है; इस लिये मैं पहले से ही आपको सचेत कर देना चाहता हूँ कि आप इन मूर्त्तियों को न जलावें। क्योंकि इनमें से कुछ मूर्त्तियां ऐसी है जो यदि जलाई जायँगी, तो अवश्य ही आपका नाश हो जायगा। क़ुतैब ने कहा कि यदि ऐसा है, तो मैं इन्हें स्वयं अपने हाथ से जलाऊँगा इसके बाद उसने आप ही अपने हाथ से उन मूर्त्तियों में आग लगाई और जब उसका कोई बुरा फल नहीं हुआ, तब बहुत से तुर्कों क मूर्त्ति-पूजा पर से विश्वास हट गया और वे मुसलमान हो गए।[१]

---

[१] इस ऐतिहासिक घटना का विस्तृत वर्णन तारीख तबरी, खंड ८ पृ० १२४६ (लीडन) और कामिल इब्न असीर, खंड ४, पृ० ४० (लीडन) में है। और आख़िर का अंश फुतूहुल् बुल्दान, बिलाज़ु (लीडन) पृ० ४२१ में है।

युद्ध में संयोग से जो कुछ विशेष घटनाएँ हो जाती हैं या अवसर आ जाते हैं, उनको छोड़कर अबूबक्र, उमर, उस्मान और अली इन खलीफ़ाओं और मुहम्मद साहब के साथियों के समय में जिन लोगों से कोई समझौता या सन्धि हुई, उनके उपासना-मन्दिरों को कभी अरबों ने ठेस भी न लगने दी। ईरान के अग्निमन्दिर उसी प्रकार प्रज्वलित रहे। पैलेस्टाइन, शाम, मिस्र और इराक़ के मन्दिर, जो मूर्त्तियों से पटे पड़े थे, उसी प्रकार शंखों की ध्वनियों से गूँजते रहे, यद्यपि ये नए बनाए हुए मुसलमान तुर्क विजेता उनसे अधिक दीन इस्लाम के जोशीले ग़ाज़ी और शरअ के सच्चे माननेवाले नहीं थे और न हो सकते थे।

मुसलमानों को छोड़कर यदि दूसरी जातियों से अरब लोग जज़िया लेते थे, तो उसके सिवा वे उनसे केवल उपज पर खिराज या राजकर ही लेते थे। इन दोनों करो के सिवा वे उन लोगों से और कोई कर या महसूल नहीं लेते थे। पर तुर्क, अफ़ग़ान और मुग़ल लोग अपनी धार्मिकता के आवेश में आकर मुसलमानों के सिवा दूसरी प्रजा से जो जज़िया वसूल करते थे, उसके साथ ही वे और तरह के उससे दसगुने महसूल या कर अपनी मुसलमान और ग़ैर-मुसलमान प्रजा से लेते थे। पर इस्लाम के शासन-सिद्धान्तों में, जिसे अरब लोग बराबर मानते रहे और जिनपर वे बहुत दिनों तक चलते रहे, केवल दो ही प्रकार के महसूल या कर थे। मुसलमानों से जकात (सम्पत्ति का कुछ अंश) और अश्र (पैदावार का दसवाँ भाग) और ग़ैर-मुसलमानों से जज़िया और ख़िराज।

वास्तविक बात यह है कि इस्लाम ने संसार की समस्त जातियों को चार भागों में बाँटा था (१) मुसलमान (२) अहले किताब या धार्मिक ग्रन्थोंवाले; अर्थात् वे लोग जो किसी ईश्वरीय धार्मिक शिक्षा या सम्प्रदाय के माननेवाले हैं, जिसका उल्लेख कुरान में है।

(३) अहले किताब मुशाबह (अहले किताब के तुल्य) ऐसी जातियां जो यह कहती तो हैं कि हम किसी 'ईश्वरीय धार्मिक शिक्षा के अनुसार चलती हैं, पर जिनका कुरान में नाम नहीं आया है। इस लिये वे जातियाँ निश्चित रूप से अहले किताब तो नहीं मानी जा सकतीं, पर उनके सम्बन्ध में इस प्रकार का अनुमान अवश्य होता है। और (४) कुफ्फार या वह जातियाँ जो किसी ईश्वरीय धार्मिक शिक्षा के अनुसार नहीं चलतीं। इस्लाम ने अपने इस्लामी शासन में बिना जाति और देश का विचार किए समस्त मुसलमानों के समान अधिकार माने हैं। अहले किताब के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि जज़िया चुकाने के बाद उन्हें मुसलमानों के सब प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं। उनका ज़बह किया हुआ जानवर खाया जा सकता है; उनकी लड़कियों से मुसलमान लोग निकाह कर सकते हैं; और उनके जीवन, धन, सम्पत्ति, धर्म और मन्दिरों आदि की रक्षा का राज्य जिम्मेदार होता है। तीसरे वर्ग अर्थात् अहल किताब के तुल्य लोगों को भी सब प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं; और वे केवल अहले किताब के समान ही नहीं बल्कि स्वयं मुसलमानों के भी समान होते हैं। उनके सम्बन्ध में केवल यही बन्धन है कि मुसलमान उनका ज़बह किया हुआ जानवर नहीं खायँगे और न उनकी लड़कियों से निकाह कर सकेंगे। जब किसी दूसरी जाति पर इस्लाम का राज्य स्थापित हो, तब इस आधार पर सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि यह देखा जाय कि वह जाति इन चार विभागों से किस विभाग में आती है। पर दुःख है कि खैबरवाली जातियाँ अन्त तक इस बात का निर्णय न कर सकीं। एक ओर तो ये लोग हिन्दुओं से जज़िया लेने के लिये आग्रह करते थे, जो केवल अहले किताब या कुरान में लिखी हुई जातियों और उनके तुल्य तीसरे वर्ग की जातियों से लिया जा सकता था; और दूसरी ओर वे उनके मन्दिरों और धार्मिक अधिकारों

की रक्षा का वचन नहीं देते थे, जज़िया लेने के बाद जिसका वचन देना और जिसकी रक्षा का भार लेना आवश्यक हो जाता था। यहाँ तक कि सुलतान अलाउद्दीन ख़िलजी (सन् ६९६ हि०) के समय तक भी इस बात का निर्णय नहीं हो सका था कि हिन्दुओं की गिनती ऊपर के चार विभागों में से किस विभाग में की जाय।[१] और यह सारी दुर्दशा इसी प्रकार की दो-रुखी कार्रवाई के कारण होती थी। पर अरब लोगों ने ज्योंही सिन्ध में पैर रखा, त्योंही इस बात का तुरन्त निर्णय कर दिया कि इस्लामी राज्य में हिन्दुओं का स्थान इन चारों विभागों में से किस विभाग में है।

अरब विजेता हिन्दुओं को अहले-किताब के तुल्य समझते थे।

सिन्ध को जीतता हुआ जब अरब सेनापति मुहम्मद बिन क़ासिम सिन्ध के प्रसिद्ध नगर अलरोर (अलोर) में पहुँचा, तब नगर-निवासियों ने कई महीनों तक चढ़ाई करनेवालों का बहुत ज़ोरों से सामन किया। पर पीछे से मेल कर लिया और उसमें दो शर्तें सामने रखीं। एक तो यह कि नगर के किसी आदमी की हत्या न की जाय; और दूसरी यह कि हमारे मन्दिरों पर किसी प्रकार की विपत्ति न आने पावे। मुहम्मद बिन क़ासिम ने जब इन शर्त्तों को मंज़ूर किया, तब जो शब्द लिखे थे, उनका आशय इस प्रकार है—

"भारतवर्ष के मन्दिर भी ईसाइयों और यहूदियों के उपासना-मन्दिरों और मजूसों या अग्निपूजकों के अग्निमन्दिरों के ही समान हैं।"

---

[१] तारीख़ फ़ीरोज़शाही ; जियाए बरनी ; पृ० २६०-६१ (कलकत्ता) और तारीख़ फ़रिश्ता ; पृ० ११० (नवलकिशोर)।

सिन्ध के सब से पुराने अरबी इतिहास के फ़ारसी अनुवाद चचनामे में यह घटना इस प्रकार लिखी गई है—

"मुहम्मद बिन क़ासिम ने बरहमनाबाद (सिन्ध) के लोगों की प्रार्थना मान ली और उनको आज्ञा दी कि वे सिन्ध के इस इस्लामी राज्य में उसी हैसियत में रहें, जिस हैसियत में इराक़ और शाम के यहूदी, ईसाई और पारसी रहते हैं।"[1]

इस प्रकार एक अरब विजेता ने स्पष्ट रूप से इस बात की घोषणा कर दी थी कि हिन्दुओं को मुसलमानों के राज्य में वही अधिकार प्राप्त हैं, जो इस्लामी क़ानून के अनुसार प्रायः किसी स्वर्गीय धार्मिक शिक्षा के अनुयायी लोग या अहले-किताब को प्राप्त हैं। उसने उनके मन्दिरों को भी वही स्थान दिया था, जो इस प्रकार के अहले-किताब या उनके तुल्य जातियों के मन्दिरों या उपासनागृहों को इस्लाम के क़ानून के अनुसार प्राप्त है। सिन्ध की विजयों के इतिहासों से पता चलता है कि अरब विजेताओं ने अपनी शर्तों का पूरा पूरा ध्यान रखा था। बौद्ध धर्म के एक अनुयायी ने एक अवसर पर एक हिन्दू राजा को परामर्श दिया था—

"हम भली भाँति जानते हैं कि मुहम्मद क़ासिम के पास हज्जाज का इस आशय का आज्ञापत्र है कि जो शरण माँगे उसको शरण दो। इस लिये हमको विश्वास है कि आप यह उचित समझेंगे कि हम उससे सन्धि कर लें; क्योंकि अरब लोग ईमानदार हैं और एक बार जो कुछ निश्चय कर लेते हैं, उसका सदा पालन करते हैं।"[2]

सिन्ध का पहला स्थान देबल का बन्दरगाह था, जिसपर अरबों ने आक्रमण किया। वहाँ का सबसे ऊँचा भवन बौद्धों का मन्दिर

---

[1] चचनामा; ईलियट; पहला खंड; पृ० १८६।

[2] चचनामा; ईलियट; पहला खंड; पृ० १५६।

था। मुहम्मद क़ासिम ने किलेवालों को नगर का फाटक खोलने पर विवश करने के लिये मन्दिर के सबसे ऊँचे कँगूरे पर, जो बाहर से दिखलाई पड़ता था, तोप का गोला फेंका। पर जब नगर का फाटक खुल गया, तब उसने वह मन्दिर नष्ट नहीं किया। यहाँ तक कि बौद्धों के नष्ट हो जाने के बाद भी हिजरी तीसरी शताब्दी तक यह मन्दिर बचा था। खलीफ़ा मोतसिम (सन् २१८-२७ हि०) के समय में इसका एक भाग जेलख़ाने के काम में लाया गया था।[1] मुहम्मद कासिम ने स्वयं इस नगर में अपनी अलग मसजिद बनवाई थी।[2] इसी प्रकार जब उसने नैरूँ भी जीत लिया, तब वहाँ भी मन्दिर के सामने अपनी अलग मसजिद बनवाई।[3]

मुलतान का मन्दिर

इसी प्रकार मुलतान का विशाल मन्दिर भी, नगर पर अरबों का अधिकार हो जाने के बाद भी बल्कि अरबों के तीन सौ बरसों के शासन काल में भी, ज्यों का त्यों बना रहा और तीन शताब्दियों तक बराबर अरब यात्री उसे देखने के लिये बहुत शौक से जाते थे। जिस अन्तिम व्यक्ति ने इसका वर्णन किया है (बुशारी) वह सन् ३७५ हि० के लगभग इसे देख गया है। अरबवालों ने इस मन्दिर से राजनीतिक और आर्थिक दोनों प्रकार के लाभ उठाए। राजनीतिक लाभ तो यह उठाया कि जब कोई राजा मुलतान पर चढ़ाई करने की तैयारी करता था, तब अरब अमीर उसको यह कहकर डरा देता था कि यदि तुमने इधर आने का विचार किया, तो हम यह मन्दिर मिट्टी में मिला

---

[1] बिलाज़ुरी ; पृ० ४३७।

[2] उक्त ग्रन्थ और पृ०।

[3] चचनामा ; इलियट ; पृ० १२८।

देंगे। यह सुनकर चढ़ाई करनेवाले लोग रुक जाते थे। और आर्थिक लाभ यह उठाया कि सारे भारत से लोग इस मन्दिर में दर्शन करने के लिये आते थे; और यहाँ आकर दक्षिणा और भेंट आदि चढ़ाते थे। अरब अमीर वह धन अपने ख़ज़ाने में रख लेते थे और उसीसे इस मन्दिर के सब ख़र्च चलाते थे और पुजारियों के वेतन आदि चुकाते थे।[1]

अरब यात्रियों ने मुलतान के इस मन्दिर का पूरा पूरा वर्णन किया है। इस मन्दिर में बहुत अधिक चाँदी और सोना था। लोग दो दो सौ अशर्फ़ियों का अगर यहाँ जलाने के लिये भेजते थे; और वह अगर पुजारी लोग अरब व्यापारियों के हाथ बेच डालते थे।[2] इस मन्दिर की मूर्त्ति भी बहुत अधिक बहुमूल्य थी। उसकी दोनों आँखों की जगह पर बहुमूल्य रत्न जड़े थे और सिर पर सोने का मुकुट था।[3] तात्पर्य यह कि प्रायः सन् ३७५ हि० तक अरब अमीरों के शासनकाल में यह मन्दिर ज्यों का त्यों बचा था, बल्कि पूरी रौनक पर था। पर जब अबू रैहान बैरूनी सन् ४०० हि० के बाद यहाँ आया तब उसने देखा कि इस मन्दिर के स्थान पर जामा मसजिद बनी हुई है। इस परिवर्त्तन का कारण उसने यह लिखा है—

"जब मुहम्मद बिन क़ासिम ने मुलतान जीत लिया, तब उसने देखा कि इस नगर की इतनी बसती और धन सम्पत्ति का कारण यही मन्दिर है। इस लिये उसने उस मन्दिर को ज्यों का त्यों छोड़ दिया

---

[1] इस्तख़री के आधार पर मुअजमुल् बुल्दान; याक़ूत; आठवाँ खंड; पृ० २०१ (मिस्र)।

[2] अबूज़ैद सैराफ़ी का सफ़रनामा (यात्रा-विवरण); पृ० १३०।

[3] सफ़रनामा बुशारी मुक़द्दसी जो अहसनुत् तकासीम के नाम से प्रसिद्ध है। पृ० ४८३ (लीडन)।

और उसकी मूर्त्ति के गले में गौ की हड्डी बाँधकर[1] मानो अपनी ओर से इस बात का प्रमाण दे दिया कि मैंने यह मूर्त्ति और मन्दिर किसी श्रद्धा या धार्मिक विश्वास के कारण नहीं छोड़ रखा है। उसने मुसलमानों के लिये अलग जामा मस्जिद बनवाई। फिर जब मुलतान पर क़रमती (शीआ मुसलमानों का एक मार्गच्युत सम्प्रदाय) लोगों का अधिकार हुआ, तब जल्म बिन शैबान ने यह मन्दिर तोड़ दिया और पुजारियों को मार डाला। इसकी इमारत को, जो ईंट की थी और ऊँची जगह पर थी, जामा मसजिद बना दिया; और पहली (मुहम्मद बिन क़ासिमवाली) जामा मसजिद में इस लिये ताला लगा दिया कि वह उसके विरोधी सम्प्रदाय उमैयावालों की बनवाई हुई थी और उससे इन लोगों की भारी शत्रुता थी। फिर जब सुलतान महमूद ने मुलतान जीत कर क़रमतियों को नष्ट कर दिया, तब इस जामा मसजिद को बन्द कर के फिर असली मुहम्मद बिन क़ासिमवाली जामा मसजिद खुलवा दी; और अब उस मन्दिर की जगह खाली मैदान है।"[2]

इस सम्बन्ध में बिलाज़ुरी ने, जो हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त में था, एक विलक्षण बात यह लिखी है कि लोग इस मूर्त्ति को हज़रत अयूब की मूर्त्ति समझते थे (पृ० ४४)।

अधिकार और सम्मान

सिन्ध के जीते जाने के बाद कुछ ब्राह्मण मिलकर मुहम्मद बिन क़ासिम के पास गए थे। मुहम्मद क़ासिम ने उन लोगों का अच्छा

---

[1] सिन्ध की विजयों के सम्बन्ध में जितनी पुस्तकें हैं, उनमें से किसी में इस घटना का उल्लेख नहीं है। न जाने बैरूनी ने यह घटना कहाँ से ली है।

[2] किताबुल् हिन्द; बैरूनी; पृ० ५६।

आदर किया। ब्राह्मणों ने उससे यह कहा कि हिन्दुओं में जैसा दस्तूर है, हमारी जाति का स्थान और सब जातियों से ऊँचा रखा जाय। जाँच करने के बाद मुहम्मद क़ासिम ने इन लोगों की यह बात मान ली और इनको राज्य के सब पदों पर स्थान दिया। ब्राह्मणों ने इसके लिये बहुत धन्यवाद दिया; और गाँव गाँव घूमकर अपने हाकिमों के गुण गाए; और उन्हें जो अधिकार मिले थे, उनके लिये सब जगह उनकी बहुत प्रशंसा की।[१]

जज़िया

अरब अमीर ने सब जगह इस बात की घोषणा कर दी थी कि जो चाहे, मुसलमान हो कर हमारा भाई बन जाय; और जो चाहे, वह जज़िया देकर अपने धर्म का पालन करे। इस प्रकार कुछ लोग तो मुसलमान हो गए और कुछ अपने पुराने धर्म पर चलते रहे।

चचनामा में लिखा है—

"उनमें से जो लोग मुसलमान हो गए थे वे गुलामी और जज़िया आदि से बचे रहे। पर जो लोग अपने धर्म पर बने रहे, उनके तीन विभाग किए गए। पहले विभाग के अर्थात् धनवान लोग से ४८ दिरम, दूसरे विभाग के या साधारण लोगों से २४ दिरम और तीसरे विभाग के या ग़रीब लोगों से १२ दिरम लिए गए। जो लोग मुसलमान हो गए, उनके लिए यह कर माफ़ कर दिया गया; और जो लोग अपने बाप दादा के धर्म पर बने रहे, उन्होंने जज़िया दिया। पर फिर भी उनकी ज़मीन जायदाद उनसे नहीं ली गई और वह सब ज्यों की त्यों उन्हीं के पास रहने दी गई।"[२]

---

[१] चचनामा; ईलियट; पृ० १८२-८४।

[२] चचनामा; ईलियट; पृ० १८२।

आजकल के हिसाब से एक दिरम अधिक से अधिक साढ़े तीन आने के बराबर होता है। इस लिये धनवानों से यह कर दस रुपये, साधारण लोगों से पाँच रुपये और ग़रीबों से ढाई रुपये साल के हिसाब से लिया गया होगा; और इस्लाम में इस सम्बन्ध में जो नियम है, उसके अनुसार स्त्रियाँ, बच्चे, बुड्ढे, राजकर्मचारी, पुजारी और शरीर से असमर्थ और न कमानेवाले लोग इस कर से बचे रहे होंगे। और मुसलमानों से जज़िया के बदले ढाई रुपए सैकड़े जकात ली जाती होगी। इसके सिवा ज़मीन की उपज में से मुसलमानों से उसका दसवाँ भाग और दूसरे धर्मवालों से निश्चित ख़िराज या लगान लिया जाता होगा। बस इन दोनों करों के सिवा अरबवालों के राज्य में और कोई कर नहीं था।

हिन्दू और मस्जिद

अरबों के इस अच्छे व्यवहार का हिन्दुओं पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। जब हिजरी दूसरी शताब्दी में एक स्थान पर से अरबों का राज्य हट गया और फिर उसपर हिन्दुओं का अधिकार हो गया, तब उन्होंने मुसलमानों की मसजिद को नहीं छेड़ा। मुसलमान उसमें नित्य नमाज़ पढ़ते थे और जुमे या शुक्र के दिन नियम के अनुसार अपने ख़लीफ़ा का नाम लेते थे।[१]

इसके सिवा हिजरी चौथी शताब्दी के अरब यात्री इस्तख़री और इब्न हौकल लिखते हैं कि खम्भायत से चैमूर तक के इलाके हैं जो भिन्न भिन्न राजाओं के राज्य में, पर हर नगर में और हर जगह मुसलमान बसे हुए हैं और उनकी मसजिदें हैं, जहाँ वे लोग इकट्ठे होकर नमाज़ पढ़ते हैं। हिन्दू राजाओं के शासनकाल में खम्भात

[१] फ़ुतूहुल् बुल्दान; बिलाज़ुरी; पृ० ४४६; (लीडन)

नगर की जामा मसजिद के टूटने और फिर से बनने का मनोरंजक वर्णन आगे किया जायगा।

हिन्दू धर्म की जाँच

आपस के इस मेल जोल का यह फल हुआ कि अरबों को इस बात की जाँच पड़ताल का शौक होने लगा कि हिन्दू धर्म में क्या क्या बातें हैं। इस लिये यहिया बरमकी ने, जो सन् १७० से १९० हि० तक मन्त्री था, एक आदमी को विशेष रूप से इस लिये भारत भेजा कि वह यहाँ की दवाओं और यहाँ के धर्मों का हाल लिखकर ले जाय। उस समय बग़दाद की यह अवस्था थी कि वह सभी धर्मों और विश्वासों का अखाड़ा बना हुआ था। अब्बासी वंश के ख़लीफ़ाओं और कुछ दर्शन-प्रेमी अमीरों के दरबारों में बराबर धार्मिक जलसे और शास्त्रार्थ हुआ करते थे। कुछ दिन और समय निश्चित होते थे, जिनमें इस प्रकार के जलसे होते थे; और हर एक धर्मवाले को इस बात का अधिकार होता था कि वह अपने धर्म के पक्ष की बातें सब लोगों के सामने कहे, इस्लाम पर आपत्तियाँ करे और उनके उत्तर सुने। इन जलसों और शास्त्रार्थों में मुसलमान लोग सब से आगे रहते थे और बरामका का वंश विशेष रूप से उन लोगों का संरक्षण करता था। सम्भव है कि इसी लिये भारतवर्ष के धर्मों के सम्बन्ध में भी जानकारी रखने की आवश्यकता हुई हो।

जो आदमी इस काम के लिये हिन्दुस्तान भेजा गया था, उसने जो कुछ हाल लिखा था, वह इस समय ज्यों का त्यों नहीं मिलता। पर इब्न नदीम ने, जिसने अपनी पुस्तक इस घटना के ७०-८० बरस बाद लिखी थी, एक ऐसे लेख का वर्णन किया है, जो प्रसिद्ध अरब दार्शनिक याकूब बिन इसहाक़ किन्दी के हाथ का लिखा हुआ था और जिसपर सन् २४९ हि० की तारीख़ पड़ी हुई थी। उस लेख में यह

समाचार लिखा हुआ था कि यहिया बरमकी ने एक आदमी को भारत के धर्मों की जाँच करने और उनका हाल जानने के लिये वहाँ भेजा था। उसका शीर्षक था—"भारत के धर्म और धार्मिक विश्वास।" उसके नीचे संक्षेप में इस सम्बन्ध की कुछ बातें लिखी हुई थीं। इससे अनुमान होता है कि यह उसी आदमी के लिखे हुए हाल का संक्षेप है।

उस लेख में सब से पहले गुजरात के राजा बल्लभराय की राजधानी महानगर के मन्दिर का हाल लिखा है। कहा है कि इसमें सोने, चाँदी, लोहे, पीतल, हाथीदाँत और सब प्रकार के बहुमूल्य पत्थरों और रत्नों की बीस हज़ार मूर्त्तियाँ हैं। इसके सिवा सोने की एक मूर्त्ति है जो बारह हाथ ऊँची है और जो सोने के सिंहासन पर बैठी हुई है। यह सिंहासन गुम्बद के आकार के सोने के एक कमरे में है। यह कमरा सफ़ेद मोतियों और लाल, हरे, पीले और नीले रंग के रत्नों से जड़ा हुआ है। साल में एक बार इसका मेला होता है, राजा स्वयं वहाँ पैदल जाता और आता है। उसके आगे साल में एक दिन बलि दी जाती है और लोग उसपर अपने प्राण भी निछावर करते हैं—अपने आपको भी बलि चढ़ाते हैं। इसके बाद मूलस्तान (मुलतान) की मूर्त्ति का वर्णन है और फिर दूसरी मूर्त्तियों का हाल लिखा है। फिर भारत के कुछ सम्प्रदायों और उनकी मूर्त्तियों का वर्णन है।

(१) सब से पहले सम्प्रदाय का नाम "महाकालिया" बतलाया है, जो महाकाली को पूजते हैं। महाकाली के चार हाथ होते हैं, नीला रंग होता है, सिर पर बाल होते हैं, दाँत निकले हुए होते हैं; पेट खुला होता है, पीठ पर हाथी की खाल पड़ी रहती है, जिससे लहू की बूँदें टपकती रहती हैं। एक हाथ में अजगर, दूसरे में डंडा और तीसरे में आदमी का सिर होता है; और चौथा हाथ ऊपर उठा हुआ होता है। उसके दोनों कानों में दो साँप और शरीर में दो अजगर लिपटे

हुए होते हैं। सिर पर खोपड़ियों की हड्डियों का मुकुट और गले में उन्हीं हड्डियों की माला होती है।

(२) दूसरे सम्प्रदाय का नाम "अद्दनियकतियः अल् अदतब्रकतियः" (आदित्यभक्त) दिया है और कहा है कि ये लोग सूरज (आदित्य) की पूजा करते हैं। इसका स्वरूप यह है कि एक गाड़ी है, जिसमें चार घोड़े जुते हैं। उसके ऊपर एक मूर्त्ति है। वे लोग उसीकी पूजा करते हैं और उसकी परिक्रमा करते हैं; उसके आगे धूप सुगन्धित द्रव्य आदि जलाते हैं और बाजे बजाते हैं। उसके नाम से बहुत सी जायदादें छोड़ी हुई हैं। बहुत से पुजारी हैं जो उस मन्दिर और सम्मत्ति का प्रबन्ध करते हैं। चारों ओर से रोगी लोग यहाँ आते हैं और अपनी समझ में वे यहाँ से अच्छे होकर जाते हैं।

(३) तीसरा सम्प्रदाय "चन्दर भक्तयः" (चन्द्रभक्त) है। ये लोग चन्द्रमा की पूजा करनेवाले हैं। इसकी मूर्त्ति का रथ चार हंसों से चलता है। मूर्त्ति के हाथ में एक बहुत बड़ा लाल होता है, जिसको चन्दर केत (चन्द्रकेतु) कहते हैं। चौदहवीं रात (पूर्णिमा) को, जो चन्द्रमा के पूर्ण होने का दिन है, व्रत रखते हैं। उस रात को उसकी पूजा करते हैं और उस देवता के पास नैवेद्य, मद्य और दूध लाते हैं। चाँद की पहली (प्रतिपदा) और चौदहवीं (पूर्णमा) को छतों पर चढ़कर उसके दर्शन करते हैं और मन्त्र पढ़ते तथा प्रार्थना करते हैं।

(४) चौथे सम्प्रदाय का नान "बकरन्तनिया" है।[1] इस सम्प्रदाय के लोग अपने आपको सिक्कड़ों में बाँधे रहते हैं, सिर

---

[1] इस शब्द का मूल रूप और इस सम्प्रदाय का कुछ वर्णन आगे चलकर "भिक्षु" शब्द के अन्तर्गत आवेगा। दूसरी पुस्तकों में बकरन्तियः की जगह बेकर जैन लिखा है। बुज़ुर्ग बिन शहरयार ने इनका नाम बेकूर

और दाढ़ी के बाल मुँड़ाते हैं, केवल एक लँगोटी पहनते हैं और सारा शरीर नंगा रखते हैं। जो कोई इनके सम्प्रदाय में आता है, उससे कहते हैं कि तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सब पहले दान कर दो।

(५) पाँचवें सम्प्रदाय का नाम गंगा जात्रा (गंगा-यात्री) है। इस सम्प्रदाय के लोग सारे भारत में फैले हुए हैं। इनके यहाँ यह माना जाता है कि मनुष्य जितने पाप करता है, वह सब आकर गंगा में स्नान करने से धुल जाते हैं।

(६) छठे "राजपूतिया" (राजपूत) हैं। इनका धर्म राजाओं की सहायता करना है। यह समझते हैं कि राजा के लिये प्राण देना ही भक्ति है।

(७) एक और सम्प्रदाय है, जिसके लोग बाल बढ़ाते हैं और उनको बट कर मुँह पर जटा बनाकर डाल लेते हैं मुँह के चारों ओर बाल बिखरे हुए होते हैं। ये लोग शराब नहीं पीते और एक पहाड़ पर यात्रा करने जाते हैं। ये लोग स्त्रियों को देखकर भागते हैं और बस्ती में नहीं आते।[१]

इब्न नदीम के समय या उसके कुछ ही आगे पीछे (सन् ३७५ हि०) जेरूसलम के एक अरबवक्ता मुतहहिर[२] ने किताबुल् बिदअ

या बेकोर बतलाया है (पृ० १५५)। और बैरूनी ने इनको महादेव का उपासक या पूजन करनेवाला कहा है। देखो किताबुल् हिन्द; पृ० ५८।

[१] किताबुल् फ़ेहरिस्त; इब्न नदीम; पृ० ३४५-४६।

[२] हाजी ख़लीफ़ा ने कहा है कि इस पुस्तक का लेखक अबू ज़ैद अहमद बिन सहल बलख़ी है। पेरिस संस्करण के सम्पादक ने पहले के कई खंडों पर तो बलख़ी का नाम लिखा है, पर फिर इसे भूल मानकर और इसकी शुद्धि कर के मतहहिर बिन ताहिर का नाम लिखा है।

वत्तारीख नामकी एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें इसका और भी विस्तार पूर्वक वर्णन है। वह वर्णन इस प्रकार है—

"भारत में नौ सौ सम्प्रदाय हैं, पर उनमें से केवल निन्नानवे का हाल मालूम है; और ये सब पैंतालिस धर्मों के अन्तर्गत हैं; और ये सब भी चार सिद्धान्तों में ही परिमित हैं। इनके असल मोटे विभाग दो ही हैं—समनी (बौद्ध) और बरमहनी (ब्राह्मणधर्म)। समनी लोग या तो ईश्वर को नहीं मानते और या ऐसे ईश्वर को मानते हैं, जिसको कुछ भी करने का अधिकार नहीं है। ब्राह्मण धर्मवालों के तीन विभाग हैं। एक विभाग तो यह मानता है कि ईश्वर एक है; और पाप और पुण्य दोनोंका फल मिलता है; पर वह यह नहीं मानता कि इस संसार में कोई ईश्वर का भेजा हुआ रसूल या दूत भी आता है। दूसरा विभाग पुनर्जन्म के सिद्धात पर पुण्य और पाप का फल मिलना मानता है; पर न तो वह ईश्वर की एकता मानता है और न रसूल या ईश्वरीय दूत का सिद्धान्त मानता है।"[१]

इसके बाद लेखक ने भारतवासियों की विद्या सम्बन्धी योग्यता का संक्षिप्त वर्णन किया है। फिर यह बतलाया है कि पुराने समय में जब भारत में अभियोग या मुकदमे होते थे, तब लोग अपनी सचाई का किस प्रकार प्रमाण देते थे। (इससे लेखक का अभिप्राय "दिव्य" से है।) जैसे गरम लोहे को छू लेना आदि आदि। इसके बाद कहता है—

"मुसलमानों को ये लोग अपवित्र समझते हैं। मुसलमान इनकी जिस चीज़ को छू दें, उसे फिर ये नहीं छूते। गौ को ये लोग माता के समान पूज्य मानते हैं। जो कोई गौ के प्राण लेता है, उसे ये

---

[१] चौथा खंड; पृ० ६-१६ (पेरिस) तीसरे सम्प्रदाय का वर्णन छूट गया है।

लोग प्राण-दंड देते हैं। जिसकी स्त्री न हो, वह किसी दूसरे आदमी की स्त्री के साथ सम्भोग कर सकता है, जिसमें वंश चलता रहे।[१] जिसकी स्त्री हो, वह यदि किसी दूसरी स्त्री के साथ बुरा काम करे, तो उसके लिये उसे प्राण-दंड दिया जाता है। जब इनमें से कोई आदमी मुसलमान के हाथ पड़कर फिर लौटकर इनके यहाँ जाता है, तब उसको मारते नहीं, बल्कि उसके सारे शरीर को मूँडकर उससे प्रायश्चित्त कराते हैं। (इसका वही ढंग लिखा है जो अब भी होता है अर्थात् गौ की कुछ चीजों को मिलाकर पिलाना) जहाँ बहुत पास का सम्बन्ध होता है, वहाँ ये लोग ब्याह नहीं करते। ब्राह्मण लोग शराब को भी हराम समझते हैं और मारे हुए पशु के मांस को भी।"

इसके बाद हिन्दू देवताओं और उनके भिन्न भिन्न उपासकों का वर्णन दिया है और हर देवता का रूप बतलाया है। फिर महादेव, काली, महाकाली और लिंग-पूजा आदि का हाल लिखा है; और इसके बाद दो नए सम्प्रदायों का हाल बतलाया है जिनमें से एक का नाम जल भक्तियः (जल भक्त) दिया है और कहा है कि ये लोग जल की पूजा करते हैं। दूसरे का नाम अगनीहोतरियः (अग्निहोत्री) दिया है, जो आग की पूजा करते हैं। ऋषियों का भी वर्णन किया है और कहा है कि ये लोग ध्यान और समाधि लगाकर अपनी बाहरी इन्द्रियों को बिलकुल व्यर्थ कर देते हैं, उनको अपना काम करने के अयोग्य बना देते हैं; और समझते हैं कि हम इस संसार के पदार्थों से जितना ही अलग होंगे, हममें उतनी ही आत्मा

---

[१] यहाँ लेखक का अभिप्राय नियोग से है; पर जान पड़ता है कि उसने नियोग का ठीक ठीक रूप नहीं समझा था; और इसी लिये इस प्रकार बिगाड़कर उसका वर्णन किया है।—अनुवादक।

की शक्ति बढ़ेगी। अन्त में योगियों और अपने आपको बलिदान देनेवालों का वर्णन किया है।

ब्राह्मणों के विषय में लिखा है कि—"ये लोग गौ की पूजा करते हैं और गंगा के उस पार जाना पाप समझते हैं। इनके यहाँ किसी दूसरे को अपने धर्म में लेने की आज्ञा नहीं है।" अन्त में यह लेखक लिखता है—

जो लोग क़यामत (मुसलमानों और ईसाइयों के विचार के अनुसार न्याय का अन्तिम दिन) और रसूल या ईश्वरीय दूत (कदाचित् अवतार से तात्पर्य है) को नहीं मानते, वे भी पाप और पुण्य के फल के रूप को पुनर्जन्म के रूप में मानते हैं; और मूर्त्ति-पूजा का यह कारण बतलाते हैं कि ईश्वर तो ज्ञान और इन्द्रियों से ऊपर या परे है और इन्द्रियों से उसका स्वरूप नहीं जाना जा सकता; इसी लिये एक मध्यस्थ की आवश्यकता होती है।

इसके बाद संसार भर के धर्मों की जाँच करनेवाले प्रसिद्ध अब्दुलकरीम शहरिस्तानी का नाम आता है, जिसका समय सन् ४६९ हि० से ५४९ हि० तक है। इसने मतहहिर मुकद्दसी का वर्णन और भी विस्तार से उद्धृत किया है; और एक नए सम्प्रदाय बरगसबगियः (वृक्ष भक्त) का वर्णन किया है, जो वृक्षों की पूजा करता है।[१]

अबू रैहान बैरूनी ने किताबुल् हिन्द के ग्यारहवें प्रकरण में भारत के सभी धर्मों का वर्णन किया है। साथ ही सब देवताओं के स्वरूप और वर्णन दिए हैं; और स्वयं मूर्त्ति-पूजा के तत्त्व का भी विवेचन किया है; और लिखा है—"यह मूर्त्ति-पूजा भारत के केवल साधारण और मूर्ख लोगों का धर्म है; और नहीं तो पढ़े लिखे हिन्दू ऐसा नहीं मानते। फिर गीता के कुछ श्लोक लिखे हैं, जिनमें से एक का

[१] मिलल व नहल; दूसरा खंड; अन्तिम प्रकरण।

अभिप्राय यह बतलाया है—"बहुत से लोग मुझको छोड़कर दूसरों को पूजते हैं। मैं उनकी परवाह नहीं करता।" फिर श्रीकृष्ण जी का एक वचन लिखा है, जिसमें उन्होंने अर्जुन से कहा है कि जो लोग चन्द्रमा और सूर्य आदि की पूजा करते हैं, मैं उनसे अप्रसन्न रहता हूँ।"

अब सात समुद्र पार स्पेन देश के रहनेवाले एक अरब लेखक क़ाज़ी साइद (मृत्यु सन् ४६२ हि० ; १०७० ई०) का "ईमान बिलग़ैब" नामक प्रकरण देखिए। वह अपनी पुस्तक तबक़ातुल् उमम में, जिसमें सारे संसार की सभ्य जातियों की विद्याओं का इतिहास लिखा है, कहता है—

"हिन्दू जाति की दूसरी सभी जातियाँ सदा से गुणों की खान और बुद्धिमत्ता का स्रोत समझती रही हैं। ····उनका ईश्वरीय ज्ञान ईश्वर की एकता के सिद्धान्त से पवित्र है। उनमें अनेक सम्प्रदाय हैं। कुछ लोग ब्राह्मण हैं, कुछ नक्षत्रों की पूजा करते हैं। कुछ लोग सृष्टि को सादि और कुछ अनादि मानते हैं। नबी और रसूल को नहीं मानते। पशुओं की हत्या करना और उनको कष्ट देना बुरा समझते हैं।" इसके उपरान्त लेखक ने इस बात पर दुख प्रकट किया है कि स्पेन से भारत बहुत दूर है और इस लिये वहाँ की अधिक बातें मुझे नहीं मालूम हैं। इसके बाद विद्याओं, विज्ञानों और सिद्धान्तों का वर्णन किया है, जो अरबी के द्वारा भारत से स्पेन तक पहुँचे थे।[१]

अरब यात्रियों ने भारत की धार्मिक बातों का जो वर्णन किया है, उसमें अधिकतर मुलतान और सिन्ध के मन्दिरों का ही हाल है। जैसे यह कि मुलतान की प्रसिद्ध मूर्त्ति लकड़ी की थी, उसके ऊपर लाल खाल लिपटी थी, उसकी दोनों आँखों की जगह दो लाल थे और सिर

---

[१] तबक़ातुल् उमम ; पृ० ११-१२ (बैरूत)

पर सोने का मुकुट था।[1] बैरूनी ने बतलाया है कि यह सूर्य देवता की मूर्त्ति थी, और इसी लिये इसका नाम अदित (आदित्य या सूर्य) था।[2]

दूसरी बात, जिसका इन अरब यात्रियों ने बहुत घृणा के साथ वर्णन किया है, वह उन मन्दिरों का हाल है, जिनमें देव-दासियाँ रखी जाती थीं। इस प्रकार के मन्दिरों का हाल अधिकतर दक्षिण भारत के यात्रियों ने किया है।[3] पर मुकद्दसी जो सन् ३७५ हि० में भारत आया था, लिखता है कि इस प्रकार के मन्दिर सिन्ध में भी थे।[4]

तीसरी बात जिसका इन यात्रियों ने बहुत अधिक वर्णन किया है, लोगों का अपने आपको बलिदान कर देना है। इस बलिदान का इन लोगों ने ऐसा हाल लिखा है कि जिसको पढ़कर शरीर के रोएँ खड़े हो जाते हैं। गंगा में डूबकर प्राण देना तो साधारण सी बात है। इसके सामने सती होनेवाली स्त्रियों का भी वर्णन कम है।

अबूज़ैद सैराफ़ी कहता है—"इन लोगों का पुनर्जन्म पर इतना विश्वास है कि अपने आप को जलाना चाहता है, तब राजा से आज्ञा लेता है और फिर बाज़ारों में घूमता है। दूसरी ओर खूब आग सुलगाई जाती है और झाँझ बजाई जाती है। उसके सम्बन्धी उसके चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं। फिर फूलों का एक मुकुट बनाकर, जिसमें जलती हुई आग रखी रहती है, उसके सिर पर रख देते हैं,

---

[1] देखो अहसनुत् तकासीम; मुकद्दसी; पृ० ४८३; और आसारुल बिलाद; कज़वीनी; पृ० ८१ आदि भूगोल की पुस्तकें।

[2] किताबुल् हिन्द; पृ० ५६ (लन्दन)।

[3] सुलैमान सौदागर का यात्रा-विवरण और अबूज़ैद सैराफ़ी; पृ० १२० ; (पेरिस)।

[4] अहसनुत् तकासीम; पृ० ४८३।

जिससे सिर की खाल जलने लगती है। वह उसी तरह खड़ा रहता है और फिर धीरे धीरे चलकर चिता में कूद पड़ता है।" एक और बात यह कही गई है कि एक आदमी बहुत बड़ी छुरी से अपना कलेजा आप फाड़कर और हाथ डालकर अन्दर से अपना हृदय निकाल लेता है और ये सब काम बहुत ही धैर्य और शान्ति से करता है।[१]

सबसे बढ़कर भीषण दृश्य का चित्र इब्नुल् फ़क़ीह ने खींचा है। वह लिखता है—"मुलतान में एक आदमी एक मन्दिर में आया। वह अपने सिर और उँगलियों पर तेल में भीगी हुई रूई लपेटे हुए था। वहाँ पहुँचकर उसने उस रूई में आग लगा दी और वे जलती हुई बत्तियाँ उसके शरीर तक पहुँच गईं और वह उसी प्रकार धैर्य तथा शान्ति के साथ जलकर राख हो गया।"[२]

ब्राह्मण और समनी

इब्राहीम और ख़िज़्र

मुतहहिर मुक़द्दसी (सन् ३३५ हि०) ने हिन्दुओं के सब सम्प्रदायों को दो भागों में बाँटा है। उसने एक का नाम ब्रह्मनियः और दूसरे का समनियः बतलाया है। पर विलक्षण बात यह है कि कुछ अरब लेखकों को ब्राह्मण शब्द के रूप की समानता देखकर उससे इतना अनुराग हुआ कि उन्होंने यह मान लिया कि ब्राह्मण वास्तव में हज़रत इब्राहीम को माननेवाले हैं; इसी लिये इनको ब्राह्मण कहते हैं। पर शहरिस्तानी ने यह भ्रम दूर किया और बतलाया कि इस शब्द का सम्बन्ध ब्रह्म से है, इब्राहीम से नहीं है। ब्राह्मण के विरोधी दूसरे दल का जो नाम समनियः है, वह वास्तव में अरबी में बौद्धों का नाम

---

[१] अबूज़ैद का यात्रा-विवरण; पृ० ११९-१८।

[२] आसारुल् बिलाद; क़ज़वीनी; पृ० ८१।

है। इस सम्बन्ध में विस्तृत बातें आगे चलकर कही जायँगी। बौद्ध लोगों का यह विश्वास है कि महात्मा बुद्ध समय समय पर मनुष्यों का रूप धारण करके इस संसार में आते रहे हैं; इस लिये कुछ अच्छे विचारवाले लोगों ने समानता देने के लिये यह कहना आरम्भ कर दिया कि यह वही बुद्ध हैं, जिन्हें मुसलमान लोग ख़िज़्र कहते हैं।[१]

दो जातियों के बीच इस प्रकार का सम्बन्ध और समानता उस समय स्थापित करने की आवश्यकता होती है, जिस समय दोनों में किसी प्रकार का समझौता होता है और मेल होता है। ये दोनों उदाहरण यही सिद्ध करते हैं कि किसी समय हिन्दुओं और अरब मुसलमानों में इसी प्रकार का समझौता और मेल था।

इस्लाम के पैग़म्बर का आदर करनेवाला एक हिन्दू राजा

सन् १४७ हि० में जब मन्सूर अब्बासी के समय में अली के वंश के उत्साही सैयदों ने राज्य स्थापित करने का विचार किया, तब सिन्ध में भी उसका प्रबन्ध होने लगा। पर पाँसा उलट गया और उन अली के वंश के सैयदों को सफलता नहीं हुई। उस समय उन्हें एक ऐसी जगह की ज़रूरत हुई, जहाँ वे लोग शरण ले सकते। भारत के मुसलमान वाली ने, जो उन सैयदों से सहानुभूति रखता था, उनसे कहा कि आप लोग घबरायँ नहीं। यहाँ एक राजा है जो ईश्वर के रसूल मुहम्मद साहब का बहुत आदर करता है। आप लोग उसके पास चले जायँ। जब वे लोग वहाँ गए, तब राजा ने बहुत अच्छी तरह उनका स्वागत किया और वे लोग बहुत सुख से वहाँ रहने लगे।[२]

---

[१] देखो मिलल व नहल; शहरिस्तानी।

[२] कामिल इब्न असीर; वाक़आत सन् १४७ हि०।

समनियः

अभी ऊपर समनियः धर्म का वर्णन आया है। वहाँ कहा गया था कि अरब लोग बौद्धों को समनियः कहते थे। मैं बहुत दिनों तक जाँच पड़ताल करने के बाद और बहुत सी बातों की जानकारी प्राप्त करके तब इस सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ।

सबसे पहले इस सम्प्रदाय का नाम अब्दुलक़ादिर बग़दादी (जिसकी मृत्यु सन् ४२९ हि०; १०३७ ई० में हुई थी) की किताबुल् फ़रक़ बैनल् फ़िरक में इस प्रसंग में दिखलाई दिया कि इस्लाम के मोतजिला नामक बुद्धिमान् सम्प्रदाय के निज़ाम नाम के एक बड़े इमाम पर उसने यह झूठा अभियोग लगाया है कि उसने नबी को न मानने का सिद्धान्त ब्राह्मणों से सीखा है और यह सिद्धान्त समनियः से सीखा है कि इस बात का कभी निर्णय नहीं हो सकता कि सत्य क्या है और मिथ्या क्या है; क्योंकि दोनों ही पत्तों में बहुत बलवान तर्क होते हैं। फिर मुर्त्तजा जैदी की किताबुल् मोतजिला नामक पुस्तक में पढ़ा—"भारत के समनियः ने हारूँ रशीद के पास इस्लाम पर यह आपत्ति कहला भेजी।" इस वाक्य से मेरा ध्यान इस बात पर गया कि इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध भारत से है। इसके बाद सिन्ध के सम्बन्ध की बातों की जाँच करते समय समनियः शब्द अनेक बार मिला। मैं ने यह भी देखा कि प्रोफ़ेसर मूलर आदि के आधार पर ईलियट साहब लिखते हैं कि इस शब्द से बौद्धमत वालों का अभिप्राय है और इस शब्द का मूल संस्कृत रूप "श्रमण" है। ईलियट साहब यह भी कहते हैं कि यूनानी यात्रियों और इतिहास-लेखकों ने भी इनको सरामिनीस, सरमीनिया और सिमूनी आदि लिखा है।[1]

---

[1] ईलियट कृत इंडिया; पहला खंड; पृ० ५०६।

ईलियट साहब के इस वर्णन से कुछ तो और आगे पता चला; पर उसके बाद इब्न नदीम की किताबुल् फेहरिस्त ने इस गूढ़ शब्द का अर्थ बिलकुल साफ कर दिया, जिससे मेरा पूरा सन्तोष हो गया; और मुझे यह भी पता चल गया कि यूनानियों में यह नाम किस प्रकार आया।

समनियः की जांच

हम्जा अस्फ़हानी ने अपनी पुस्तक तारीख मुलूकुल् अर्ज (पृथ्वी के राजाओं का इतिहास) सन् ३५० हि० में या उसके लगभग लिखी थी। यह ईरान और ख़ुरासान के इतिहास की ऐसी पुस्तक है, जो प्रामाणिक मानी जाती है। यह अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखता है[१]—

"संसार में पहले दो ही धर्म या सम्प्रदाय थे—एक समनियन और दूसरे कैल्डियन (कैल्डियावाले)। समनियन लोग पूरब के देशों में थे। उनमें से कुछ बचे हुए लोग अब भी भारत में कहीं कहीं और चीन में हैं। ख़ुरासानवाले इनको बहुवचन रूप में शमनान और एक वचन रूप में शमन कहते हैं।"

इससे यह पता चल गया कि अरबों ने बौद्धों का यह नाम ख़ुरासानियों से सुना और वही उनमें चल गया। इस्फ़हानी के इस वर्णन के साथ इब्न नदीम (सन् ३७५ हि०) का नीचे लिखा वर्णन मिलाना चाहिए, जिसमें बहुत सी जानने योग्य बातें भरी हैं—

"मैंने एक ख़ुरासानी के हाथ का लिखा हुआ लेख पढ़ा था, जिसने ख़ुरासान के पुराने समय की और फिर अपने समय की बहुत सी बातें लिखी थीं। यह एक नियमावली के रूप में था। उसमें

---

[१] तारीख़ मुलूकुल् अर्ज़; पृ० ७ (बरलिन)।

लिखा था कि समनियः के पैग़म्बर का नाम बोज आसफ था और पुराने समय में इस्लाम से पहले ट्रान्स-काकेशिया के लोग इसी धर्म के अनुयायी थे। समनियः शब्द संस्कृत के समनः से निकला है। ये लोग संसार में रहनेवाले सभी लोगों और धर्मों के माननेवालों से अधिक उदार होते हैं। इसका कारण यह है कि इनके पैग़म्बर (मत के प्रवर्त्तक) बोज आसफ ने इनका यह बतलाया है कि सब से बड़ा पाप जो नहीं करना चाहिए और जिसका मनुष्य को कभी विश्वास न रखना चाहिए, यह है कि काई अपने मुँह से "नहीं" न कहे। ये लोग इसी उपदेश पर चलते हैं और "नहीं" कहना इनकी दृष्टि में "शैतान" का काम है और इनका धर्म "शैतान" को दूर करना है।"[1]

यह अक्षरशः बौद्धमत का चित्र है। ऊपर कहा जा चुका है कि बोज आसफ शब्द बोधिसत्व से निकला है। लोग यह भी जानते हैं कि इस्लाम से पहले मध्य एशिया का धर्म बौद्ध था। इस वर्णन को पढ़ने के बाद इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि समनियः और बौद्ध दोनों एक हैं।

समनियः के सिद्धान्त

अब्दुलक़ादिर बग़दादी (सन् ४२९ हि० ; १०३७ ई०) ने प्रसंगवश समनियः के एक सिद्धान्त का वर्णन किया है, जिसको अरबी परिभाषा में "तकाफ़ओ अदिल्ला" कहते हैं और जो एक प्रकार से "लाअदरिया" अग्नास्टिक[2] (Agnostic) सम्प्रदाय के सिद्धान्त से मिलता जुलता है इस सिद्धान्त का मतलब यह है कि संसार में सत्य

[1] अल् फ़ेहरिस्त ; इब्न नदीम ; पृ० ३४५।

[2] अग्नास्टिक उन लोगों को कहते हैं, जो ईश्वर के अस्तित्व या सृष्टि की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में यह समझकर कुछ भी विचार नहीं करते कि

और मिथ्या दोनों इस प्रकार मिले जुले हैं कि हर एक वस्तु के अस्ति और नास्ति (हाँ और नहीं) दोनों अंग हो सकते हैं ; और दोनों में से न तो किसी को गलत कह सकते हैं और न ठीक कह सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह सिद्धान्त बुद्ध के कुछ उपदेशों में हैं ; पर सब से बढ़कर स्पष्ट रूप में यह जैनियों के यहाँ मिलता है।

बौद्धधर्म का दूसरा सिद्धान्त, जिसपर उस मत का आधार है, यह है कि संसार या जीवन के दुःखों, दोषों या विपत्तियों से छुटकारा मिले। इस दुःख, दोष और विपत्ति को ही इब्न नदीम ने "शैतान" कहा है, जो सब दोषों का केन्द्र है। और उसने यह भी कहा है कि समनियः का धर्म शैतान को दूर करना है ; अर्थात् दोषों और दुःखा से छुटकारा पाना है।

शहरिस्तानी ने जो हिजरी पाँचवीं शताब्दी के अन्त (ईसवी ग्यारहवीं शताब्दी) में हुआ था, समनियः की जगह "बुद" शब्द का व्यवहार किया है ; और ऐसा जान पड़ता है कि उसे इस धर्म की पूरी जानकारी थी। वह कहता है—"बुद" (बुद्ध) से उस अस्तित्व का अभिप्राय है जो न तो जन्म लेकर प्रकट होता है, न ब्याह करता है, न खाता है, न पीता है, न वृद्ध होता है और न मरता है।" यह मानो निर्वाण के बाद की अवस्था का वर्णन है। इसके बाद इसने गौतम बुद्ध के उपदेशों का इस प्रकार वर्णन किया है कि मनुष्य दस प्रकार के पापों से बचे और दस कर्त्तव्यों का पालन करे (यम और नियम)। उसने इनमें से हर एक का वर्णन किया है और लिखा है कि जहाँ तक मैं इनके सिद्धान्तों को जानता हूँ, इनमें सृष्टि के अनादि होने-

---

इन सब विषयों में ठीक तरह से कुछ भी जाना नहीं जा सकता। वे केवल भौपदार्थों और बातों का विवेचन करते और उन्हीं पर विश्वास रखते हैं।—अनुवादक।

और पूर्व जन्म के किए हुए पाप और पुण्य का फल भोगने में कोई मतभेद नहीं है।[१]

मुतहहरि बिन ताहिर ने अरबी भूगोल की किसी किताबुल् मसालिक (यह इब्न ख़ुर्दाजबा वाली किताबुल् मसालिक नहीं है, जिसकी रचना हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त या चौथी शताब्दी के आरम्भ में हुई थी) नाम की पुस्तक से लेकर और इब्न नदीम ने कन्दी के सिवा किसी और के लेख से ज्यों का त्यों एक उद्धरण दिया है, जिसका आशय इस प्रकार है—"समनियः में दो सम्प्रदाय हैं। एक तो वह जिसका यह विश्वास है कि बुद्ध ईश्वर का पैग़म्बर (दूत) था; और दूसरे लोगों का यह विश्वास है कि बुद्ध स्वयं ईश्वर था, जो अवतार लेकर इस संसार में प्रकट हुआ था।"[२] वास्तव में इसका अभिप्राय उस मतभेद से है कि बौद्ध मत में ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं। इस मत का एक सम्प्रदाय ईश्वर के नाम से किसी का अस्तित्व नहीं मानता; और दूसरा ईश्वर का अस्तित्व मानता है। वास्तव में बात यह है कि स्वयं बुद्ध ने यह सिद्धान्त बिलकुल गड़बड़ी में रखा है और उसे कुछ भी स्पष्ट नहीं किया। हिजरी चौथी शताब्दी के अन्त में मुहम्मद ख़्वारिज़्मी कहता है—"समनियः लोग मूर्त्तिपूजक हैं। वे लंकावाले प्रसिद्ध चरणचिह्न और पुनर्जन्म को मानते हैं; और यह भी मानते हैं कि पृथ्वी सदा नीचे की ओर जा रही है। उनके पैग़म्बर का नाम बोज आसफ़ है, जिसका भारत में ही जन्म हुआ था। ये लोग भारत और

---

[१] मिलल व नहल, शहरिस्तानी, में "मज़ाहिब हिन्द" (भारत के धर्म) का प्रकरण।

[२] इब्न नदीम; पृ० ३४७; और किताबुल् बदअवत्तारीख ; चौथा खंड; पृ० १९।

चीन में बसते हैं। कैल्डियन लोग भी अपना सम्बन्ध इसीसे बतलाते हैं।"[1]

प्रसिद्ध अरब इतिहास-लेखक और यात्री मसऊदी (सन् ३३२ हि०) चीन के सम्बन्ध में लिखता है—

"इनका धर्म पहले लोगों का धर्म है और यह एक मत है, जिसका नाम समनियः है। इनकी पूजा का ढङ्ग वही है जो इस्लाम से पहले कुरैश का था। ये लोग मूर्त्तियों को पूजते हैं और प्रार्थना करते समय उन्हीं की ओर मुँह करते हैं। इनमें से जो लोग समझदार हैं, वह यही समझते हैं कि मूर्त्ति प्रायः वैसी ही है जैसा मुसलमानों के लिये किबला है। असल नमाज़ या उपासना ईश्वर की है। और जो लोग ना समझ हैं, वे उन मूर्त्तियों को ही ईश्वर के समान मानते हैं और उनको पूजते हैं।"[2]

बुद्ध का स्वरूप

संसार के सभी मार्ग दिखलानेवालों और धर्म चलानेवालों में शायद एक बुद्ध ही ऐसे महात्मा हैं, जिनका स्वरूप और आकृति उनकी मूर्त्तियों के कारण हज़ारों बरस बीत जाने पर भी संसार के सामने अब तक रखी हुई है; और अजायबख़ानों के द्वारा तो संसार के कोने कोने में पहुँच गई है। अरबवाले भी बुद्ध की आकृति और स्वरूप जानते थे। इब्न नदीम ने नीचे लिखे शब्दों में उनका चित्र खींचा है।[3]

---

[1] मफ़ातीहुल् उलूम; ख़्वारिज़्मी; पृ० ३६ (लीडन)

[2] तारीख़ मसऊदी; मुरूजुज़् ज़हब; पहला खंड; पृ० २१८ (लीडन)।

[3] इब्न नदीम; पृ० ३४७।

"एक आदमी एक सिंहासन पर बैठा है। चेहरे पर बाल नहीं हैं। ठुड्डी नीचे झुकी है। कुछ कुछ मुस्कराहट है। उँगलियाँ कुछ खुली और कुछ बन्द हैं।"

बुद्ध की एक मूर्त्ति बग़दाद भी गई थी। इब्न नदीम ने उसे देखा था। उसपर एक लेख भी खुदा हुआ था।[1]

बौद्ध मत का विस्तार

अरबवाले यह बात अच्छी तरह जानते थे कि बौद्धमत किन किन देशों में फैला हुआ था। अभी ऊपर कहा जा चुका है कि इब्न नदीम जानता था कि ख़ुरासान और ट्रान्स काकेशिया में इस्लाम का प्रचार होने से पहले बौद्धधर्म था। इसी प्रकार वे लोग यह भी जानते थे कि चीन में भी यही धर्म है और वह भारत से वहाँ गया था। प्रायः अरब यात्रियों ने यह बात कही है। जिस सबसे पहले अरब यात्री का यात्रा-विवरण हमें मिलता है, वह सुलैमान सौदागर (सन् २३७ हि० ; ८३७ ई०) है। वह अपने यात्रा-विवरण में लिखता है—

"चीन के धर्म का मूल भारत में है ; और चीनवाले कहते हैं कि हमारे लिये ये बुद्ध की मूर्त्तियाँ भारत ने ही बनाई हैं। इन दोनों देशों के लोग पुनर्जन्म का सिद्धान्त तो मानते हैं, पर दूसरी साधारण बातों में इनमें मतभेद है।"[2]

इसी प्रकार दक्षिण भारत और टापुओं में भी वे इस धर्म के प्रभाव देखते थे।

---

[1] इब्न नदीम ; पृ० १६।

[2] सुलैमान सौदागर का यात्रा-विवरण ; पृ० ५७ (सन् १८११ में पेरिस में छपा हुआ)।

भिक्षु

अबू जैद सैराफी ने हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त में दक्षिणी भारत, टापुओं और चीन का हाल लिखा था। वह बौद्ध साधुओं का वर्णन करता है और उनका नाम बेकर जी बतलाता है। यह शायद भिक्षु शब्द की खराबी है। इस शब्द का रूप तो भिक्षु शब्द के रूप के समान है ही; इसके सिवा उसने जो वर्णन किया है, वह भी भिक्षुओं के ही वर्णन के समान है। वह लिखता है—

"भारत में एक सम्प्रदाय है, जिसका नाम बेकर जैन है। वे लोग नंगे रहते हैं। उनके बालों की लटें इतनी बड़ी होती हैं कि वे फैलकर उनका नंगापन छिपा देती हैं। उनके नाखून बहुत बड़े बड़े होते हैं। वे उन्हें कटाते नहीं, चाहे वे टूट जायँ। वे सदा नगर नगर घूमा करते हैं। उनमें से हर एक की गरदन में आदमी की एक खोपड़ी डोरी में बँधी हुई पड़ी रहती है। जब उनको अधिक भूख लगती है, तब वे किसी के द्वार पर खड़े हो जाते हैं। मकानवाला बहुत प्रसन्नता से जल्दी जल्दी पके हुए चावल लेकर आता है और उनको भेंट करता है। वे उसी खोपड़ी में लेकर वह चावल खा लेते हैं। जब उनका पेट भर जाता है, तब नगर से लौट जाते हैं; और फिर केवल भूख लगने पर निकलते हैं।"[१]

बुजुर्ग बिन शहरयार नाविक ने सन् ३०० हिजरी में सरन्दीप से गुजरते समय इस प्रकार के साधुओं को देखा था। उसने भी उनका ऐसा ही चित्र खींचा है और उनका नाम बेकोर बतलाया है। उसने लिखा है कि ये लोग गरमी में बिलकुल नंगे रहते हैं और केवल चार अंगुल की लँगोटी बाँधते हैं। जाड़ों में ये चटाई ओढ़ते हैं और तरह तरह के रंगों के टुकड़ों को जोड़कर एक कपड़ा सी लेते हैं और

---

[१] अबूजैद सैराफ़ीका यात्रा-विवरण (सफ़रनामा); पृ० १२७-२८।

उसीको पहनते हैं। ये अपने शरीर पर जली हुई हड्डी की राख मलते हैं और गले में आदमी की खोपड़ी लटकाए रहते हैं। ये दूसरों को परिणाम की शिक्षा देने और अपनी दीनता जतलाने के लिये उसी खोपड़ी में खाते हैं।[1]

पर बैरूनी ने इस प्रकार के साधुओं को महादेव का उपासक कहा है और इनका रूप भी इसी से मिलता जुलता बतलाया है। वह भी लिखता है कि ये लोग गले में रुंडमाला डालकर जंगल जंगल घूमा करते थे।[2]

योगी

योगियों और संसारत्यागी साधुओं के हाल भी इन पुस्तकों में लिखे हैं। पर इनमें से सबसे अधिक विलक्षण घटना वह है, जो सुलैमान सौदागर ने ईसवी नवीं शताब्दी के मध्य में अपनी आँखों देखी थी। वह कहता है—

"भारत में ऐसे लोग भी हैं, जो सदा पहाड़ों और जंगलों में घूमा करते हैं और लोगों से बहुत कम मिलते जुलते हैं। जब भूख लगती है, तब वे लोग जंगल के फल या घास पात खा लेते हैं। . . . उनमें से कुछ लोग बिलकुल नंग धड़ंग होते हैं। हाँ, चीते की खाल का एक टुकड़ा अवश्य उनपर पड़ा रहता है। मैंने इसी प्रकार के एक आदमी को धूप में बैठे हुए देखा था। सोलह बरस बाद जब मैं फिर उसी ओर से गया; तब भी मैंने उसको उसी प्रकार और उसी दशा में बैठे हुए पाया। मुझे आश्चर्य होता था कि धूप की गरमी से उसकी आँखें क्यों न बह गईं।"[3]

---

[1] अजायबुल् हिन्द; बुज़ुर्ग बिन शहरयार; पृ० १४४ (लीडन)।

[2] किताबुल् हिन्द; पृ० ४८।

[3] सफ़रनामा सुलैमान सौदागर; पृ० ४०-४१।

समनियः और इस्लाम

समनियः के साथ मुसलमानों के सम्बन्ध ख़ुरासान, तुर्किस्तान और अफ़गानिस्तान से आरम्भ होते हैं और धीरे धीरे भारत तक बढ़ते चले आते हैं। यहाँ तक कि बल्ख़ के नवविहार (नौ बहार) के पुजारी बरमकियों से लेकर इन देशों के साधारण बौद्धों ने भी मुसलमान होने में अधिक आगा पीछा नहीं किया। यही दशा हमें सिन्ध में भी दिखाई पड़ती है। हिजरी पहली शताब्दी (ईसवी सातवीं शताब्दी) के अन्त में अर्थात् सिन्ध की विजय के कुछ ही वर्षों के बाद, उम्मिया सम्प्रदाय के धर्मनिष्ठ ख़लीफ़ा उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने जब सिन्ध के लोगों के नाम मुसलमान हो जाने के लिये पत्र भेजा, तब बहुत से राजा मुसलमान हो गए।[1]

इसी प्रकार मलाबार, मालदीप और कुछ दूसरे टापुओं में भी हमें यही बात दिखाई देती है। हमने इस प्रकार की बहुत सी घटनाओं का अपने "हिन्दोस्तान में इस्लाम" नामक लेख में विस्तार सहित वर्णन किया है जो आगे दिया गया है, इस लिये उन बातों को यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

समनियः और हसरियः

ऊपर एक जगह यह कहा जा चुका है कि प्रसिद्ध दार्शनिक और वक्ता निज़ाम मोतज़ली पर, जो हिजरी दूसरी शताब्दी के अन्त (ईसवी आठवीं शताब्दी) में हुआ था, और ख़लीफ़ा मामूँ रशीद का गुरू था, उसके शत्रुओं ने कुछ झूठे अभियोग लगाए थे। उनमें

---

[1] फ़ुतूहुल् बुल्दान; बिलाज़ुरी। "फ़तह सिन्ध" (सिन्ध की विजय) का प्रकरण।

से एक अभियोग यह भी था कि वह जवानी में मजूसियों और समनियों के साथ रहा था और "तकाफ़ओ अदिल्ला" का सिद्धान्त उसने समनियों से सीखा था। साथ ही एक सूची भी दी गई है कि अमुक सिद्धान्त अमुक सम्प्रदाय से और अमुक सिद्धान्त अमुक सम्प्रदाय से सीखा था। जो हो; यह बात कई पुस्तकों में एक ही तरह से लिखी गई है। पर केवल एक शब्द में हर जगह नया पाठ है। सब से पुरानी पुस्तक, जिसमें मुझे ये बातें मिली हैं अब्दुल क़ादिर बग़दादी (मृत्यु सन् ४२९ हि० ; १०३७ ई०) की किताबुल् फ़रक बैनल् फ़िरक है। इस पुस्तक में यह शब्द समतियः (सभनियः) लिखा है। पर एक प्रामाणिक हदीस जाननेवाले और इतिहास लेखक ने, जिसका नाम समआनी है और जिसकी मृत्यु सन् ५६२ हि० में हुई थी, यह लेख ज्यों का त्यों उद्धृत किया है। पर उसमें समनियः की जगह पर "हसरियः" लिखा है, जैसा कि उसकी किताबुल् अन्साब की उस पुरानी प्रति में है, जिसे गब मेमोरियल, लन्दन ने सन् १९१२ ई० में जिंकोग्राफ के द्वारा ज्यों का त्यों छापा है। हसरियः नाम के किसी सम्प्रदाय का अभी तक पता नहीं चला है। और शायद इसी लिये किसी ने इसको दहरिया कर दिया है, जैसा कि मौलाना शिब्ली के "इल्मुल् कलाम" के उद्धरण में है। पर यह पाठ स्पष्ट और सार्थक है। इस समनियः और हसरियः के अन्तर पर मैं बहुत देर तक विचार करता रहा; और अन्त में ईश्वर की कृपा से एक परिणाम पर पहुँच कर मुझे पूरा सन्तोष हो गया। वास्तव में समआनी की प्रति में जो हसरियः शब्द है, वह मूल में ख़िज़रियः था। इस ख़िज़रियः शब्द के "ख़े" और "ज़्वाद" पर की दोनों बिन्दियाँ लेखकों ने उड़ा दी हैं, जिससे खिजरियः का हसरियः हो गया। इस परिणाम तक पहुँचने में बीच के जिस सम्बन्ध ने सहायता दी, वह इमाम समआनी के समय के दार्शनिक और हदीस के पंडित

शहरिस्तानी का यह विचार था कि—"बुद्धके विषय में जो बातें कही जाती हैं, यदि वह ठीक हों, तो वह बुद्ध उस खिज़्र से मिलते जुलते हैं जिनका अस्तित्व मुसलमान ज्योतिषी और मेस्मराइज़र मानते और बतलाया करते हैं।'[1] इससे यह पता चला कि बुद्ध को खिज़्र मानकर लोगों ने बौद्ध मतवालों का नाम खिज़रियः रख लिया था। इसीसे समआनी ने निज़ाम के वर्णन में इस मतवालों का नाम खिज़रियः लिख दिया। इसी आधार पर बग़दादी का समनियः और समआनी का खिज़रियः कहना एक ही बात है।

मुहम्मिरा

अरबी पुस्तकों में बौद्धों का एक तीसरा नाम मुहम्मिरा भी है, जिसका अर्थ है लाल कपड़े पहननेवाले।[2] या तो इससे गेरुए रंग से अभिप्राय हो और या केसरिया रंग से। इस धर्म के साधु इसी रंग से पहचाने जाते थे।

बुद्ध और बुत

इस अवसर पर एक और शब्द का भी विचार कर लेना आवश्यक है; और वह शब्द "बुत" है, जिससे बुत-परस्त (मूर्त्तिपूजक) और बुतख़ाना (मन्दिर) शब्द बने हैं। साधारणतः लोग "बुत" को फ़ारसी का शब्द समझते हैं। पर वास्तव में "बुद्ध" शब्द से बुद और फिर बुद से बुत शब्द बना है। बुद्ध की मूर्त्ति की पूजा हुआ करती थी; इस लिये फ़ारसी में बुद शब्द का अर्थ ही बुत या

---

[1] मिलल व नहल; शहरिस्तानी; तीसरा खंड; पृ० २४२ मिलल व नहल की इब्न हजन वाली टीका।

[2] किताबुल् हिन्द; बैरूनी पृ० १६१।

मूर्त्ति हो गया। इसी लिये अरबी में इस बुत को "बुद" कहते हैं और इसका बहुवचन रूप "बुदूह" होता है।[१]

भारत में सिसली की मूर्त्ति

अरब लोग यह बात अच्छी तरह जानते थे कि मूर्त्तियों आदि के ग्राहक लोग अधिकतर भारत के ही लोग होते हैं। इसी लिये लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि अमीर मुआविया ने (सन् ४६ हि० में) जब सिसली (इटली) पर चढ़ाई की, तब वहाँ उसको सोने की मूर्त्तियाँ मिलीं। उसने सोचा कि इन मूर्त्तियों में जितना सोना है, उसके मूल्य के सिवाय उन मूर्त्तियों की बनवाई और कारीगरी का मूल्य भी मिल जाय। इस लिये उसने उन मूर्त्तियों को भारत भेजकर उन्हें बेचना चाहा। कुछ इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि मुसलमानों ने इस विचार का विरोध किया ; इस लिये इस विचार के अनुसार काम नहीं हुआ।[२] पर बैरूनी का कहना है कि वह मूर्त्तियाँ भारत में लाई गईं और यहाँ बेची गईं।[३] सम्भव है कि बैरूनी ने यह बात वाक़दी के उस प्रवाद के आधार पर लिखी हो, जिसे बिलाज़ुरी ने भी[४] फ़ुतूहुल् बुल्दान में उद्धृत किया है।

जो हो, अरब और भारत के ये धार्मिक सम्बन्ध रंग लाए और दोनों पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ने का अवसर आया। कम से

---

[१] देखो फ़ेहरिस्त इब्न नदीम ; पृ० ३४७ और सफ़रनामा सुलैमान ; पृ० ५५-५७ ; किताबुल् बिदअ वत्तारीख़ ; पृ० ११ और मिलल व नहल ; शहरिस्तानी ; पृ० २४० ।

[२] अमारी सिसली ; निहायतुल् अरब के आधार पर ; पृ० ४२६ ।

[३] किताबुल् हिन्द ; बैरूनी पृ० ६० ।

[४] फ़ुतूहुल् बुल्दान ; बिलाज़ुरी ; पृ० ३२५ ; (लीडन)।

कम इतना तो अवश्य हुआ कि दोनों को एक दूसरे के धर्म की कुछ न कुछ जानकारी हो गई। मेरा विचार यह है कि उस समय भारत में बौद्धधर्म का बहुत जोर था; और बौद्धों पर अरबों के धर्म का अधिक प्रभाव पड़ा था। यह प्रभाव सबसे अधिक पहले उन रास्तों पर देखलाई पड़ता है, जिन रास्तों से अरब व्यापारी आया जाया करते थे; अर्थात् कारोमंडल, मलाबार और कोलम से लेकर कच्छ और गुजरात तक और उधर सिन्ध से लेकर काश्मीर तक अरबों का यह प्रभाव अधिक दिखाई देता है।

उधर दक्षिणी भारत और भारत के दक्षिणी टापुओं से अरबों के सम्बन्ध सबसे अधिक थे। इसका कारण व्यापार तो था ही, पर दूसरा कारण यह भी था कि लंका में जो पुराने चरण चिह्न हैं, उनके दर्शनों के लिये भी अरब लोग अधिक खिंचकर आते थे।

अरब और भारत दोनों का मिला हुआ एक पवित्र स्थान

प्रायः सब लोग यह बात जानते हैं कि सरन्दीप, सीलोन या लंका के एक पहाड़ की एक चट्टान पर पैरों का एक चिह्न है। ईश्वर जाने कब से इस चरण चिह्न पर लोगों का विश्वास और श्रद्धा है। और सबसे विलक्षण बात यह है कि पुराने मुसलमान अरब, बौद्ध और साधारण हिन्दू तीनों ही इस चरण-चिह्न पर हृदय से श्रद्धा और विश्वास रखते आए हैं; और यह एक ऐसी वस्तु है जिसकी दूसरी उपमा धार्मिक संसार में नहीं मिल सकती। मुसलमान इसको हज़रत आदम का चरण-चिह्न समझते हैं और इसका आदर करते हैं। बौद्ध इसको शाक्यमुनि का चरण-चिह्न और हिन्दू शिवजी (विष्णु ?) का चरण-चिह्न समझते हैं और उसकी पूजा करते हैं। दूर दूर से लोग यात्रा के लिये वहाँ जाते हैं। मुसलमान अरब यात्रियों और

इराक़ के फ़क़ीरों को उसकी ज़ियारत या दर्शन करने का बहुत शौक था। समुद्र की यात्रा करनेवाले प्रायः सभी अरब यात्रियों ने इसका वर्णन किया है और इसकी ज़ियारत या दर्शन का शौक उन्हें वहाँ तक खींच ले गया है। अन्त में इसी कारण इस टापू में मुसलमान फ़क़ीरों का बहुत अधिक आना जाना होने लगा; और उनके इस आने जाने के कारण इस्लाम के पैर वहाँ जम गए। इब्न बतूता के समय में वहाँ का राजा हिन्दू था; पर चरण-चिह्नवाले पहाड़ के पास ख़्वाजा ख़िज्र की गुफ़ा भी दिखाई देती थी। कहीं बाबा ताहिर की गुफ़ा मिलती थी। चीलाऊ (सलेम) में हाथी बहुत होते थे। पर कहते हैं कि एक शीराज़ी वृद्ध महात्मा शेख़ अब्दुल्ला ख़फ़ीफ़ (मृत्यु सन् ३३१ हि०) के आशीर्वाद से वे किसी को नहीं सताते। इसी लिये जब से इन महात्मा का यह चमत्कार दिखाई देने लगा, तब से वहाँ के मूर्त्तिपूजक भी मुसलमानों का आदर करते हैं। "वे उन्हें अपने घरों में ठहराते हैं। और अपने बाल बच्चों में उनको रहने देते हैं। वे अब तक (इब्न बतूता के समय तक) शेख़ अब्दुल्ला ख़फ़ीफ़ के नामका आदर करते हैं।"

भारत में इस्लाम

इस प्रकार के व्यापारिक, सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धों का परिणाम यह हुआ कि सिन्ध, गुजरात, कारोमंडल, मलाबार, मालदीप, सरन्दीप और जावा में इस्लाम धीरे धीरे अपने पैर बढ़ाने लगा। इन टापुओं में एक ओर हिन्दुओं और दूसरी ओर चीनियों के प्रभाव से बौद्धमत फैला हुआ था। पर हर शताब्दी में भूगोल और यात्रा-विवरणों की जो नई पुस्तकें लिखी गई थीं, उनको देखने से यह पता लगता है कि बिना लड़ाई भिड़ाई के बहुत ही शान्ति और चैन के साथ यहाँ इस्लाम के प्रभाव बढ़ते जाते हैं और दोनों जातियों

को एक दूसरी के सम्बन्ध की बातें जानने का अवसर मिलता जाता है। अब इस समय की कुछ घटनाएँ देकर यह प्रकरण समाप्त किया जायगा।

पंजाब या सीमा प्रान्त के एक राजा का मुसलमान होना

बिलाज़ुरी, जो हिजरी तीसरी शताब्दी (ईसवी नवीं शताब्दी) का इतिहास-लेखक है, एक स्थान पर लिखता है कि काश्मीर, काबुल और मुलतान के बीच में असीफान (असीवान)[1] नाम का एक नगर था। वहाँ के राजा का लाडला लड़का बहुत बीमार हुआ। राजा ने मन्दिर के पुजारियों को बुलाकर कहा कि इसके कुशलमंगल के लिये प्रार्थना करो। पुजारियों ने दूसरे दिन आकर कहा कि प्रार्थना की गई थी और देवताओं ने कह दिया है कि यह लड़का जीता रहेगा। संयोग से इसके थोड़ी ही देर बाद वह लड़का मर गया। राजा को बहुत अधिक दुःख हुआ। उसने उसी समय जाकर मन्दिर गिरा दिया, पुजारियों को मार डाला और नगर के मुसलमान व्यापारियों को बुलवाकर उनसे उनके धर्म का हाल पूछा। उन्होंने इस्लाम के सिद्धान्त बतलाए। इसपर राजा मुसलमान हो गया।[2] बिलाज़ुरी कहता है—"यह घटना ख़लीफ़ा मोतसिम बिल्लाह के समय में हुई थी।" और मोतसिम बिल्लाह का समय सन् २१८ से २२७ हि० तक है।

---

[1] अमीर ख़ुसरो ने खजायनुल् फ़ुतूह में सेवान नाम के एक किले का नाम लिया है, जो दिल्ली से सौ फरसंग की दूरी पर था और सन् ७०८ में वहाँ का राजा शीतलचन्द था।

[2] फ़ुतूहुल् बुल्दान; बिलाज़ुरी; पृ० ४४६।

अरबों और हिन्दुओं में धार्मिक शास्त्रार्थ

दोनों के आपस के सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ चुके थे कि अरब मुसलमानों और हिन्दुओं में बल्कि बौद्धों में भी मित्रों की भाँति धर्म सम्बन्धी शास्त्रार्थ होते थे। मोतसिम के पिता हारूँ रशीद (हिजरी दूसरी शताब्दी का अन्त) से भारत के किसी राजा ने कहला भेजा कि आप अपने धर्म के किसी विद्वान् को हमारे पास भेज दीजिए, जो आकर हमें इस्लाम के सम्बन्ध की सब बातें बतलावे और हमारे सामने हमारे एक पंडित से शास्त्रार्थ करे। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि सिन्ध के पास किसी राजा के यहाँ बौद्धधर्म का एक विद्वान् पंडित था। उसने राजा को शास्त्रार्थ कराने के लिये तैयार किया था। इसपर राजा ने हारूँ रशीद से कहला भेजा था कि मैंने सुना है कि आपके पास तलवार के सिवा और कोई ऐसी चीज़ या बात नहीं है, जिससे आप अपने धर्म की सचाई सिद्ध कर सकें। अगर आपको अपने धर्म की सचाई का विश्वास हो, तो आप अपने यहाँ के किसी विद्वान् को भेजिए जो यहाँ आकर हमारे पंडित से शास्त्रार्थ करे। ख़लीफ़ा ने हदीस जाननेवाले एक अच्छे विद्वान् को इस काम के लिये भेज दिया। जब पंडित अपनी बुद्धि के अनुसार आपत्तियाँ करने लगा, तब मुल्ला उसके उत्तर में हदीसें रखने लगे, पंडित ने कहा कि इन हदीसों को तो वही मान सकता है, जो तुम्हारे धर्म को मानता हो, कुछ लोग यह भी कहते हैं कि पंडित ने पूछा कि अगर तुम्हारा खुदा सब चीज़ों पर अधिकार रखता है, तो क्या वह अपने जैसा कोई दूसरा खुदा भी बना सकता है? उन भोले भाले मुल्ला साहब ने कहा कि इस प्रकार की बातों का उत्तर देना हमारा काम नहीं है। यह कलामवाले पंडितों या उन लोगों का काम है जो धर्म्म की बातों को तर्क और बुद्धि से सिद्ध करना जानते हैं।

राजा ने उन मुल्ला साहब को लौटा दिया ; और हारूँ रशीद से कहला भेजा कि पहले तो मैंने बड़े लोगों से सुना था और अब अपनी आँखों से भी देख लिया कि आपके पास अपने धर्म की सचाई का कोई प्रमाण नहीं है। ख़लीफ़ा ने कलाम[1] वालों को बुलवाकर यह प्रश्न उनके सामने रखा। उनमें से छोटी अवस्था के एक बालक ने उठकर कहा—"हे मुसलमानों के स्वामी, यह आपत्ति ठीक नहीं है। अल्लाह या ईश्वर तो वह है, जिसको न किसी ने बनाया हो, न पैदा किया हो और जो न किसी का सिरजा हुआ हो। अब यदि वह अपने जैसा कोई दूसरा अल्लाह पैदा करेगा, तो वह उसके जैसा किसी तरह नहीं हो सकेगा ; क्योंकि आख़िर वह उसीका बनाया हुआ होगा। फिर दूसरी बात यह है कि ठीक ख़ुदा की तरह का कोई और ख़ुदा हो जाय, तो इसमें ख़ुदा का अपमान है। ख़ुदा का किसी प्रकार अपमान हो नहीं सकता ; और ख़ुदा को अपना अपमान करने का अधिकार नहीं है। यह प्रश्न तो ऐसा ही है, जैसे कोई कहे कि क्या खुदा मूर्ख होसकता है ? क्या ख़ुदा मर सकता है ? क्या ख़ुदा खा सकता है, या पी सकता है, या सो सकता है ? सभी लोग जानते हैं कि ईश्वर इनमें से कुछ भी नहीं कर सकता ; क्योंकि इससे उसकी प्रतिष्ठा में बाधा पड़ती है—यह काम उसकी शान के ख़िलाफ़ है।" सब लोगों ने यह उत्तर पसन्द किया ; और ख़लीफ़ा ने चाहा कि उस पंडित से शास्त्रार्थ करने के लिये यही लड़का हिन्दुस्तान भेजा जाय। पर अनुभवी लोगों ने निवेदन किया कि हुजूर, यह अभी बिलकुल बच्चा है। यदि इसने एक बात उत्तर दे दिया, तो यह आवश्यक नहीं कि सभी बातों का उत्तर दे सके। इस लिये ख़लीफ़ा ने कलाम (तर्क) के जानकार एक दूसरे विद्वान् को

---

[1] धर्म्म की बातों को बुद्धि और तर्क से ठीक सिद्ध करना "कलाम" कहलाता है। इसमें अभिप्राय प्रायः तर्कशास्त्र से है।—अनुवादक।

चुनकर भारत भेजा। एक प्रवाद यह है कि वह बौद्ध इस विद्वान् से किसी समय शास्त्रार्थ कर चुका था और हार चुका था। और दूसरा प्रवाद यह है कि उस बौद्ध ने रास्ते में ही एक आदमी भेजकर यह जानना चाहा कि यह खाली धार्मिक मुल्ला है या तर्कशास्त्र भी जानता है। जब उसे पता लगा कि यह तर्कशास्त्र का भी बहुत बड़ा पंडित है, तब दोनों प्रवादों में है कि उस पंडित ने समझ लिया कि हम इससे शास्त्रार्थ नहीं कर सकते। इस लिये उसने उस मुसलमान को राजा के दरबार में पहुँचने ही न दिया और रास्ते में ही उसका ज़हर दिलवा दिया।[१]

इस कहानी की सब बातें चाहे सच हों या न हों, पर इससे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि इन दोनों जातियों में धार्मिक सम्बन्ध और मेल जोल इतना बढ़ गया था।

एक शास्त्रार्थ करनेवाला राजा

इतिहास-लेखक मसऊदी, जो सन् ३०३ हि० में भारत आया था, खम्भात के प्रकरण में लिखता है—

"मैं जब सन् ३०२ हि० में यहाँ आया, तब यहाँ का हाकिम एक बनिया था जो ब्राह्मणधर्म का माननेवाला था। वह महानगर के राजा वल्लभराय के अधीन था। उसको शास्त्रार्थ का बहुत शौक था। उसके नगर में बाहर से जो नए मुसलमान या दूसरे धर्म के लोग आते थे, उनसे वह शास्त्रार्थ करता था।"[२]

---

[१] अहमद बिन यहिया अल् मुर्तजा कृत किताबुल् मनियः वल् अमल .फ़ी शरह किताबुल् मिलल व नहल। जिक्रुल् मोतजिला का प्रकरण पृ० ३१-३४ (हैदराबाद दक्खिन में सन् १३१६ हि० में प्रकाशित।)

[२] मुरूजुज़्ज़हब; मसऊदी; पहला खंड; पृ० २५४ (लीडन)।

बौद्धों से एक और शास्त्रार्थ

बौद्ध मतवाले केवल वही ज्ञान मानते थे जो बाहरी इन्द्रियों से प्राप्त होता था; और किसी प्रकार से होनेवाले ज्ञान को नहीं मानते थे। उन दिनों (हिजरी दूसरी शताब्दी का मध्य) बसरा में अनेक धर्मों और सम्प्रदायों के लोग रहा करते थे। वहाँ वासिल बिन अता, जहम बिन सफवान, और बौद्धों से इस विषय में शास्त्रार्थ हुआ था। अन्त में वासिल ने अपने तर्कों से उनको हरा दिया।[1]

एक मुसलमान का मूर्त्तिपूजक हो जाना

सन् ३७० हि० का एक अरब यात्री, जो जेरूसलम का रहने वाला था, सिन्ध के मन्दिरों का हाल लिखता हुआ कहता है— "हबरूआ में पत्थर की दो विलक्षण मूर्त्तियाँ हैं। वह देखने में सोने और चाँदी की जान पड़ती हैं। कहते हैं कि यहाँ आकर जो प्रार्थना की जाती है, वह पूरी हो जाती है। इसके पास हरे रंग के पानी का एक सोता है, जो बिलकुल तूतिया सा जान पड़ता है। यह पानी घावों के लिये बहुत लाभदायक है। यहाँ के पुजारियों का ख़र्च देवदासियों से चलता है। बड़े बड़े लोग यहाँ लाकर अपनी लड़कियाँ चढ़ाते हैं। मैंने एक मुसलमान को देखा था जो उन दिनों मूर्त्तियों की पूजा करने लगा था। फिर पीछे से नैशापुर जाकर वह मुसलमान हो गया। ये दोनों मूर्त्तियाँ जादू की हैं। इन्हें कोई छू नहीं सकता।"[2]

---

[1] किताबुल् मिलल व नहल की मुर्त्तजा ज़ैदी वाली शरह या टीका; वासिल बिन अता का वर्णन। (हैदराबाद से प्रकाशित।)

[2] अहसनुत् तकासीम फी मारफ़ति अक़ालीम; बुशारी; पृ० ४८३।

हज़ार बरस पहले कुरान का भारतीय भाषा में अनुवाद

आज लोग भारतीय भाषाओं में कुरान का अनुवाद करने लगे हैं। पर यह सुनकर लोगों को बहुत आश्चर्य होगा कि आज से प्रायः एक हज़ार बरस पहले एक हिन्दू राजा की आज्ञा से कुरान का हिन्दी या सिन्धी में अनुवाद किया गया था। सन् २७० हि० में अलरा (सिन्ध का अलोर नामक स्थान ?) के राजा महरोग ने, जिसका राज्य कश्मीर बाला (ऊपरी काश्मीर अर्थात् ख़ास काश्मीर) और कश्मीर ज़ेरीं (नीचे का काश्मीर, अर्थात् पंजाब) के बीच में है और जो भारत के बड़े राजाओं में से है, मन्सूरा (सिन्ध के अमीर अब्दुल्लाह बिन उमर को लिख भेजा कि आप किसी ऐसे आदमी को हमारे पास भेज दें जो हमको हिन्दी में इस्लाम का धर्म समझा सके। मन्सूरा में इराक़ का एक मुसलमान था, जो बहुत होशियार, तेज समझदार और कवि था। वह भारत में ही पला था; इस लिये वह यहाँ की कई भाषाएँ जानता था। अमीर ने उससे कहा कि राजा की ऐसी इच्छा है। वह तैयार हो गया। उसने राजा की भाषा में एक कविता लिखकर राजा के पास भेजी। राजा ने वह कविता सुनकर बहुत पसन्द की और यात्रा के लिये व्यय भेजकर उसे अपने पास बुलवाया। वह तीन बरस तक राजा के दरबार में रहा; और उसकी इच्छा से उसने कुरान का वहाँ की भारतीय भाषा में अनुवाद किया। राजा नित्य अनुवाद सुनता था और उसपर उसका बहुत अधिक प्रभाव होता था।

एक गुजराती राजा का अनुपम धार्मिक न्याय

हिजरी छठी शताब्दी के अन्त में जब सुलतान ग़ोरी के बाद दिल्ली में शम्सुद्दीन अल्तम्श और सिन्ध में नासिरुद्दीन कबाचा का राज्य था, तब मुहम्मद औफ़ी नाम का एक विद्वान् बुख़ारा से चलकर

भारत आया था; और उसने सम्भवतः सिन्ध के किसी तट मन्सूरा या देबल से निकलकर फ़ारस की खाड़ी, अरब के समुद्र-तट और भारत के कई बन्दरगाहों की यात्रा की थी। इसी बीच में वह खम्भात भी पहुँचा था। इस समय उसकी दो पुस्तकें मिलती हैं। एक में तो फ़ारसी के कवियों का वर्णन है जिसका नाम लबाबुल् अलबाब है और जो नासिरुद्दीन कबाचा के मन्त्री के नाम से (उनके आक्षेप में) लिखी गई है। यह गब सीरीज़ लन्दन में दो खंडों में प्रकाशित हो चुकी है। दूसरी पुस्तक इससे अधिक बड़ी है। उसका नाम जामे उल् हिकायात व लामे उर् रवायात है। इसमें लेखक ने कुछ तो अपने कानों सुनी, कुछ आँखों देखी और कुछ दूसरी पुस्तकों में पढ़ी हुई घटनाओं और कथाओं आदि का अलग अलग शीर्षक देकर वर्णन किया है। यह पुस्तक सुलतान शम्सुद्दीन अल्तम्श के मन्त्री क़वामुद्दीन जुनैदी के नाम से लिखी है और अभी तक छपी नहीं है। इसकी हाथ की लिखी एक प्रति दारुल् मुसन्निफ़ीन के पुस्तकालय में भी रखी है।

मुहम्मद औफ़ी ने इस पुस्तक के दूसरे प्रकरण में, जिसमें राजाओं के सम्बन्ध की घटनाओं का वर्णन है, एक विलक्षण कहानी लिखी है, जिससे पता चलता है कि अरबों के शासन काल में इस देश में हिन्दुओं और मुसलमानों के कैसे सम्बन्ध थे; और हिन्दू राजा अपनी मुसलमान प्रजा के साथ कैसा अच्छा न्याय करते थे। मुहम्मद औफ़ी की यह यात्रा सन् ६६५ हि० से पहले हुई थी। इस लिये जो घटना उसने लिखी है, वह अवश्य उससे पहले की है। और यह वह समय है कि जब गुजरात की ओर केवल सुलतान महमूद के और उसके दो सौ बरस बाद कुत्बुद्दीन ऐबक़ के यों ही साधारण से धावे हुए थे; और इन धावों के सिवा वहाँ किसी इस्लामी शासन का नाम निशान भी नहीं था।

मुहम्मद औफ़ी कहता है—"एक बार मुझे खम्भायत जाना पड़ा, जो समुद्र के किनारे है। वहाँ कुछ धर्मनिष्ठ मुसलमान बसते हैं जो यात्रियों का बहुत आदर सत्कार करते हैं। यह नगर नहरवाला (अहमदाबाद; गुजरात के पास) के राज्य में है। यहाँ कुछ मुसलमान और कुछ उनके विरोधी बसते हैं। जब मैं यहाँ आया, तब मैंने एक कहानी सुनी जो नौशेरवाँ वाली ऊपर की कहानी से मिलती जुलती है। वह कहानी यह है कि राजा जनक के समय में एक मसजिद थी, जिसके ऊपर मिनारा था। उसी मिनारे पर चढ़कर मुसलमान लोग अज़ान देते थे। पारसियों ने हिन्दुओं को भड़काकर मुसलमानों से लड़ा दिया। हिन्दुओं ने वह मिनारा तोड़ दिया और मसजिद गिराकर अस्सी मुसलमानों को मार डाला। मसजिद का इमाम और खुतबा पढ़नेवाला, जिसका नाम अली था, यहाँ से भागकर नहरवाला चला गया। वहाँ उसने राजा के दरबारियों और कर्मचारियों से मिलकर फ़रियाद की; पर किसी ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। यह दशा देखकर इमाम ने यह उपाय किया कि भारतीय भाषा (कदाचित् गुजराती) में यह पूरी घटना एक कविता के रूप में लिखी; और पता लगाया कि राजा शिकार खेलने कब जाता है। जब शिकार का दिन आया, तब इमाम वह कविता लेकर रास्ते में एक झाड़ी में छिपकर बैठ गया। जब राजा उधर से चला, तब इमाम फ़रियादी बनकर समाने आ गया और दुहाई देकर प्रार्थना की कि मेरी यह कविता सुन ली जाय। राजा ने हाथी रोककर कवितावाली वह प्रार्थना सुनी, जिसका उसपर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने वह कविता उस इमाम के हाथ से लेकर अपने एक अधिकारी को दे दी और कहा कि अवकाश के समय यह कविता मुझे फिर दिखलाई जाय। राजा उसी समय शिकार से लौट आया और अपने मन्त्री को बुलवा कर उसने कहा कि मैं तीन दिन तक

महल में रहूँगा और आराम करूँगा। इन तीन दिनों के बीच में किसी काम के लिये मुझे कष्ट न देना। सब काम तुम आप ही कर लेना। यह कहकर राजा महल में चला गया और रात के समय एक तेज साँडनी पर बैठकर खम्भायत की ओर चल पड़ा। नहरवाला खम्भायत से ४० फरसंग है। पर राजा एक दिन रात में इतना मार्ग चलकर वहाँ पहुँच गया और व्यापारी का भेस बनाकर वहाँ उतरा। वह एक एक गली और बाज़ार में घूमा और वहाँ उसने बात की जाँच की। राह चलते लोगों की बातें सुनी। सब लोगों से उसने यही सुना कि मुसलमानों का कोई अपराध नहीं था; व्यर्थ वे बेचारे मारे गए और उनपर बड़ा अत्याचार हुआ। राजा ने उस घटना की पूरी पूरी जाँच करके एक लोटे में समुद्र का पानी भरा और उसका मुँह बन्द करके अपने साथ लेकर चल पड़ा। फिर उसी तरह चौबीस घंटे में वह साँडनी पर बैठकर अपनी राजधानी में आ पहुँचा। सवेरे राजा ने दरबार किया और सब मुकदमे सुने। साथ ही उसने मसजिद के उस इमाम को भी बुलवाया। जब वह दरबार में आया, तब राजा ने उसे आज्ञा दी कि तुम अपना निवेदन पत्र पढ़कर सुनाओ। जब इमाम ने वह प्रार्थनापत्र पढ़ा, तब हिन्दू दरबारियों ने कहा कि यह अभियोग झूठा है और यह दावा बिलकुल गलत है। राजा ने पानी रखनेवाले सेवक से वह लोटा मँगवाया और सब को उसमें का थोड़ा थोड़ा पानी पिलाया; जिसने वह पानी पीया, वह उसे घूँट न सका और बोला कि यह तो समुद्र का खारा पानी है। राजा ने कहा कि इस बारे में मुझे किसी दूसरे पर भरोसा नहीं था; क्योंकि यह धार्मिक विरोध की बात थी। इस लिये मैंने आप जाकर इस बात की जाँच की और मुझे यह बात प्रमाणित हो गई कि इन मुसलमानों पर अवश्य अत्याचार हुआ है। जो लोग मेरी छाया और मेरे राज्य में बसते हों, उनपर कभी ऐसा अत्याचार नहीं होना चाहिए। इसके बाद आज्ञा

दी कि यह अपराध ब्राह्मणों और पारसियों ने किया है; इस लिये उनमें से दो दो आदमियों को दंड दिया जाय; और मुसलमानों को हरजाने में एक लाख बालोतरा (गुजराती सिक्का) दिलवाया, जिससे वे फिर से अपनी मसजिद और मिनारा बनवा लें और इमाम को कपड़े और इनाम दिया। वह मसजिद फिर से बनी और ये इनाम उसमें स्मृति के रूप में रखे गए। हर साल ईद के दिन ये सब इनाम निकाल कर लोगों को दिखलाए जाते हैं।"

मुहम्मद औफ़ी कहता है—"आज (सन् ६६५ हि०) तक ये चीजें वहाँ रखी हुई हैं; और वह पुरानी मसजिद और मिनारा भी बचा हुआ था। पर कुछ दिन हुए, बालो (या बाला) की सेना ने जब गुजरात पर चढ़ाई की, तब यह मसजिद उजाड़ दी। अन्त में सैयद बिन शर्फ़ (किसी अरब व्यापारी) ने अपने धन से इसे फिर बनवाया है और इसके चारों ओर सुनहले गुम्बद बनवाये हैं। इस्लाम की यह स्मृति इस हिन्दू देश में आज तक बनी हुई है।"

मुसलमानों में एकेश्वरवाद

एकेश्वरवाद का सिद्धान्त भी हर एक जाति में किसी न किसी रूप में था। कुछ यूनानी दार्शनिक भी एक अर्थ में यह सिद्धान्त मानते थे। अलेक्ज़ेंड्रिया नगर का नव-अफ़लातूनी दल भी यह सिद्धान्त मानता था; और पुराने यहूदियों तथा ईसाइयों में भी इसका प्रचार था। हिन्दू वेदान्त की सारी इमारत इसी नींव पर बनी है। कुछ मुसलमान सूफ़ी भी यह बात बहुत जोरों से कहते हैं, कि यद्यपि स्वयं एकेश्वरवाद के कई भिन्न भिन्न अर्थ हैं और ईश्वर की एकता की भी बहुत सी व्याख्याएँ की गई हैं और यहाँ तक कि एक व्याख्या के अनुसार वह "हलूल" (अवतार या पुनर्जन्म) का पर्याय बन गया है।

जो हो, हमें यहाँ इस सिद्धान्त का विवेचन नहीं करना है, बल्कि हम इसका इतिहास देखना चाहते हैं। प्रायः यह प्रश्न उठा है कि मुसलमान सूफ़ियों में यह विचार कहाँ से आया। जहाँ तक हमसे जाँच हो सकी है, हमारे पास कोई ऐसा तर्क नहीं है जिससे यह बात प्रमाणित हो सके कि हिन्दू वेदान्त का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ है, यद्यपि इस्लाम में इस विचार का आरम्भ ईसवी तीसरी शताब्दी के अन्त अर्थात् हुसैन बिन मन्सूर हल्लाज के समय से है। और इसकी पूर्णता हिजरी पाँचवीं शताब्दी में मुहीउद्दीन बिन अरबी के समय में दिखाई पड़ती है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि मुसलमान सूफ़ियों पर, भारत में आने के बाद, हिन्दू वेदान्तियों का प्रभाव पड़ा है;[१] पर इस्लामी तसव्वुफ़ (संसार में रहकर भी उससे अलग रहना जो सूफ़ियों का सिद्धान्त है) में इस सिद्धान्त का प्रभाव पहले से जान पड़ता है। वास्तविक बात यह है कि मुसलमानों में मुहीउद्दीन बिन अरबी ही सबसे पहले आदमी हैं, जिन्होंने इस सिद्धान्त का बहुत ज़ोरों से समर्थन किया है। वे स्पेन देश के रहनेवाले थे और उन्हें हिन्दू दर्शनों से परिचित होने का कभी अवसर नहीं मिला था; इस लिये यह समझा जाता है कि उन पर भारतीय वेदान्त का नहीं, बल्कि नव-अ.फ्लातूनी दर्शन का प्रभाव पड़ा था।

---

[१] सम्भवतः हिजरी आठवीं शताब्दी में एक पंडित ने, जो मुसलमान हो गया था, एक सूफ़ी विद्वान के साथ मिलकर संस्कृत की अमृतकुंड नामक पुस्तक का ऐनुल् हयात के नाम से अरबी में अनुवाद किया था। फिर उससे फ़ारसी में और अब फ़ारसी से उर्दू में उसका अनुवाद हुआ है। इसके सिवा दारा ने अपने समय में सर-अकबर के नाम से योग-बाशिष्ठ का फ़ारसी में अनुवाद किया था।

लेकिन जहाँ तक हुसैन बिन मन्सूर हल्लाज का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि वह जिस एकेश्वरवाद का माननेवाला था, वह माननीय सतर्क सूफ़ियों का एकेश्वरवाद नहीं था, बल्कि वह हलूल (अर्थात् एक प्रकार से हिन्दुओं के अवतारवाद) का माननेवाला था। पुराने लेखकों ने उसका वर्णन करते हुए इस बात की पूरी तरह से व्याख्या की है और स्वयं उसकी बनाई हुई किताबुत् तवासीन नामक पुस्तक से भी यही बात सिद्ध होती है। इसके साथ ही यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि वह भारत के जादू, मन्तर और इन्द्रजाल आदि सीखने, या जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, अपने धर्म का प्रचार करने के लिये भारत आया था। इस लिये आश्चार्य नहीं कि वह यहीं से एकेश्वरवाद का सिद्धान्त अपने साथ इराक़ ले गया हो।[1]

हिन्दुओं में निर्गुणवाद

इसके विरुद्ध कुछ ऐसे विचार भी हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि इस्लाम के कारण ही हिन्दुओं में निर्गुणवाद का विचार फैला है और मूर्त्ति-पूजा के विरोधी भाव का प्रचार हुआ है। पर यह विषय आप ही बहुत लम्बा चौड़ा है और किसी दूसरे विषय के परिशिष्ट के रूप में इसपर विचार नहीं किया जा सकता।

---

[1] हल्लाज की पुस्तक किताबुत् तवासीन फ़्रान्स के सूफ़ी साहित्य के विद्वान् और पूर्वीय बातों का अनुसन्धान करनेवाले लूई मैसिनान (Louis Massignan) ने सन् १९१४ में पेरिस में प्रकाशित की है। और उसीके साथ एक खंड में हल्लाज के सम्बन्ध की सब पुरानी बातों और वर्णनों को भी एकत्र कर दिया है। इस पुस्तक में इब्न बाकूयः सूफ़ी शीराज़ी की पुस्तक के जो उद्धरण दिए गए हैं, उन्हीं में हल्लाज के भारत आने की घटना भी लिखी है। देखो पृष्ठ ३१ और ४३ (पेरिस से प्रकाशित)।

समाप्ति

इन थोड़े से पृष्ठों में अरब और भारत के धार्मिक सम्बन्धों का जो दर्पण सामने रखा गया है, पाठक खूब ध्यानपूर्वक देखें कि यद्यपि ये दोनों जातियाँ अपने अपने धर्म की कट्टर माननेवाली थीं, पर फिर भी क्या इन जातियों ने उस शीशे में कहीं बाल आने दिया है? जो बात पहले हो चुकी है, वह क्या अब नहीं हो सकती?

भारत में मुसलमान

विजयों से पहले

लेखक और ग्रन्थ जिनका आधार लिया गया है।

ऊपर जिन पुस्तकों के नाम आ चुके हैं, उनके सिवा इस प्रकरण के लिये सिन्ध के फ़ारसी इतिहासों से भी सहायता ली गई है। दुःख है कि ये पुस्तकें अभी तक छपी नहीं हैं। हाँ कई पुस्तकालयों में हाथ की लिखी प्रतियाँ मिलती हैं। ईलियट साहब ने अपने इतिहास के पहले खंड में इनके आवश्यक उद्धरण दे दिए हैं; और वही इस समय मेरे सामने हैं। उन पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) चचनामा

अरबी भाषा में यह सिन्ध का सब से पुराना इतिहास था, और इसका नाम तारीख़ुस् सिन्द वल् हिन्द है। मुहम्मद अली बिन हामिद बिन अबूबकर कूफ़ी ने नासिरुद्दीन कबाचा के शासन काल (सन् ६१३ हि० ; सन् १२१६ ई०) में सिन्ध के ऊच नामक स्थान में बैठकर फ़ारसी में इसका अनुवाद किया था। इसकी मूल अरबी प्रति नहीं मिलती; पर केवल मुहम्मद बिन क़ासिम की मृत्यु और राजा दाहर की लड़की के क़ैद होने की घटना ही ऐसी है, जो इतिहास की दृष्टि से ठीक नहीं है। बाकी और सब बातें प्रायः ऐसी ही हैं जिनका अरब के पुराने इतिहासों से समर्थन होता है।

(२) तारीख़ मासूमी

यह मीर मुहम्मद मासूम का लिखा हुआ सिन्ध का इतिहास है और अकबर के समय में सन् १०११ हि० में लिखा गया था

(३) तारीख़ ताहिरी

मीर ताहिर बिन सैयद हसन कन्धारी ने अपने सिन्ध में रहने के समय (१०३० हि० ; सन् १६२४ ई०) में सिन्ध का यह इतिहास लिखा था।

(४) बेगलारनामा

यह पुस्तक शाह क़ासिम ख़ाँ बिन सैयद क़ासिम बेगलार के नाम से सन् १०१७ हि० से सन् १०३६ हि० तक में लिखी गई थी।

(५) तोहफतुल् किराम

यह सब से अन्तिम पुस्तक है, जो अली शेर ने सन् ११८१ हि० (१७६७ ई०) में लिखी थी।

इस प्रकरण में जो बातें इकट्ठी की गई हैं, उनके सम्बन्ध में उर्दू की भी दो पुस्तकें हैं जिनका विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक है।

(१) तारीख़ सिन्द—लखनऊ के मौलाना अब्दुलहलीम शरर ने सन् १९०९ ई० में ईलियट कृत सिन्ध के इतिहास के पहले खंड के आधार पर और दूसरे कई ग्रन्थों के आधार पर और कुछ बातों की स्वयं जाँच करके भी, इस्लामी सिन्ध का बहुत ही विस्तृत इतिहास दो खंडों में लिखा था। जानने योग्य जितनी आवश्यक बातें हैं, वे सब इसमें इकट्ठी कर दी गई हैं। पर अब इस पुस्तक का नए ढंग से सम्पादन होना आवश्यक है। साथ ही अपने इस इतिहास में मौलाना ने ईलियट पर बहुत अधिक भरोसा किया है और कठिन

समस्याओं को सुलझाने में ऐसे अनुमानों से काम लिया है, जो मेरी समझ में ठीक नहीं हैं। पाठकों को आगे चलकर इस प्रकार की बातें मिलेंगी। जहाँ दूसरी पुस्तकों का उल्लेख किया है, वहाँ न तो पृष्ठ संख्या दी है और न खंड या प्रकरण आदि का नाम दिया है। इस लिये इस पुस्तक में दी हुई घटनाओं के सत्यासत्य का निर्णय करना बहुत ही कठिन है।

(२) उल्लेख के योग्य दूसरी पुस्तक दिल्ली के स्वर्गीय पीरज़ादा मुहम्मद हुसैन साहब एम० ए० की है। यह इब्न बतूता के यात्रा-विवरण के उस दूसरे खंड का उर्दू अनुवाद है, जो भारत के सम्बन्ध में है। इसमें विशेषता यह है कि इब्न बतूता ने जिन स्थानों और व्यक्तियों का उल्लेख किया है, उनके सम्बन्ध में इसमें अनुवादक ने अँगरेज़ी अनुवाद और स्वयं अपनी जाँच के आधार पर टिप्पणियाँ दी हैं।

हमारे स्कूलों और कालेजों में भारत का जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह एक विशेष उद्देश्य सामने रखकर पढ़ाया जाता है; और उसी उद्देश्य को सामने रखकर अँगरेज़ी में भारत के इतिहास की पुस्तकें लिखी जाती हैं। इन पुस्तकों में प्राचीन भारत का जो इतिहास मिलता है, उसे एक प्रकार से सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियों के इतिहास का एक खंड कहना चाहिए। उसमें यही बतलाया जाता है कि सिकन्दर की इसी चढ़ाई से भारत की काया पलट हो गई, इसको विद्याओं और कलाओं की सम्पत्ति मिली और ऐतिहासिक जगत में इसने स्थान पाया। सिकन्दर की चढ़ाई और यात्रा के एक एक रास्ते का पता लगाना, बिगड़े हुए यूनानी नामों को ठीक करना और उनके उलटे पुलटे वर्णनों को ठीक करके और क्रम से लगाकर उपस्थित करना ही मानों भारत का पुराना इतिहास है। यही इतिहास लेखक जब इस्लाम और भारत के इतिहास का आरम्भ करेंगे, तो

थोड़ी सी पंक्तियों में जंगली अरबों का और फिर एक भीषण रक्त-पिपासु (ईश्वर रक्षा करो) पैग़म्बर का और उसके उत्तराधिकारियों की चढ़ाइयों का वर्णन करके एक ही दो पृष्ठ में अरब से सीधे ग़ज़नी पहुँच जायँगे। यहाँ महमूद की सेना भारत पर जहाद (धर्म्म के प्रकार या रक्षा के लिये युद्ध) करने के लिये तैयार मिलती है। उसीको लेकर वे तुरन्त पंजाब सिन्ध और गुजरात पहुँच जाते हैं और लूट मार करके उसे लौटा ले जाते हैं। फिर डेढ़ सौ बरस के बाद शहाबुद्दीन ग़ोरी को भारत में लाते हैं और उसके बाद से मध्यकालीन भारत के इतिहास का क्रम चल पड़ता है। यहाँ प्रश्न यह होता है कि इतनी दूरी और अन्तर होने पर भी यूनान की सीमा तो आकर भारत से मिल जाती है पर इतनी समीपता के होते हुए भी क्या भारत और अफ़गानिस्तान से एक ओर और मकरान तथा सिन्ध से दूसरी ओर कोई सीमा नहीं मिलती थी? और क्या इन देशों में आपस में सन्धि और विग्रह, मेल और लड़ाई के सम्बन्ध नहीं थे? और सीमा प्रान्त के इन कबीलों के मुसलमान होने से पहले इन सब बातों का क्रम था या नहीं? क्या इन सब बातों की जाँच करना और इनका टूटी हुई कड़ियों को आपस में जोड़ना या मिलाना और उनसे कोई परिणाम निकालना आवश्यक है या नहीं?

इन पुस्तकों को पढ़ने और इन इतिहासों को देखने से यही जान पड़ता है कि महमूद ग़ज़नवी के समय तक एक भी मुसलमान म्लेच्छ का पैर इस पवित्र भूमि पर नहीं पड़ा था, और मुसलमानों तथा हिन्दुओं में आपस में न तो किसी प्रकार का सम्बन्ध था, न जान पहचान थी और न आना जाना था, यद्यपि पिछले पृष्ठों को पढ़नेवाले पाठक यह बात अच्छी तरह समझ गए होंगे कि इन दोनों जातियों में कितने भिन्न भिन्न प्रकार के सम्बन्ध चले आते थे।

भारत और ख़ैबर की घाटी के उस पार के देशों में सदा से बराबर लड़ाई और मेल के सम्बन्ध चले आते थे। इस्लाम से पहले इन देशों की यह दशा थी कि जब कभी काबुल का बादशाह बलवान् हो गया, तब उसने वैहिन्द और पेशावर तक अधिकार कर लिया, और जब भारत के राजाओं को अवसर मिला, तब उन्होंने काबुल और कन्धार तक अपनी सीमा बढ़ा ली। यही दशा सिन्ध की ओर भी थी। कभी ईरान के बादशाह ने मकरान से सिन्धु नद तक अधिकार कर लिया, और कभी सिन्ध के राजा ने बलोचिस्तान और मकरान लेकर ईरान की सीमा से सीमा मिला दी। ईसवी सातवीं शताब्दी तक बराबर यही हाल होता था। उसी समय से मुसलमान लोग देशों को जीतते हुए इधर बढ़ने लगे और इन देशों के कबीले और जातियाँ मुसलमान होने लगीं। उधर इस्लाम का सब से पहला सामानी राज्य था, जिसने बुख़ारा को अपनी राजधानी बनाया। पर उसके समय में भी लोगों का ध्यान काबुल से आगे न जा सका। इसके बाद सफारी राज्य हुआ, जो थोड़े ही दिनों तक रहा। उसने काबुल और कन्धार से आगे पैर बढ़ाए थे। अब्बासी ख़िलाफ़त ने सिन्ध का नाम मात्र का शासन भी इसी को सौंप दिया। इसके बाद सामानी राज्य की सीमाओं से हटकर उसके एक तुर्क अधिकारी अलप्तगीन ने अपने स्वामी की सैनिक चढ़ाई और दंड से बचने के लिये इस दूर के इलाक़े में अधिकार जमाने का प्रयत्न आरम्भ किया; और ग़ज़नी में अपने स्वतन्त्र राज्यकी राजधानी बनाई। यह हिजरी चौथी शताब्दी के मध्य की बात है। इसी ग़ज़नी राज्य का, चाहे दूसरा कहो चाहे तीसरा, राजा महमूद ग़ज़नवी है। उसने अपने तेंतिस बरस के राज्य में ग़ज़नी के चारों ओर के देशों और राज्यों को, चाहे वे मुसलमान थे और चाहे नहीं थे, अपने भीषण आक्रमणों से विवश करके और अपने छोटे से पैतृक राज्य में मिलाकर एक बहुत

बड़े साम्राज्य की नींव डाल दी। इसने ग़ज़नी के एक ओर क़ाशगर के इस्लामी ऐलख़ानी राज्य को, दूसरी ओर स्वयं अपने स्वामी सामानियों के राज्य को, तीसरी ओर दैलमियों के राज्य को, तबरिस्तान के राज्य आलजियार को, पूर्व की ओर ग़ोरियों के देश को, जो अब तक न तो मुसलमान थे और न कभी किसी राज्य के अधीन रहे थे; और इसके बाद पूर्व में मुलतान और सिन्ध के अरब अमीरों को और फिर लाहौर तथा भारत के कुछ राजाओं को उलट पुलटकर ग़ज़नी का साम्राज्य स्थापित किया था। इनमें से भारत और ग़ोर के अतिरिक्त जितने राज्य थे, वे सब मुसलमानों के ही थे।

हम यहाँ जिस विषय पर विचार करना चाहते हैं, उसमें इन सब बातों का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता; इस लिये हमने केवल प्रसंगवश ये थोड़ी सी पंक्तियाँ यहाँ दे दी हैं। हाँ, भारत का इतिहास लिखनेवालों का ध्यान हम इस ओर दिलाते हैं कि वे महमूद से पहले के अफ़ग़ानिस्तान और भारत के सम्बन्धों की परिश्रम पूर्वक जाँच करें और आवश्यक सामग्री एकत्र करके लोगों के सामने कुछ नई बातें रखें।

ऊपर के वर्णन से पाठकों ने यह समझ लिया होगा कि मुसलमानों ने भारतीय राजाओं के साथ जो युद्ध किए थे, वे केवल धार्मिक आवेश में आकर नहीं किए थे, बल्कि अनेक शताब्दियों से आपस में लड़ाई झगड़ों की जो एक शृंखला चली आती थी, यह भी उसीकी एक कड़ी थी।

यह तो उत्तरी भारत का हाल था; पर दक्षिणी भारत की दशा कुछ और ही थी। सन् ४१६ हि० (सन् १०६४ ई०) में महमूद ग़ज़नवी, सन् ५७४ हि० (११७८ ई०) में शहाबुद्दीन ग़ोरी और सन् ५९२ हि० (११९६ ई०) में क़ुत्बुद्दीन ऐबक़ गुजरात पर धावे करके बादल की तरह आए और आँधी की तरह निकल गए। हाँ इसके

सौ बरस बाद बघेले राजा और उसके मन्त्री माधव की आपस की शत्रुता और मनमुटाव के कारण और माधव के बुलाने पर सबसे पहले अलाउद्दीन ख़िलजी सन् ६९७ हि० (१२९७ ई०) में गुजरात का हाकिम बन गया। अलाउद्दीन ख़िलजी ने गुजरात से लेकर समुद्र के किनारे किनारे कारोमंडल तक का प्रदेश जीत लिया। पर उसकी विजयों का क्रम उस जहाज़ की तरह था, जो अपने बल से समुद्र का कलेजा चीरता हुआ आगे बढ़ता जाता है। पर ज्यों ही वह एक कदम आगे बढ़ता है, त्यों ही उसके पीछे का पानी सिमटकर ऐसा हो जाता है कि पानी के ऊपर नाम के लिये भी किसी तरह का निशान नहीं रह जाता। यह मानों ख़िलजी सेनापति की एक सैनिक सैर या यात्रा थी; इससे अधिक और कुछ भी नहीं। सन् ७०९ हि० (१३०९ ई०) में उसके एक सैनिक अधिकारी मलिक काफ़ूर ने कर्नाटक जीत लिया। पर इसके बाद सन् ७२७ हि० (१३२३ ई०) में दक्षिण में बीजानगर का एक विशाल हिन्दू राज्य स्थापित हो गया, जो कई शताब्दियों तक दक्षिणी भारत को उत्तरी भारत के मुसलमान आक्रमण करनेवालों से बचाता रहा। मलिक काफ़ूर की विजयों के प्रसंग में मअबर (कारोमंडल) में जो एक छोटा सा मुसलमानी राज्य बन गया था, वह भी चालीस बरस के बाद नष्ट होकर बीजानगर के राज्य में मिल गया।

पर इस लड़ाई भिड़ाई और चढ़ाई आदि की सीमा से दूर और बिलकुल अलग उन मुसलमान अरबों और इराक़ियों की बस्तियाँ थीं, जो स्थल मार्ग से उत्तर से दक्षिण नहीं आए थे, बल्कि समुद्र के किनारों से चलकर इन प्रान्तों में आ बसे थे और बराबर यहाँ आते जाते रहते थे।

यह एक बहुत ही स्पष्ट बात है कि उत्तरी भारत से पहले दक्षिणी भारत में मुसलमानों के उपनिवेश स्थापित हुए थे और उनका सम्बन्ध

असल में व्यापार के लिये आने जाने से था। उन प्रान्तों में केवल बाहर से ही आकर मुसलमान लोग नहीं बसे थे, बल्कि स्वयं उन देशों के निवासी भी मुसलमान होने लग गए थे। इस प्रकार का प्रभाव और परिणाम होने के सम्बन्ध में कई प्रकार के प्रवाद प्रसिद्ध हैं, जो इतिहास की पुस्तकों और यात्रा विवरणों में लिखे हुए हैं। उन सबका सारांश यह है कि यह प्रभाव दो प्रकार के आकर्षणों से पड़ा था। एक तो अरब व्यापारियों के आने जाने के कारण; और दूसरे उन सूफ़ियों और मुसलमान फ़क़ीरों की करामातों के कारण जो सरन्दीप के चरणचिह्न के दर्शन करने के लिये आया करते थे।

मुसलमानों का पहला केन्द्र सरन्दीप

फ़रिश्ता ने लिखा है—"इस्लाम के पहले से ही अरब लोग इन टापुओं में व्यापार करने के लिये आया करते थे और यहाँ के लोग अरब जाया करते थे। इस लिये सबसे पहले सरन्दीप के राजा को इस्लाम धर्म और मुसलमानों का हाल मालुम हुआ। मुहम्मद साहब के समकालीनों के ही समय सन् ४० हि० (ईसवी सातवीं शताब्दी के आरम्भ में ही) में वह मुसलमान हो गया।"[१] फ़रिश्ता ने यह नहीं बतलाया है कि यह घटना उसे किस ग्रन्थ में लिखी हुई मिली थी; पर अजायबुल् हिन्द नाम की एक पुरानी पुस्तक से, जो सन् ३०० हि० के लगभग लिखी गई थी, इस प्रवाद का पूरा पूरा समर्थन होता है। बुज़ुर्ग बिन शहरयार नाम का मल्लाह जो इन टापुओं में अपने जहाज़ लाया करता था, सरन्दीप का वर्णन करता हुआ लिखता है—

---

[१] फ़रिश्ता; दूसरा खंड; "सिन्ध" शीर्षक आठवाँ प्रकरण; पृ० ३११, (नवलकिशोर प्रेस)।

"भारत के पुजारियों, संन्यासियों और योगियों के कई भेद हैं। उनमें से एक बेकौर[1] होते हैं जिनका मूल सरन्दीप से है। ये लोग मुसलमानों से बहुत प्रेम करते हैं और उनके प्रति बहुत अनुराग रखते हैं। ये गरमी के दिनों में नंगे रहते हैं। कमर में एक डोरी लगा कर केवल चार अंगुल की एक लँगोटी बाँध लेते हैं और जाड़ों में घास की चटाई ओढ़ लेते हैं। इनमें से कुछ लोग एक ऐसा कपड़ा पहनते हैं जो अनेक रंगों के छोटे छोटे टुकड़ों को जोड़कर सीया हुआ होता है; और शरीर पर मुरदों की जली हुई हड्डियों की राख मल लेते हैं। ये लोग सिर और दाढ़ी मूछ के बाल मुँड़ाते हैं। गले में मनुष्य की एक खोपड़ी लटकाए रहते हैं और अपनी दीनता दिखलाने तथा दूसरों को शिक्षा देने के लिये उसी में खाते हैं।"

ऊपर जो चित्र खींचा गया है, उसे देखते हुए और इस वर्ग के सम्बन्ध में दूसरे अरब यात्रियों के वर्णनों को देखते हुए इस बात में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता कि ये लोग बौद्ध धर्म के माननेवाले होंगे।

हमारा मल्लाह फिर इस प्रकार अपनी कहानी आरम्भ करता है—

"जब सरन्दीप के रहनेवालों और उसके आस पास के लोगों को इस्लाम के पैग़म्बर के धर्म प्रचार के लिये उठने का हाल मालुम हुआ, तब उन्होंने अपने में से एक समझदार आदमी को पैग़म्बर के सम्बन्ध की सब बातों की जाँच करने के लिये अरब भेजा। जब वह आदमी रुकता रुकता मदीने पहुँचा, तब रसूल मुहम्मद साहब का देहान्त हो चुका था। अबू बकर सिद्दीक की ख़िलाफ़त का भी अन्त हो चुका था और हज़रत उमर का समय था। उनसे मिलकर उसने

---

[1] सम्भवतः यही वह शब्द है जो किताबुल् बिदअ वत्तारीख़ और सुलैमान सौदागर के यात्रा-विवरण आदि में कहीं बेकार जैन और कहीं बेकर-नतैन के नाम से मिलता है।

पैग़म्बर साहब की सब बातें पूछीं। हज़रत उमर ने सब बातें ब्योरेवार बतला दीं। जब वह लौटा, तब मकरान (बलोचिस्तान के पास) पहुँचकर मर गया। उसके साथ उसका एक हिन्दू नौकर था। वह सकुशल सरन्दीप पहुँच गया। उसीने रसूल पैग़म्बर साहब, हज़रत अबू बकर और हज़रत उमर के सम्बन्ध की सब बातें बतलाईं; उनके साधुओं के से रंग ढंग का हाल बतलाया और यह भी बतलाया कि वे कैसे नम्र और आतिथ्य सत्कार करनेवाले हैं। वे पैवन्द लगे हुए कपड़े पहनते हैं और मसजिद में सोते हैं। अब ये लोग मुसलमानों के साथ जो इतना प्रेम और अनुराग रखते हैं, उसका कारण यही है।"[1]

इस प्रवाद का तीसरा समर्थन इस घटना से होता है कि हिजरी पहली शताब्दी के अन्त में उमवियों की ओर से इराक़ का शासक हज्जाज था; और भारतीय टापुओं की ओर इराक़ के बन्दरगाह से ही जहाज़ आते थे। उस समय सरन्दीप (जिसे अरब लोग याक़ूत या लाल का टापू भी कहते थे) के राजा ने मुसलमानों के प्रति अपनी मित्रता और प्रेम दिखलाने के लिये एक जहाज़ में दूसरे अनेक उपहारों के साथ उन मुसलमान स्त्रियों और लड़कियों को भी इराक़ भेज दिया, जिनके पति या पिता वहाँ व्यापार करते थे और वहीं परदेस में उनको अनाथ छोड़कर मर गए थे।[2] इस घटना से यह सिद्ध होता है कि हिजरी पहली शताब्दी में ही सरन्दीप में मुसलमानों का उपनिवेश स्थापित हो चुका था। अबूज़ैद सैराफ़ी (सन् ३०० हि०) ने हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त में यहाँ अरब व्यापारियों के रहने और आने जाने का उल्लेख किया है।[3]

---

[1] अजायबुल् हिन्द; पृ० १५५-५७।

[2] फ़ुतूहुल् बुल्दान; बिलाज़ुरी; सन् २७६; पृ० ४३५ (लीडन)

[3] अबू ज़ैद सैराफ़ी; पृ० १२१ (पेरिस)

दूसरा केन्द्र मालदीप

इस ओर मुसलमानों और अरबों का दूसरा केन्द्र मालदीप का टापू था, जिसको अरब लोग कभी कभी जज़ीरतुल् महल और कभी कभी इन छोटे छोटे सब टापुओं को मिला कर दीबात[1] कहते थे। इन टापुओं का सबसे विस्तृत वर्णन इब्न बतूता ने किया है। उस के समय में अर्थात् सुलतान मुहम्मद तुग़लक के समय (सन् ७०० हि०) में यह सारे का सारा टापू मुसलमान था और इसमें अरबों तथा देशी मुसलमानों की बस्तियाँ थीं। सुलतान खदीजा नाम की एक बंगाली महिला इस पर शासन करती थी। इब्न बतूता के समय में यहाँ यमन आदि के बहुत से विद्वान् और मल्लाह उपस्थित थे। उनकी ज़बानी इस टापू के लोगों के मुसलमान होने का हाल सुनकर उसने इस प्रकार लिखा है—"यहाँ के लोग पहले मूर्त्तिपूजक थे। यहाँ हर महीने समुद्र में से निकल कर देव के रूप में एक बला आती थी। जब यहाँ के लोग उसको देखते थे, तब एक कुँआरी लड़की को बनाव सिंगार करके उस मन्दिर में छोड़ आते थे, जो समुद्र के किनारे था। पर मराको के एक अरब शेख़ अबुल बरकात बरबरी मग़रिबी संयोग से यहाँ आ गए थे। उनके आशीर्वाद से यह बला उनके सिर से टली थी। यह करामात देखकर वहाँ का राजा शनोराजा और सारी प्रजा शेख़ के हाथ से मुसलमान हो गई।" इब्न बतूता कहता है कि इस्लाम ग्रहण करनेवाले इस राजा ने जो मसजिद बनवाई थी, उसकी मेहराब पर यह लेख लिखा हुआ मिला था—

"सुलतान अहमद शनवराजः अबुल बरकात मग़रिबी के हाथ से मुसलमान हुआ।"

---

[1] दीप शब्द संस्कृत के द्वीप से बना है; और उसी दीप या दीव का बहुवचन अरबवालों ने "दीबात" बना लिया था।

तात्पर्य यह कि उस समय से लेकर आज तक ये सब टापू मुसलमान हैं और उनमें से बहुत से ऐसे लोग बसते हैं, जिनके वंश में अरबों का रक्त मिल गया है।

तीसरा केन्द्र मलाबार

प्रवादों से सिद्ध होता है कि इस्लाम और अरबों का तीसरा केन्द्र भारत का वह अन्तिम तट है, जिसको हिन्दुओं के पुराने समय में केरल कहते थे और पीछे से मलाबार कहने लगे (मलय इस प्रदेश के पर्वत का नाम है)। अरबी भूगोल-लेखकों ने इसकी सीमा गुजरात की अन्तिम सीमा से लेकर कोलम नामक स्थान तक, जो ट्रावन्कोर में है, बतलाई है।

तोहफतुल् मुजाहिदीन में एक प्रवाद है, जिसे फ़रिश्ता ने उद्धृत किया है और जो इस प्रकार है—

"इस्लाम से पहले और इस्लाम के बाद यहूदी और ईसाई व्यापारी यहाँ आया करते थे और यहाँ रहने लग गए थे। जब इस्लाम का प्रचार हुए दो सौ बरस बीत गए, तब अरब और अजम (फ़ारस) प्रदेश के कुछ मुसलमान फ़कीर, जो हज़रत आदम के चरण-चिह्नों के दर्शन करने के लिये सरन्दीप, जिसे लंका कहते हैं, जा रहे थे। संयोग से उन लोगों का जहाज़ हवा के झोंके से बहक कर मलाबार के कदनकोर (कडंगानोर) नामक नगर के किनारे आ लगा। नगर के राजा जैमोर (सामरी) ने इनकी बहुत आव भगत की। बातों बातों में इस्लाम की चर्चा आई। राजा ने कहा कि मैंने यहूदियों और ईसाइयों के मुँह से तुम्हारे पैग़म्बर और धर्म का हाल सुना है। अब तुम आप सुनाओ। उन फ़कीरों ने इस्लाम धर्म के तत्त्व ऐसे प्रभावशाली रूप में बतलाए कि उस पर राजा मोहित हो गया। राजा ने उनसे वचन ले लिया कि लौटते समय भी वे इसी

मार्ग से जायँगे। अपने वचन के अनुसार लौटते समय भी वे वहाँ आये। राजा ने सब अमीरों को बुलाकर कहा कि अब मैं ईश्वर का स्मरण करना चाहता हूँ। यह कहकर उसने सारा देश अपने कर्मचारियों में बराबर बाँट दिया और आप छिपकर उन फ़कीरों के साथ अरब चला गया। वहाँ जाकर वह मुसलमान हो गया; और उसने उन फ़कीरों से कहा कि मलाबार में इस्लाम का प्रचार करने का उपाय यह है कि तुम लोग मलाबार से व्यापार करना आरम्भ करो। और अपने अमीरों के नाम उसने इस आशय का एक पत्र लिखकर उन लोगों को दे दिया कि इन विदेशी व्यापारियों के साथ सब प्रकार से दया और अनुग्रह का व्यवहार किया जाय और हर अच्छे काम में इनकी सहायता की जाय। इन्हें अपने उपासना-मन्दिर बनाने की आज्ञा दी जाय; और इनके साथ ऐसा अच्छा व्यवहार किया जाय कि ये लोग वहीं रहने लगें और उसी देश को अपना देश बनाने की इच्छा करें। उसी समय से अरब यात्री इस देश में आने जाने और रहने सहने लगे।"

एक और दूसरा प्रवाद है (जिसे फ़रिश्ता ने ऊपरवाले पहले प्रवाद से अधिक ठीक माना है, पर जो मेरी समझ में पहले से अधिक ग़लत है) "कि जैमूर के मुसलमान होने की घटना स्वयं पैग़म्बर मुहम्मद साहब के समय में हुई थी।" इस प्रवाद के अनुसार ये फ़कीर लोग फिर मलाबार लौट आए। उन्होंने कदनकोर में मसजिद बनवाई। उनमें से कुछ लोग तो वहीं रह गए और कुछ लोग वर्त्तमान ट्रावन्कोर के कोलम नगर में चले गए। वहाँ भी उन्होंने मसजिद बनवाई। फिर हेली, मारावी, जरपट्टन, दरपट्टन, फन्दरनिया (पंडा रानी), चालियात, फाकनौर और मंगलौर में मसजिदें बनवाई और उपनिवेश स्थापित किए।"

यह तो फ़रिश्ता के कथन का सारांश है; पर मूल तोहफतुल् मुजाहिदीन के एक दो और उद्धरण भी उपयोगी हैं, जिनसे पीछे के

समय के रंग ढंग का पता चलता है। उसमें कहा है—"भारत के पश्चिमी समुद्र तट के बन्दरगाहों पर भिन्न भिन्न देशों से बहुत से व्यापारी आते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि नए नगर बस गए हैं और मुसलमानों के व्यापार के कारण उनकी आबादी भी बढ़ गई है। मकान भी बहुत अधिकता से बन गए हैं। यहाँ के सरदार और राजा मुसलमानों पर अत्याचार करने से बचते हैं। यद्यपि ये सरदार और उनके सिपाही मूर्त्तिपूजक हैं, पर फिर भी वे मुसलमानों के धर्म और उनके आचार विचार आदि का बहुत कुछ आदर करते और ध्यान रखते हैं। मूर्त्तिपूजकों और मुसलमानों के इस मेल जोल से इस कारण और भी आश्चर्य होता है कि मुसलमानों की संख्या सारी आबादी का दसवाँ भाग भी नहीं है।.... सामूहिक रूप से मलाबार के हिन्दू राजाओं का मुसलमानों के साथ बहुत प्रतिष्ठा और दया का व्यवहार होता है; क्योंकि उनके देश में अधिक नगरों के बस जाने का कारण इन्हीं मुसलमान व्यापारियों का वहाँ बस जाना है।"[1]

मलाबार के यही मुसलमान अरब व्यापारी, जो अपना देश छोड़ कर यहाँ आकर बस गए थे, भारत में मोपला और नायत के नामों से प्रसिद्ध हैं। पुर्त्तगालियों के आने से पहले तक समुद्र का सारा व्यापार इन्हीं लोगों के हाथ में था। उस देश के जो निवासी पीछे से मुसलमान हो गए थे या जो लोग उनके साथ ब्याह शादी करके उनकी बिरादरी में हो गए थे, वे भी उन्हीं लोगों में मिल गए हैं।

कोलम

कोलम नगर आजकल के ट्रावन्कोर देश में है। अरब मल्लाह बहुत पुराने समय से इसका नाम लेते चले आते हैं और कहते हैं—

[1] तोहफतुल् मुजाहिदीन का उद्धरण; डा० आर्नल्ड कृत दावते इस्लाम; पृ० ३८२-८३।

"यह मसालोंवाले देश का अन्तिम नगर है।" यहाँ से अदन के लिये जहाज़ जाया करते थे। यहाँ मुसलमानों का एक महल्ला बस गया था और उनकी एक जामा मसजिद भी थी।[1]

चौथा केन्द्र मावर या कारोमण्डल

मदरास में मलाबार के सामने दूसरी ओर जो समुद्र तट है, उसे अरब लोग मअबर या माबर कहते हैं। आजकल इसका नाम कारोमंडल प्रसिद्ध है माबर का नाम भी अरब यात्रियों और व्यापारियों में विशेष रूप से प्रसिद्ध था। इब्न सईद मग़रिबी ने हिजरी छठी शताब्दी के अन्त में इसका वर्णन किया है; और बतलाया है कि यह कोलम के पूर्व में है और तीन चार दिन के रास्ते पर दक्षिण की ओर झुका हुआ है।[2] ज़करिया क़ज़विनी (सन् ६८६ हि०) ने हिजरी सातवीं शताब्दी में इसका नाम मन्दल लिखा है और यहाँ की अगर लकड़ी की बहुत प्रशंसा की है।[3] उसने इसी के पास कन्या कुमारी को स्थान दिया है, जिसे उसने रास कामरान लिखा है; और इसी सम्बन्ध से इस ऊद या अगर को कामरूनी ऊद कहते थे।[4] अबुल फ़िदा (सन् ७३२ हि० १३१३ ई०) ने रासकुमारी को रास कम्हरी लिखा है।[5] और माबर की सीमा इस प्रकार लिखी है—"यह मलाबार के पूरब में कोलम से तीन चार दिन की दूरी पर है और

[1] तक़वीमुल् बुल्दान; पृ० ३६१।

[2] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ।

[3] आसारुल् बिलाद; क़ज़विनी; पृ० ८२।

[4] तकवीमुल् बुल्दान; पृ० ३५५।

[5] उक्त ग्रन्थ पृ० ३५४।

इसका आरम्भ कोलम के पूरब से होता है।"[1] "इसकी राजधानी का नाम बेरदाल (बेरधूल) है। यहाँ बाहर से घोड़े लाए जाते हैं।"[2]

जान पड़ता है कि समुद्र तट का यह भाग कुछ शताब्दियों के बाद अरबों के काम में आने लगा था। हिजरी छठी शताब्दी के अन्त से इसका नाम सुनने में आता है। हिजरी सातवीं शताब्दी से यहाँ अरबों का अच्छा प्रवेश और अधिकार देखने में आता है। वस्साफ (मृत्यु सन् ७२८ हि०) और जामे उत्तवारीख के लेखक रशीदुद्दीन (मृत्यु सन् ७१८ हि०) ने हिजरी आठवीं शताब्दी के अन्त में अपनी अपनी पुस्तकें लिखी हैं। भारत में यह जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह ख़िलजी का समय था। वसाफ और रशीद दोनों ही प्रायः एक से शब्दों में लिखते हैं—

"मअबर देश कोलम से लेकर सेलवार (नीलौर) तक समुद्र के किनारे तीन फरसंग लम्बा है। इसमें बहुत से नगर और गाँव हैं। यहाँ के लोग अपने राजा को देवार कहते हैं, जिसका अर्थ है धनवान। चीन के बड़े बड़े जहाज़, जिनको जंक या जनक कहते हैं, चीन, माचीन, सिन्ध और भारत के देशों से बहुत से बहुमूल्य पदार्थ और कपड़े यहाँ लाते हैं। माबर से रेशमी कपड़े और सुगन्धित लकड़ी ले जाते हैं। यहाँ के समुद्र से बड़े बड़े मोती निकाले जाते हैं। यहाँ होनेवाली चीजें इराक़, ख़ुरासान, शाम, रूम और युरोप तक जाती हैं। इस देश में लाल और सुगन्धित घासें उत्पन्न होती हैं। माबर मानों भारत की कुंजी है। कुछ वर्ष पहले सुन्दर पाँडे

[1] तक़वीमुल् बुल्दान; पृ० ३५५।

[2] तारीख वस्साफ का रचना-काल सन् ७०७ हि० (सन् १३०७ ई०) है। ईलियट; तीसरा खंड; पृ० ४४।

यहाँ का दीवान था। उसने अपने तीन भाइयों के साथ मिलकर भिन्न भिन्न दिशाओं में अपना अधिकार बढ़ाया था। मलिक तकीउद्दीन बिन अब्दुर रहमान बिन मुहम्मद उत् तैयबी, जो शेख़ जमालुद्दीन का भाई है, इस राजा का मन्त्री था। राजा ने पट्टन और मली पट्टन (पट्टम और मलयपट्टम) और बादल की रियासत उसे सौंप दी थी। माबर में घोड़े अच्छे नहीं होते; इस लिये इन दोनों में यह समझौता हो गया था कि जमालुद्दीन इब्राहीम केश (कैस)[1] नामक बन्दरगाह से चौदह सौ बढ़िया अरबी घोड़े दीवान को ला दिया करे। हर साल फ़ारस की खाड़ी के कतीफ़, इलहसा बहरीन, हुरमुज आदि बन्दरगाहों से दस हज़ार घोड़े आते थे और हर घोड़े का दाम दो सौ बीस चाँदी के सिक्के (दीनार) होंगे। सन् ६९२ हि० (१२९३ ई०) में दीवान मर गया और उसकी सम्पत्ति उसके मन्त्रियों, परामर्शदाताओं और नाइयों (नायकों) में बँट गई। शेख़ जमालुद्दीन उसका उत्तराधिकारी हुआ। कहते हैं कि उसे सात हज़ार बैलों का बोझ सोना और जवाहिरात मिले। और पहले जो समझौता हो चुका था, उसके अनुसार तकीउद्दीन उसका नायब नियुक्त हुआ।"[2]

इसी समय के आस पास जब मार्को पोलो यहाँ आया था, तब उसने देखा था कि यहाँ का राज्य पाँच हिन्दू राजाओं के हाथ में था। पर यहाँ का व्यापार उस समय भी पूरी तरह से मुसलमानों के

---

[1] अरब और भारत के व्यापारिक सम्बन्ध के प्रकरण में इस टापू का पूरा हाल बतलाया जा चुका है।

[2] ईलियट; पहला खंड; पृ० ६९-७० में जामे उत्तवारीख का अनुवाद। वस्साफ ने अधिक जाँच करके और विस्तार के साथ यह घटना लिखी है। देखो वस्साफ; दूसरा खंड; पृ० ?२-५५।

ही हाथ में था; और अरब से यहाँ घोड़े आया करते थे। वह लिखता है—

"इस देश में घोड़े नहीं होते। हुरमुज और अदन के बन्दरगाहों से व्यापारी लोग हर साल यहाँ घोड़े लाते हैं और पाँचो राज्यों में हर साल दो दो हज़ार घोड़े खरीदे जाते हैं। एक एक घोड़े का मूल्य पाँच पाँच सौ दीनार तक दिया जाता है।"

इसने यहाँ के मोतियों और रत्नों की असीम सम्पत्ति का भी उल्लेख किया है।

हिन्दू राजा के लिये मुसलमानों की मुसलमानों से लड़ाई

इसके बाद ही सुलतान अलाउद्दीन ख़िलजी की सेना ने गुजरात लेकर कारोमंडल तक उथल पुथल मचा दी। उस समय सारे भारत में पहली बार यहाँ यह घटना हुई थी कि कारोमंडल के राजा की ओर से, जिसकी राजधानी बेरधूल में थी, इराक़ और अरब के मुसलमानों ने चढ़ाई करनेवाले तुर्कों का सामना किया था। दिल्ली के अमीर ख़ुसरो ने अपने ख़ज़ायनुल् फ़ुतूह नामक ग्रन्थ में, जो सुलतान अलाउद्दीन ख़िलजी की उन्हीं विजयों का अतिरंजित और व्यर्थ के शब्दाडम्बर से भरा हुआ इतिहास है, यह घटना विस्तार के साथ लिखी है।[1] मुसलमानों ने अपने पुराने समझौते के अनुसार अपने संरक्षक बेरधूल के राजा की पूरी सहायता की और वे उसकी ओर से तुर्क मुसलमानों के साथ खूब लड़े। पर तुर्क वीरों का सामना करना सहज नहीं था। राजा हार गया और उसके देश पर सुलतान

---

[1] अमीर ख़ुसरो कृत ख़ज़ायनुल् फ़ुतूह। तारीख़ जामये मिल्लियः इस्लामियः में प्रकाशित (अलीगढ़; सन् १९२७) पृ० १५७-१६२।

अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफ़ूर ने अधिकार कर लिया। जो मुसलमान उनसे लड़े थे, उन्हें वह कड़ा दंड देना चाहता था; पर उन्होंने कुरान और कलमा पढ़ पढ़कर अपने मुसलमान होने का प्रमाण दिया।[१]

यह घटना सन् ७१० हि० (सन् १३१० ई०) में हुई थी।

ईलियट साहब की एक भूल

ईलियट साहब ने अपने इतिहास के दूसरे खंड में तारीख़ अलाई के नाम से खजायन उल् फुतूह का सारांश दिया है। उसमें इस घटना के सम्बन्ध में अमीर खुसरो के एक वाक्य का इस प्रकार अनुवाद दिया है—"ये मुसलमान प्रायः आधे हिन्दू थे और उन्हें अपने धर्म का ज्ञान नहीं था।"[२] पर वाक्य का यह आशय ठीक नहीं है, बिलकुल ग़लत है। सच बात यह है कि इन मुसलमानों ने हिन्दू राजा का साथ दिया था; इसी लिये अमीर खुसरो ने कविता की शैली और अत्युक्ति के फेर में पड़कर निरा शब्दाडम्बर रचा है; और उन मुसलमानों को बहुत कुछ बुरा भला कहा है, जिसका कोई ठीक अभिप्राय नहीं है। उसका अर्थ "आधे हिन्दू होना" तो बहुत दूर की बात है।[३]

पाँचवाँ केन्द्र गुजरात

अरबों का पाँचवाँ व्यापारिक केन्द्र गुजरात, काठियावाड़, कच्छ और कोकन में था, जहाँ राजा वल्लभराय या अरबों के प्रिय राजा बल्हरा का राज्य था। इसकी पहली राजधानी वल्लभीपुर में थी, जो

[१] तीसरा खंड; पृ० ९०।

[२] देखो ख़ज़ायनुल् फुतूह; पृ० १६१-६२।

[३] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ।

आजकल के भावनगर के पास एक बड़ा नगर था। अरब लोग इसे सदामानगर या महानगर कहते थे। पुरातत्त्व सम्बन्धी आजकल की जाँच से प्रमाणित होता है कि इस नगर का विस्तार पाँच मील तक था। यहाँ के कुछ राजा बौद्ध और कुछ राजा जैन थे; और उन्हीं दोनों के झगड़ों में शायद इस नगर का नाश भी हुआ था। इसी राज्य में चैमूर का बन्दरगाह था, जिसको अरब सैमूर कहते हैं। यह बन्दरगाह बहुत उन्नति पर था। इसके बाद खम्भायत आदि का स्थान था।

सबसे पहला अरब यात्री और व्यापारी, जिसने अपना यात्रा-विवरण सन् २३५ हि० में पूरा किया था, सुलैमान था। उसने वल्लभी राजा की बहुत प्रशंसा की है और लिखा है कि यह और इसकी प्रजा अरबों और मुसलमानों से बहुत प्रेम करती है; और इसकी प्रजा का यह विश्वास है कि हमारे राजाओं की आयु इसी लिये अधिक होती है कि वे अरबों के साथ प्रेम का व्यवहार करते हैं।[1] इन उद्धरणों से यह पता चलता है कि अरब व्यापारियों और नए बसे हुए मुसलमानों के साथ यहाँ के लोगों का बहुत अच्छा और मित्रतापूर्ण सम्बन्ध था। यही कारण था कि इस राज्य के नगरों में अरब लोग बहुत अधिक संख्या में बस गए थे और बिलकुल अन्त समय तक बसे रहे थे।

इसी प्रकार ताकन या दाखन या दक्षिण के (राजा के) सम्बन्ध में भी इसका यही कहना है कि वह भी अरबों के साथ बल्हरा के ही समान प्रेम रखता है।[2] स्वयं गुजरात या गूजर (जजर) राजाओं के सम्बन्ध में वह लिखता है—"वे अरबों के शत्रु हैं।"[3]

---

[1] खजायनुल् फुतूह; पृ० २६-२७।

[2] उक्त ग्रन्थ; पृ० २६।

[3] उक्त ग्रन्थ; पृ० २८।

हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त और चौथी शताब्दी के आरम्भ में जब बुज़ुर्ग बिन शहरयार मल्लाह अपने जहाज़ इधर लाता था, तब इन प्रान्तों में अरबों और साधारण मुसलमानों की बहुत बस्ती होती थी। उसे एक ऐसा हिन्दू मल्लाह भी मिला था, जो मुसलमान हो गया था और जिसने अपने जहाज़ों से बहुत धन कमाया था और हज भी किया था।[1] सैराफ़ का मुहम्मद बिन मुसलिम नाम का एक व्यापारी भी इसको मिला था, जो थाना (बम्बई के पास) में बीस बरस से अधिक समय तक रहा था और जो भारत के बहुत से नगरों में घूम आया था और उनकी सब बातें जानता था।[2] चैमूर (गुजरात का सैमूर) में इसे फ़सा (फ़ारस का एक स्थान) का एक मुसलमान अबूबकर भी मिला था।[3] गोआ को पुराने अरब लोग संदापुर कहते थे। वहाँ के राजा का एक मुसलमान भी मुसाहब था, जिसका नाम मूसा था।[4]

हुनरमन्द

यह एक फ़ारसी का शब्द है, जिसका साधारण अर्थ है हुनर जाननेवाला या गुणवान् पर अरबों ने इस शब्द का एक विशेष अर्थ में व्यवहार किया है, और इसके अन्त का "द्" गिराकर वे इसे "हुनरमन" कहते हैं और इससे "हुनरमनः" क्रिया बनाते हैं, जिसका अर्थ होता है हुनरमन्द या गुणवान् होना। इससे उस काज़ी या मुसलमान न्यायकर्त्ता का अभिप्राय लिया जाता था जो ग़ैर-मुसलमान

---

[1] अजायबुल् हिन्द; पृ० १६।

[2] उक्त ग्रन्थ; पृ० १५२।

[3] उक्त ग्रन्थ; पृ० १५७।

[4] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ।

राज्यों में उन्हीं राज्यों की ओर से मुसलमानों के मुकदमों का फ़ैसला करने के लिये नियुक्त किया जाता था। जिस समय संसार में अरबों और मुसलमानों के राज्य अपनी पूरी उन्नति पर थे, उस समय दूसरे राज्यों में मुसलमानों को कुछ उसी प्रकार के विशेष अधिकार प्राप्त होते थे, जिस प्रकार आजकल युरोप की जातियों को एशिया और अफ़्रिक़ा के राज्यों में कुछ विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं; और उनका मुकदमा किसी ऐसे न्यायालय में नहीं उपस्थित किया जा सकता जिसमें न्याय करनेवाला हाकिम युरोपियन न हों। उन दिनों मुसलमानों ने भी ग़ैर-मुसलमान देश में अपने व्यवहारों और आने जाने के सम्बन्ध में कुछ विशेष अधिकार प्राप्त कर लिए थे। तुर्किस्तान, रूम, चीन और भारत में मुसलमानों के इन विशेष अधिकारों का पता चलता है।[1] तात्पर्य यह कि ग़ैर-मुसलमान देशों में वहीं के राज्य का नियुक्त किया हुआ जो मुसलमान काज़ी कान्सल या अधिकारी होता था, वह हुनरमन्द कहलाता था। हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त और चौथी शताब्दी के आरम्भ में चैमूर में अरबों की बस्ती इतनी अधिक बढ़ गई थी कि उनके लिये राजा को एक हुनरमन्द नियुक्त करना पड़ा था। उसका नाम अब्बास बिन माहान था।[2]

वल्लभराय का राज्य

हिजरी चौथी शताब्दी के आरम्भ में मसऊदी भारत आया था। सन् ३०३ हि० में वह खम्भायत में था। इसके सिवा वह गुजरात के और देशों में भी घूमा था। वल्लभराय (बल्हरा)

---

[1] देखो इब्न हौक़ल; पृ० २३३।

[2] अजायबुल् हिन्द; पृ० १४४।

राजाओं के सम्बन्ध में इसकी भी वही सम्मति है, जो इसके साठ सत्तर बरस पहले सुलैमान ने प्रकट की थी। वह कहता है—"अरबों और मुसलमानों का जितना आदर राजा बल्हरा के राज्य में है, उतना सिन्ध और भारत के और किसी राजा के राज्य में नहीं है। इस राजा के राज्य में इस्लाम का अच्छा आदर और रक्षा होती है। इसके राज्य में मुसलमानों की मसजिदें और जामे मसजिदें बनी हैं, जो हर तरह से आबाद हैं। यहाँ के राजा चालिस चालिस और पचास पचास बरस तक राज्य करते हैं। यहाँ के लोगों का यह विश्वास है कि हमारे राजाओं की आयु इसी न्याय और मुसलमानों का आदर करने के कारण बड़ी होती है। गुजरात के राजा की शत्रुता का वही हाल है, और ताकन या दक्षिण के राज्य में भी मुसलमानों का वही आदर है।"[१]

सैमूर में दस हज़ार की बस्ती

"सैमूर (वल्लभराय के राज्य का एक नगर) में अरबों और वर्णसंकर मुसलमानों की बस्ती दिन पर दिन बढ़ती जाती है। जिस समय मसऊदी आया था (सन् ३०४ हि०) उस समय केवल एक नगर में दस हजार मुसलमान बसते थे।

बेसर

ईश्वर जाने यह क्या शब्द है, पर मसऊदी ने लिखा है कि इससे उन मुसलमानों से अभिप्राय है, जो भारत में उत्पन्न हुए हों। इसका बहुवचन उसने "बयासर:" बतलाया है, इस सम्बन्ध में मसऊदी का महत्वपूर्ण लेख इस प्रकार है—

---

[१] मसऊदी कृत मुरूजुज्जहब ; पहला खंड ; पृ० ३८२-८४।

"मैं सन् ३०४ हि० में राजा बल्हरा के राज्य के लार प्रदेश के चैमूर (सैमूर) नामक नगर में उपस्थित था। उस समय उस नगर के हाकिम का नाम जाँच था और उस समय वहाँ दस हज़ार मुसलमान बसे हुए थे जो भारत में उत्पन्न हुए (बयासरः) थे; और उनके सिवा सैराफ़, उमान, बसरा, बग़दाद और दूसरे देशों के भी मुसलमान थे, जो यहाँ आकर बस गए थे। उनमें से बहुत से प्रतिष्ठित व्यापारी हैं, जैसे मुहम्मद बिन इसहाक सन्दालोनी (सन्दापुरी या जदापुरी या चन्दापुर ?)। हुनरमन्दी के पद पर उन दिनों अबू सईद उपनाम बिन ज़करिया प्रतिष्ठित थे। हुनरमन्द का अभिप्राय मुसलमानों का सरदार है; और इसका स्वरूप यह है कि राजा मुसलमानों में से ही किसी को उनका सरदार बना देता है और मुसलमानों के सम्बन्ध के सब मामले मुकदमे उसी को सौंप देता है। और बयासरः का अर्थ है वह मुसलमान जो भारत में ही उत्पन्न हुए हों।"[1]

थाना में

हिजरी छठी शताब्दी के अन्त में सुलतान शहाबुद्दीन का समकालीन इब्न सईद मग़रिबी सन् ५८५ हि० में मराको और मिस्र में बैठकर बैरूनी की कानून मसऊदी की तरह खगोल विद्या पर एक पुस्तक लिख रहा था। उसमें उसने दक्षिणी भारत के कुछ नगरों के नाम लिए हैं। थाना के सम्बन्ध में वह कहता है—"यह गुजरात (लार) का अन्तिम नगर है। व्यापारियों में इसका नाम बहुत प्रसिद्ध है। इस भारतीय तट पर रहनेवाले सभी लोग हिन्दू हैं जो मूर्त्तिपूजा करते हैं, पर अपने साथ मुसलमानों को भी बसा लेते हैं।"[2]

---

[1] मसऊदी कृत मुरूजुज्जहब; दूसरा खंड; पृ० ८५-८६ (लीडन)

[2] तकवीमुल् बुल्दान; अबुल् फ़िदा के आधार पर पृ० ३५६।

खम्भायत में

खम्भायत के सम्बन्ध में यह कहता है—"यह भी भारत के समुद्र तट के नगरों में से है, जहाँ व्यापारी लोग जाया करते हैं। इसमें मुसलमान भी बसे हुए हैं।"[१] इसके बाद ही सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश के समय (सन् ६२५ हि०) में जामे उल् हिकायात का लेखक औफी सम्भवतः सिन्ध से खम्भात गया था। उसका कहना है—"वहाँ (खम्भात में) अच्छे धर्मनिष्ठ मुसलमानों की बसती है। उनकी एक जामे मसजिद भी है और उसका एक इमाम और खतीब (खुतबा पढ़ने वाला) भी है। गुजरात का राजा, जो नहरवाला में रहता था, इन लोगों के साथ बहुत ही न्याय का व्यवहार करता था।[२]"

हिजरी चौथी शताब्दी में खम्भात से चैमूर तक

इब्न हौक़ल बग़दादी, जिसने हिजरी चौथी शताब्दी में गुजरात से सिन्ध तक की यात्रा की थी, लिखता है—

"खम्भात से सैमूर तक राजा बल्हरा (वल्लभराय) का राज्य है।······· उसमें अधिकतर तो हिन्दू ही बसते हैं, पर साथ ही मुसलमान भी हैं, और उन मुसलमानों पर स्वयं मुसलमानों का ही शासन है। अर्थात् राजा की ओर से उनके लिये एक मुसलमान वाली या रक्षक नियत होता है।······· वल्लभराय के इलाकों में मसजिदें हैं, जिनमें जुमा (शुक्रवार) की नमाजें पढ़ी जाती हैं; और

---

[१] उक्त ग्रन्थ; पृ० २४७।

[२] औफी कृत जामे उल् हिकायात की हाथ की लिखी प्रति, जो आज़मगढ़ के दारुल् मुसन्निफ़ीन में रखी है।

इसी प्रकार उनमें दूसरी नमाजें भी पढ़ी जाती हैं और खुले आम अज़ान भी दी जाती है।[1]"

हिजरी आठवीं शताब्दी में खम्भात से कारोमंडल तक

गुजरात से कारोमंडल तक के सारे प्रदेश मलिक कफ़ूर जीतता चला गया था। पर वह एक आँधी थी, जो आई और निकल गई। पर आरम्भ और अन्त में अलाउद्दीन की विजयों का जो झंडा गड़ा था, वह न उखड़ सका। पर फिर भी स्वतन्त्र हो गए। उधर गुजरात और इधर कारोमंडल के बीच में सैकड़ों मील के इलाके पहले की ही तरह हिन्दू राजाओं और रायों के अधिकार में थे। गुजरात तो फिर सदा के लिये इस्लामी हो गया है; पर कारोमंडल (मावर) में हसन कैथली और उसके उत्तराधिकारी ने हिजरी आठवीं शताब्दी के मध्य तक प्रायः चालिस बरस राज्य किया। फिर बीजानगर के राजाओं ने उसे जीत लिया।

मराको का प्रसिद्ध यात्री इब्न बतूता भी इसी समय भारत आया था। वह मुहम्मद तुग़लक की ओर से उत्तर में एक राजकीय सन्देश लेकर चीन जा रहा था। वह पहले दिल्ली से खम्भात और फिर खम्भात से कारोमंडल गया था, जहाँ से चीन के लिये जहाज़ जाते थे। उसने इस पूरे मार्ग की इस्लामी बस्तियों और वहां के हाकिमों का वर्णन किया है जिससे पता चलता है कि केवल हिन्दुओं की बस्तियों और राज्यों में कहाँ कहाँ मुसलमान लोग बसे हुए थे और उनकी क्या दशा थी।

---

[1] इब्न हौक़ल; पृ० २३३ (लीडन)

खम्भात

इब्न बतूता दौलताबाद और सागर होकर खम्भात पहुँचा था जो गुजरात का एक बड़ा बन्दरगाह था। यद्यपि उस समय दिल्ली के साम्राज्य से उस बन्दरगाह का नाम मात्र का सम्बन्ध था; पर वहाँ का व्यापार, कार बार, वैभव और व्यवस्था आदि सब कुछ अरब और इराक़ के व्यापारियों और जहाज़ चलानेवालों के हाथों में थी, जो वहाँ पहले से बसे हुए चले आते थे। अरब, इराक़ और अजम के मुसलमान सभी जगह अधिकता से थे और उनकी बनाई हुई मसजिदें और खानक़ाहें आबाद थीं। इब्न बतूता कहता है—"यह नगर अपनी मसजिदों और दूसरी इमारतों के कारण और नगरों से बहुत अच्छा है; और इसका कारण यह बतलाया जाता है कि यहाँ के प्रायः निवासी बाहरी देशों के साथ व्यापार करते हैं। वे सदा अच्छे अच्छे मकान और सुन्दर सुन्दर मसजिदें बनाते रहते हैं और उनके बनाने में वे सदा एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न करते हैं। यहाँ के विशाल भवनों में वे सदा एक महल शरीफ़ सामरी का है; और उससे सटी हुई एक विशाल मसजिद है। व्यापारियों के शिरोमणि गाजरूनी का भी एक बड़ा मकान है और उसके साथ भी एक मसजिद है। शम्सुद्दीन कुलाहदोज (टोपी बनाने वाला) नाम के व्यापरी का मकान भी बहुत बड़ा है। नगर में हाजी नासिर की खानक़ाह है जो इराक़ के दयारबकर नामक नगर के रहनेवाले थे। दूसरी खानक़ाह ख्वाजा इसहाक़ की है, जहाँ फ़क़ीरों के लिये लंगर भी बँटता है।"[1]

---

[1] सफ़रनामा इब्न बतूता; (अरबी; खैरिया मिस्र का छपा हुआ) दूसरा खंड; पृ० १२७-२९।

गावी और गन्धार

गावी और गन्धार ये दोनों भड़ौच की बराबरी के बन्दरगाह थे (आईन अकबरी)। इब्न बतूता खम्भात से चलकर पहले गावी और फिर वहाँ से गन्धार पहुँचा था। वह कहता है कि समुद्र तट के ये दोनों नगर राजा जालीनी के अधिकार में हैं; पर वह स्वयं मुसलमान बादशाह के अधीन है। यहाँ भी उसे मुसलमान बसे हुए मिलते हैं, जिनमें से बहुत से मुसलमान ऐसे थे जो राजा के दरबारी या राज कर्मचारी थे। इनमें से एक का नाम ख्वाजा बहरा था और दूसरा इब्राहीम नाविक था, जो छः जहाजों का मालिक था। इब्न बतूता इसी गन्धार में इब्राहीम नाविक और उसके भाई के जहाजों पर सवार हुआ था, उन जहाजों के नाम जागीर और मनूरत थे। उन जहाजों पर पचास तीर चलानेवाले और पचास हब्शी सिपाही थे।

बैरम

यह एक छोटा सा टापू है जो भारत के तट से चार मील दूर है। (यह अदन के पासवाला बैरम नहीं है।) पहले इसपर हिन्दुओं का अधिकार था, पर फिर मुसलमानों ने उसे अपने हाथ में ले लिया था। इब्न बतूता के समय में गाजरूनी ने, जिसे मलिकुत्तुज्जार या व्यापारियों का राजा कहते थे, यहाँ नगर बनवाया था और मुसलमानों को उसमें बसाया था।

गोगा

इसका नाम गोगा या घोघा था। (यह वर्त्तमान भावनगर के पास है)। यहाँ राजा दनकौल का राज्य था। यह बहुत बड़ा नगर था। इसमें बड़े बड़े बाज़ार थे। यहाँ उसने एक मसजिद देखी थी, जो हज़रत ख़िज़्र की मसजिद कहलाती थी, जिन्हें सर्व

साधारण समुद्र में डूबनेवाले लोगों का सहारा समझते हैं। यहाँ हैदरी फ़क़ीरों का एक दल रहता था।

चन्दापुर

यहाँ से हमारा यात्री चन्दापुर पहुँचा, जिसे अरब लोग सन्दापुर कहते थे और जिसे नाम की इसी समानता के कारण मैंने किसी समय सिंघापुर समझा था। पर वास्तव में यह चन्दापुर आजकल के गोआ के पास था। हमारे यात्री को यहाँ एक मुसलमान सुलतान जमालुद्दीन हनवरी का राज्य मिला था। इस सुलतान जमालुद्दीन का पिता हसन एक जहाज़ चलानेवाला था। सुलतान जमालुद्दीन स्वतन्त्र नहीं था, बल्कि राजा हरीब (शुद्ध नाम हरीर है और यह बीजानगर का राजा था) के अधीन था। यहाँ हिन्दुओं का महल्ला अलग और मुसलमानों का महल्ला अलग था। यहाँ एक बहुत बड़ी मसजिद थी जो इब्न बतूता की दृष्टि में बग़दाद की मसजिदों के जोड़ की थी।

चन्दापुर के पास ही समुद्र के किनारे एक और छोटी बसती थी, जिसमें एक गिरजा भी था। वहाँ के एक मन्दिर में उसकी भेंट एक ऐसे आदमी से हुई थी जो ऊपर से देखने में तो योगी जान पड़ता था, पर वास्तव में मुसलमान सूफ़ी था। वह खाली इशारों से बातें करता था।

हनूर या हनोर

इसको होनूर कहते हैं और यह अब भी बम्बई प्रान्त के उत्तरी कनाडा जिले में है। यह सुलतान जमालुद्दीन का मुख्य केन्द्र था। यहाँ इब्न बतूता को शेख मुहम्मद नागौरी नाम के एक सज्जन मिले थे, जिनकी एक खानकाह थी। इनके सिवा फ़क़ीह इस्माईल से, जो क़ुरान के बहुत बड़े पंडित थे और नूरुद्दीन अली काज़ी तथा एक और इमाम से भेंट हुई थी। इस नगर में इसने एक यह विलक्षण

बात देखी कि स्त्रियों और पुरुषों सब में शिक्षा का बराबर प्रचार और चर्चा थी। इसने नगर में लड़कियों के तेरह और लड़कों के तेइस विद्यालय देखे थे। हनूर की मुसलमान स्त्रियाँ भी हिन्दू स्त्रियों की तरह साड़ी पहनती थीं। यहाँ के रहने वालों की जीविका व्यापार से चलती थी। यहाँ इब्न बतूता को चन्दापुरवाले मुसलमान योगी का एक संदेसा और कुछ उपहार मिला था। यहाँ के निवासी इमाम शाफ़ई के अनुयायी थे, जिसका मतलब यह है कि वे या तो अरब थे और या उनकी सन्तान थे।

मलाबार

हूनोर से इब्न बतूता का जहाज़ मलाबार के तट पर आकर लगा था। वह कहता है "इस इलाके की सीमा चन्दापुर से कोलम तक है, जो दो महीने का मार्ग है। यह कालीमिर्चोंवाला देश है। यहाँ छोटे बड़े सब मिलाकर बारह हिन्दू राजा हैं। बड़े राजाओं के पास पचास पचास हज़ार और छोटे राजाओं के पास तीन चार हज़ार सेना है, जहाँ एक राजा का राज्य समाप्त होता और दूसरे राजा का राज्य आरम्भ होता है, वहाँ लकड़ी का एक फाटक लगा रहता है, जिस पर उस राजाके राज्य का नाम लिखा रहता है। यद्यपि यहाँ सभी हिन्दू राज्य हैं, फिर भी इनमें मुसलमानों का बड़ा आदर है। चन्दापुर से कोलम तक हर आध मील पर लकड़ी का एक मकान बना है, जिसमें दूकानें और चौतरे बने हैं। वहाँ सभी यात्री, चाहे वे हिन्दू हों और चाहे मुसलमान, ठहरते और विश्राम करते हैं। हर मकान के पास एक कुआँ है, जिसपर एक हिन्दू सब लोगों को पानी पिलाता है। हिन्दुओं को बरतन में से पिलाता है और मुसलमानों को चुल्लू से। हिन्दू लोग मुसलमानों को अपने घर के अन्दर नहीं आने देते और न अपने बरतनों में उन्हें भोजन कराते

हैं। अगर बरतन में भोजन कराते हैं, तो या तो वह बरतन तोड़ डालते हैं और या उसी मुसलमान को दे डालते हैं। पर जहाँ कहीं कोई मुसलमान नहीं होता, वहाँ वे मुसलमानों का भोजन बना देते हैं और उनके सामने केले के पत्ते पर रख देते हैं। जो भोजन बच रहता है, वह चील, कौवे और कुत्ते को खिला देते हैं। इस पूरे रास्ते में हर पड़ाव पर मुसलमान लोग बसे हुए हैं, जिनके पास मुसलमान यात्री जाकर ठहरते हैं। वे लोग यात्रियों के लिये सभी चीज़ें मोल लेकर भोजन बना देते हैं। यदि यहाँ जगह जगह मुसलमानों की बस्ती न होती, तो मुसलमानों का यात्रा करना बहुत कठिन होता। रास्ते में भी यदि हिन्दू लोग किसी मुसलमान को चलता हुआ देखते हैं, तो रास्ते से हट जाते हैं।"

अबी सरूर

मलाबार में जिस नगर में इब्न बतूता सब से पहले गया था, उसका नाम उसने अबी सरूर बतलाया है। अबुल् फ़िदा ने अपने भूगोल में इसका नाम यासरूर लिखा है। इब्न बतूता कहता है कि यह एक छोटा सा बन्दरगाह है। यहाँ भी मुसलमानों की बस्ती है और उन सब का बड़ा आदमी या सरदार शेख जुमा है, जो अबी रस्तः के नाम से प्रसिद्ध है। यह बहुत बड़ा दानी है। इसने अपना सारा धन फ़क़ीरों और ग़रीबों को बाँट दिया है। यहाँ नारियल के पेड़ बहुत हैं।

पाकनौर

अबी सरूर से वह पाकनौर पहुँचता है। आजकल यह मदरास के दक्षिण कन्नड में बरकूर के नाम से प्रसिद्ध है। इब्न बतूता के समय में यह बीजानगर के अधीन था। वह कहता है कि यहाँ के राजा का नाम वासुदेव है। उसके पास लड़ाई के तीस जहाज़ हैं। लेकिन

इन जहाज़ों का प्रधान अधिकारी मुसलमान है जो अच्छा आदमी नहीं था। वह यात्रियों को लूटता था। जब यहाँ कोई जहाज़ आता था, तब राजा उससे पहले बन्दरगाह के कर के रूप में कुछ लेता था। पर राजा ने इब्न बतूता का बहुत आदर सत्कार किया था। यहाँ का बड़ा आदमी हुसैन सलात है। यहाँ क़ाजी और ख़तीब नियत हैं। हुसैन सलात की बनवाई हुई एक मसजिद भी है।

मंगलौर

यहाँ से उसने मंगरौर (मंगलौर) में जाकर लंगर डाला था। वह कहता है कि यह मलाबार का सब से बड़ा समुद्री स्थान है। फ़ारस और यमन के प्रायः व्यापारी यहाँ आकर उतरते हैं। इसके राजा का नाम रामदेव है। यहाँ प्रायः चार हज़ार मुसलमान बसे हुए हैं, जिनका महल्ला अलग है। कभी कभी यहाँ के रहनेवालों से उनकी लड़ाई भी होती है, पर राजा बीच में पड़कर दोनों में मेल करा देता हैं। यहाँ एक क़ाज़ी है जो बहुत ही योग्य और उदार है। उसका नाम बदरुद्दीन है। वह माबर (कारोमण्डल) का रहनेवाला है और शाफ़ई सम्प्रदाय का है। जब यहाँ के राजा ने अपने लड़के को ज़मानत या ओल के रूप में जहाज़ पर भेजा, तब हम लोग क़ाज़ी के कहने से उतरे। इन लोगों ने तीन दिन तक हम लोगों की दावत और सत्कार किया।

हेली

इस समय हेली नाम का कोई बन्दर नहीं है, पर कनानोर से सोलह मील उत्तर की ओर समुद्र में पहाड़ का एक कोना निकला हुआ है, जिसको हेली (एली) पर्वत कहते हैं। इब्न बतूता कहता है—"यह बहुत बड़ा और सुन्दर नगर है। यहाँ बड़े बड़े जहाज़ आते हैं। चीन के जहाज़ यहीं आकर ठहरते हैं। हिन्दू और मुसलमान

दोनों ही इस नगर को बहुत पवित्र कहते हैं; क्योंकि यहाँ एक जामे मसजिद है, जिसे भेंट चढ़ाने की मन्नत सभी जहाज़वाले मानते हैं और सभी लोग भेंट चढ़ाते भी हैं। जो भेंट चढ़ती है, वह एक ख़ज़ाने में जमा की जाती है। उस ख़ज़ाने का प्रबन्ध हुसैन नाम का मुसलमान करता है जो उस मसजिद का इमाम है। यहाँ के मुसलमानों का सरदार हुसैन वज़्ज़ान है। यहाँ विद्यार्थियों का एक दल है जिसको इसी जामे मसजिद के ख़ज़ाने से वृत्ति मिलती है। इस मसजिद के साथ एक लंगर भी है, जहाँ से यात्रियों और ग़रीब मुसलमानों को भोजन मिलता है।" यहाँ मकदशवा (अफ़्रिक़ा) के एक महात्मा फ़कीर से इब्न बतूता की भेंट हुई थी। वे महाशय भारत, चीन और अरब की यात्रा कर चुके थे।

जरपट्टन

यह मलाबार प्रान्त का कदाचित् वही स्थान है, जिसे आजकल कन्दापुरम कहते हैं। हिजरी पहली शताब्दी में मलाबार के राजा के मुसलमान होने पर भिन्न भिन्न नगरों में जो मसजिदें बनी थीं, उनमें से एक यहाँ भी बनी थी। इब्न बतूता कहता है—"यहाँ के राजा का नाम कोयल है। वह मलाबार का बड़ा राजा है। उसके जहाज़ फ़ारस, यमन और उमान तक जाते हैं। यहाँ बग़दाद के एक विद्वान् से उसकी भट हुई थी, जिसका एक भाई यहाँ का बड़ा व्यापारी था और जो बहुत धन छोड़कर मरा था। जब कोई मुसलमान मर जाता है, तब उसकी सम्पत्ति में से हिन्दू राजा कुछ नहीं लेता। वह सम्पत्ति मसलमानों के सरदार के पास अमानत रहती है।" इब्न बतूता कहता है कि जिस समय मैं यहाँ से चलने लगा था, उस समय उक्त विद्वान् अपने मरे हुए भाई की सम्पत्ति लेकर बग़दाद जाने की तैयारी कर रहे थे।

दहपट्टन

यह भी राजा कोयल के राज्य में है। समुद्र के किनारे यह एक बड़ा नगर है। यहाँ बाग बहुत अधिकत से हैं। नारियल, काली-मिर्च, सुपारी, पान और अरुई बहुत अधिक होती है। यहाँ राजा कोयल के पुरखों में से किसी का बनवाया हुआ एक बहुत सुन्दर ताल है, जिसमें गढ़े हुए लाल पत्थर लगे हैं और जिसके चारों कोनों पर चार गुम्बद हैं। इसी के पास राजा कोयल के बाप दादों में से कसी की बनवाई हुई एक मसजिद भी है। मुसलमान लोग उसी तालाब में नहाते हैं, नमाज़ पढ़ने से पहले हाथ पैर धोते या वजू करते हैं और उस मसजिद में नमाज़ पढ़ते हैं। कहते हैं कि वह राजा मुसलमान था। इब्न बतूता ने वहाँ के रहने वाले मुसलमानों के मुंह से उस राजा के मुसलमान होने का यह हाल सुना था कि वहाँ एक ऐसा पेड़ था, जिसमें से हर साल पतझड़ के दिनों में एक ऐसा पत्ता गिरता था जिस पर कलमा लिखा हुआ होता था। जब यह पत्ता गिरता था, तब उसमें से आधा पत्ता हिन्दू ले लेते थे और आधा मुसलमान ले लेते थे। उससे रोगी लोग अच्छे हो जाते थे। यही करामात देखकर वह राजा मुसलमान हो गया था। वह अरबी लिपि पढ़ सकता था। उसके मरने के बाद उसका लड़का मुसलमान नहीं हुआ और उसने वह पेड़ जड़ से उखड़वा दिया। पर वह पेड़ फिर निकल आया। इब्न बतूता के समय में उस मसजिद के पास वह पेड़ खड़ा था और उसके सामने एक मेहराब बनी थी।

बुद्धपट्टन

दहपट्टन से उसका जहाज़ बुद्धपट्टन पहुँचा था। यहाँ भी हिजरी पहली शताब्दी में मुसलमान होनेवाले राजा की एक मसजिद बनी थी। इब्न बतूता कहता है कि यह भी समुद्र के किनारे एक

बड़ा नगर है। कदाचित् यह वालियाम नगर था, जो आजकल के बैपुर नामक नगर के पास था। इब्न बतूता कहता है कि यहाँ अधिकतर ब्राह्मण लोग बसे हुए हैं, जो मुसलमानों से घृणा करते हैं। इसी लिये यहाँ मुसलमानों की बस्ती नहीं है। नगर के बाहर समुद्र के किनारे एक मसजिद है। मुसलमान यात्री वहीं जाकर ठहरते हैं। यह मसजिद भी इसी लिये बची हुई है कि एक बार जब किसी ब्राह्मण ने इसकी छत तोड़कर उसकी लकड़ी ले जाकर अपने घर में लगा ली, तब उसका घर जल गया। उस घर के जलने में वह आप अपने घर के सब लोगों और माल असबाब सहित जल गया था। तब से कोई ब्राह्मण उस मसजिद को नहीं छूता, बल्कि वे लोग उस मसजिद की सेवा और रक्षा करते हैं। उन्होंने आनेजानेवालों के पीने के लिये यहाँ पानी का प्रबन्ध कर दिया है और उसके द्वार पर जाली लगा दी है, जिसमें पक्षी उसके अन्दर न जायँ।

पिंडारानी

यहाँ से चलकर हमारा यात्री पिंडारानी पहुँचा, जिसको वह फन्दरीना कहता है। और जो कालीकट से सोलह मील उत्तर है। वह कहता है—"यह बहुत बड़ा नगर है। इसमें मुसलमानों के तीन महल्ले बसे हुए हैं। हर महल्ले में एक मसजिद है। समुद्र के किनारे एक सुन्दर जामे मसजिद है, जिसका मुंह समुद्र की ओर है। वहाँ का क़ाज़ी और इमाम उमान का रहनेवाला है। यहाँ गरमी के दिनों में चीन के जहाज़ आकर ठहरते हैं।

कालीकट

यहाँ से हमारा यात्री मलाबार के प्रसिद्ध बन्दर कालीकट में पहुँचा था। वह कहता है कि यह मलाबार का सबसे बड़ा बन्दर है। यहाँ चीन, जावा, लंका, मालदीप, यमन और फ़ारस के व्यापारी बल्कि

सारे संसार के व्यापारी आते हैं। यहाँ का बन्दर संसार के बड़े बड़े बन्दरों में से है। यहाँ का राजा हिन्दू है, जिसकी उपाधि जैमूर (सामरी) है। यह उसी तरह दाढ़ी मुड़ाता है, जिस तरह रूमी या फिरंगी लोग जिन्हें मैंने वहाँ देखा था, मुड़ाते हैं। पर यहाँ के व्यापारियों का सरदार मुसलमान है। उसका नाम इब्राहीम शाह बन्दर है। वह बहरीन का रहनेवाला है और बहुत विद्वान तथा दानी है। सभी स्थानों के व्यापारी उसके यहाँ आकर भोजन करते हैं। नगर का क़ाज़ी फ़ख़रुद्दीन उस्मानी है और खानक़ाह का शेख शहाबुद्दीन गाजरूनी है। चीन और भारत में जो लोग अबू इसहाक गाजरूनी की मन्नत मानते हैं, वे इसी खानक़ाह में लाकर भेंट चढ़ाते हैं। मिस्काल नाम का नाविक या मल्लाह भी यहीं रहता है। यह बहुत प्रसिद्ध और धनवान् समुद्री व्यापारी है; और इसके निज के जहाज़ हैं, जो भारत, यमन, चीन और फ़ारस से व्यापार की सामग्री लाते और ले जाते हैं। राजा के नायब या दीवान और शेख़ शहाबुद्दीन तथा इब्राहीम शाह बन्दर ने इब्न बतूता का स्वागत सुलतान मुहम्मद तुग़लक के राजदूत के रूप में झंडे और नगाड़े के साथ किया था। इब्न बतूता कहता है कि कालीकट का राजा बहुत न्यायशील है। एक बार राजा के नायब या दीवान के भतीजे ने एक मुसलमान व्यापारी की तलवार छीन ली। व्यापारी ने जाकर उसके चाचा से सब हाल कहा। उसने जाँच करने के बाद आज्ञा दी कि उसी तलवार से उस भतीजे के दो टुकड़े कर दिए जायँ।

चीन जानेवाले जहाज़ यहीं से चलते थे। अच्छे मौसिम के आसरे इब्न बतूता को महीनों यहाँ ठहरना पड़ा था। उसके जहाज़ का वकील या प्रधान अधिकारी शाम देश का रहनेवाला था, जिसका नाम सुलैमान सफदी था। उसकी भूल से एक दुर्घटना हो गई। इब्न बतूता का माल असबाब तो जहाज़ पर चढ़ गया और वह आप

किनारे पर छूट गया। अन्त में स्थल के मार्ग से कोलम के लिये इस विचार से चल पड़ा कि मैं वहाँ पहुँच कर उस जहाज़ पर चढ़ूँगा।

कोलम

कोलम आजकल के ट्रावन्कोर में है। इब्न बतूता कहता है—"सारे मलाबार में यह नगर सबसे अधिक सुन्दर है। यहाँ के बाज़ार भी अच्छे हैं। यहाँ के व्यापारी इतने धनी हैं कि वे सारे जहाज़ का माल एक ही बार मोल ले लेते हैं और गोदाम में रखकर बेचते हैं। यहाँ मुसलमान व्यापारी भी बहुत हैं। उनमें सबसे बड़ा अलाउद्दीन है जो आवा नगर का रहनेवाला है। यहाँ इराक़ के लोग अच्छी संख्या में बसे हुए हैं। नगर का क़ाज़ी कज़वीन का एक विद्वान् है। नगर में सबसे बड़ा धनी मुसलमान मुहम्मद शाह बन्दर है। उसका भाई तक़ीउद्दीन बड़ा विद्वान् है। यहाँ की जामे मसजिद भी अच्छी और सुन्दर है। यहाँ के राजा का नाम लोग तिरूरी (वहाँ की भाषा में राजा को डेरी कहते है) बतलाते हैं। यह मुसलमानों का बहुत आदर करता है और बहुत न्यायशील है। यहाँ कालीकट वाले शेख़ शहाबद्दीन गाजरूनी के लड़के शेख फख़रुद्दीन की खानक़ाह है।"

चालियात

जहाज़ों के नष्ट हो जाने के कारण इब्न बतूता को फिर इसी मार्ग से कालीकट लौट आना पड़ा था। मार्ग में वह चालियात में ठहरा था, जिसे अरब लोग शालियात कहते थे और अब जिसको शालिया कहते हैं। यह कालीकट के पास था। इब्न बतूता यहाँ के कपड़ों की कारीगरी की बहुत प्रशंसा करता है। यहाँ से वह हनोर और फिर वहाँ से चन्दापुर (गोआ) पहुँचा था। जान पड़ता है कि उस समय राजा ने (कदाचित् बीजानगर के राजा से अभिप्राय

है) लड़कर सुलतान जमालुद्दीन हनवरी के हाथ से यहाँ का राज्य छीन लिया था। इब्न बतूता यहाँ से जहाज़ पर चढ़कर मालदीप चला गया।

मालदीप

यहाँ अरब व्यापारियों की बड़ी बस्ती थी और सुलतान खदीजा यहाँ शासन करती थी। इसका पूरा हाल ऊपर दिया जा चुका है।

सीलोन

मालदीप से वह सीलोन आया था। उस समय के वहाँ के राजा का नाम आर्य चक्रवर्त्ती था। उसके पास बहुत से जहाज़ थे, जो यमन तक जाया करते थे। यह राजा फ़ारसी भाषा समझता था। चरण चिह्न के कारण यहाँ अरब और अजम के मुसलमान फ़कीरों का आना जाना लगा रहता था।

गाली

घूमता फिरता वह सीलोन के गाली (काली) नामक बन्दर में पहुँचा था। यहाँ से आज भी युरोप और आस्ट्रेलिया के लिये जहाज़ जाते हैं। यहाँ के जहाज़ों का मालिक इब्राहीम नाविक या मल्लाह था। इब्न बतूता कोलम्बो और बताला से इब्राहीम मल्लाह के जहाज़ पर चढ़कर फिर भारत के समुद्र-तट पर मावर (कारोमंडल) में आया था।

मावर (कारोमंडल)

जिस समय इब्न बतूता करोमंडल पहुँचा था, उस समय वहाँ ग़यासुद्दीन दामगानी बादशाह था। यह वही राज्य था जो अलाउद्दीन ख़िलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर की विजय के बाद यहाँ स्थापित हो गया था। यह शायद सन् ७४१ हि० (१३४१ ई०) की बात है।

इस शताब्दी के अन्त में बीजानगर के राजा ने इस्लामी राज्य का अन्त कर दिया था। यहाँ की राजधानी मदूरा नगर में थी।

द्वार समुद्र

आजकल जहाँ मैसूर का राज्य है, उस समय वहाँ होयशल वंश का राज्य था। उसकी राजधानी का नाम द्वारसमुद्र था। उस समय वहाँ जो राजा राज्य करता था, उसका नाम वल्लालदेव था। इब्न बतूता ने उसकी सेना की संख्या एक लाख बतलाई है। उसमें प्रायः बीस हज़ार मुसलमान थे। इब्न बतूता के कहने के अनुसार ये सब मुसलमान सिपाही भागे हुए अपराधी और पहले के चोर और डाकू थे। पर आश्चर्य है कि इतने चोर, डाकू और अपराधी उस समय कहाँ से आ गए थे। कदाचित् इब्न बतूता ने क्रोध में आकर ऐसा लिख दिया है; क्योंकि उस समय ये लोग कारोमंडल के बादशाह ग़यासुद्दीन के, जो इब्न बतूता का साँढू था, विरोधी और शत्रु थे।

बीजानगर

कृष्णा नदी से लेकर समुद्र के किनारे तक बीजानगर का बहुत बड़ा हिन्दू राज्य था। इसके सम्बन्ध में एक बहुत आश्चर्य की बात है। एक ओर तो स्थल में बहमनियों के मुसलमान राज्य से इस बीजानगर का सदा से वैर विरोध और लड़ाई झगड़ा चला आता था; और दूसरी ओर समुद्र के मार्ग से अरब और फ़ारस के मुसलमान बादशाहों के साथ इसका सम्बन्ध बना हुआ था। इसी लिये अमीर तैमूर के लड़के मिरज़ा शाह रुख ने यहाँ अपने कुछ राजदूत भेजे थे, जिनके प्रधान मौलाना कमालुद्दीन अब्दुर्रज़्ज़ाक थे। उन्होंने लौटकर बीजानगर राज्य के वैभव और उन्नति का जो हाल लिखा था, वही हाल अपनी रौजतुस्सफ़ा नाम की पुस्तक में खाविन्द शाह ने और हबीबुस्

सियर ने अपने भूगोल वाले अंश में मंगलौर, कालीकट और बीजानगर के नामों के नीचे उद्धृत किया है। बीजानगर की सेना में दस हज़ार मुसलमान थे, जिनका सैनिक बल बहुत अधिक था और इसी लिये बीजानगर के राजा उनका बहुत आदर करते थे। उन्होंने उनके लिये एक मसजिद भी बनवा दी थी; और वहाँ कुरान का भी आदर किया जाता था।[1]

उपस्थित सज्जन इन दूर के इलाकों में घूमते फिरते उकता गए होंगे। पर फिर भी आप लोगों ने यह देख लिया होगा कि इन दूर दूर के प्रान्तों में मुसलमान लोग सैनिक विजय प्राप्त करने से पहले भी कहाँ कहाँ और किस किस रूप में फैले हुए थे और हिन्दू पड़ोसियों तथा राजाओं के साथ उनके किस प्रकार के सम्बन्ध थे। और आप लोगों ने यह भी देख लिया होगा कि हिन्दू मुसलमानों के सम्बन्धों का यह दृश्य से कितना भिन्न है। अब आइए, थोड़ी देर तक सिन्ध के रेगिस्तान का भी आनन्द लीजिए।

छठा केन्द्र सिन्ध

ऊपर कहा जा चुका है कि अरबों ने हिजरी पहली शताब्दी के अन्त में किस प्रकार देबल (ठट्ठ) से मुलतान तक जीता था। पर वास्तव में इस विजय बल्कि चढ़ाई से भी पहले सिन्ध में मुसलमान लोग बस चुके थे। एक बार पाँच सौ मुसलमान एक अरब सरदार की अधीनता में मकरान से भागकर सिन्ध के राजा दाहर के यहाँ चले आए थे।[2] हिजरी पहली शताब्दी के अन्त में मुहम्मद बिन क़ासिम ने सिन्ध और मुलतान जीता था। इसके बाद से प्रायः सौ सवा सौ

---

[1] फ़रिश्ता; पहला खंड; पृ० ३३३ (नवलकिशोर)।

[2] फुतूहुस् सिन्ध; बिलाज़ुरी।

बरस तक यह देश पहले दमिश्क और फिर बग़दाद के राज्य का एक अंग बना रहा। हिजरी तीसरी शताब्दी (ईसवी नवीं शताब्दी) के मध्य में मोतसिम बिल्लाह के बाद प्रधान केन्द्र की दुर्बलता के कारण यहाँ के अरब शासक प्रायः स्वतन्त्र से हो गए। इसके बाद कहीं तो हिन्दू राजाओं ने किसी किसी के देश पर अधिकार कर लिया; और कहीं मुसलमानों ने अपने राज्य खड़े कर लिए। सुलतान महमूद ग़ज़नवी की चढ़ाई के समय तक सिन्ध में उनमें से कुछ कुछ मुसलमान राज्य बचे हुए थे, जिनमें से दो राज्य औरों से बड़े थे। एक सिन्ध के सिरे पर मन्सूरा में और दूसरा सिन्ध के अन्त में मुलतान में। हिजरी चौथी शताब्दी के अन्त तक जो अरब यात्री यहाँ आते गए हैं, वे इन दोनों मुसलमानी राज्यों का वर्णन करते गए हैं। मुलतान, मन्सूरा, देवल और दूसरे नगरों में सुलतान महमूद के समय से पहले बीसियों मुसलमान विद्वान् और हदीस के ज्ञाता उत्पन्न हुए थे, जिसमें से एक अबूमुअसिर नजीह सिन्धी हैं जो हिजरी दूसरी शताब्दी में हुए थे। ये इतिहास के बहुत बड़े पंडित समझे जाते थे। इनकी इतनी प्रतिष्ठा थी कि जब इनका देहान्त हुआ, तब ख़लीफ़ा महदी ने इनके जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई थी।

उसी समय सिन्ध में अरबी भाषा का एक प्रसिद्ध कवि हुआ था, जिसका नाम अबू अता सिन्धी है। यद्यपि इसका उच्चारण ठीक नहीं था, पर फिर भी इसके अरबी शेरों की श्रेष्ठता ख़ास अरब के रहनेवाले भाषाविद् भी मानते थे। यदि इस प्रकार और कोटि के दूसरे महानुभावों के नाम यहाँ गिनाए जायँ, तो एक बड़ा पोथा तैयार हो जायगा; इस लिये यह प्रकरण यहीं पर छोड़ा जाता है।

अरबों ने सिन्ध प्रान्त जीतने के बाद वहाँ अपने उपनिवेश स्थापित किए थे। कुरैश, कल्ब, तमीम, असद, यमन और हज्जाज के बहुत से कबीले यहाँ के भिन्न भिन्न नगरों में आकर बस गए; और

हिजरी तीसरी शताब्दी के मध्य तक मुलतान से लेकर समुद्र तक इनका राज्य किसी न किसी प्रकार बना रहा। पर अन्त में यमन और हज्जाज के अरबों के आपस के लड़ाई झगड़ों ने इनको नष्ट कर दिया और बहुत से प्रदेश इनके हाथों से निकल गए। फिर भी मुलतान और मन्सूरा (सिन्ध) में इनके दो राज्य ऐसे थे जो सुलतान महमूद की चढ़ाई तक बने रहे। पहले इन्हीं दोनों का वर्णन कुछ विस्तार के साथ किया जायगा।

मुलतान

ऊपर कहा जा चुका है कि इस नगर पर अरबों ने हिजरी पहिली शताब्दी (ईसवी सातवीं शताब्दी) में अधिकार किया था। उस समय से लेकर सुलतान महमूद ग़ज़नवी के समय तक सदा इस पर अरबों का ही अधिकार रहा। हिजरी तीसरी और चौथी शताब्दी के सभी अरब यात्रियों ने इसका वर्णन किया है। सुलतान महमूद की चढ़ाईके समय और उसके बाद भी बराबर यहाँ मुसलमानों का उपनिवेश बना रहा। आरम्भ में सिन्ध के दूसरे नगरों के साथ मुलतान पर भी दमिश्क के उम्मिया वंश का अधिकार रहा। तीस पैंतिस बरस के बाद समय ने करवट बदली। सन् १३२ हि० में मुसलमानी साम्राज्य की गद्दी पर उमैया लोगों की जगह अब्बासी लोग बैठे और शासन का केन्द्र दमिश्क से हटकर बग़दाद आ गया। उसके बाद प्रायः हिजरी तीसरी शताब्दी के आरम्भ तक अर्थात् मोतसिम के समय तक मुलतान का अब्बासी शासन के केन्द्र के साथ सम्बन्ध रहा। इसके बाद यह अवस्था हो गई कि यदि खलीफ़ा बलवान् होता था, तो वह इस दूर के नगर पर अपना अधिकार रखता था; और यदि दुर्बल होता था तो यहाँ के प्रधान अधिकारी स्वतन्त्र हो जाते थे। वे अधिकारी वाली कहलाते थे। मुलतान उन दिनों सिन्ध और मन्सूरा

के वालियों के हाथ में रहता था। पर पीछे से मुलतान सिन्ध से भी अलग हो गया और वहाँ एक अलग, स्वतन्त्र और स्थायी राज्य बन गया। इस स्वतन्त्रता का समय लगभग हिजरी तीसरी शताब्दी का मध्य भाग है।

यहाँ मुलतान से हमारा अभिप्राय केवल एक नगर से नहीं है, बल्कि पूरे सूबे या प्रदेश से है, जो किसी समय पूरी एक रियासत या राज्य था। मिश्र के मन्त्री महलबी ने हिजरी चौथी शताब्दी में लिखा है—"इसकी सीमाएँ बहुत विस्तृत हैं। पच्छिम की ओर मकरान और दक्खिन की ओर मन्सूरा (सिन्ध) तक इसका विस्तार है।"[1] सिन्ध नद के पास जो कन्नौज था, वह सन् ३०० हि० में मुलतान के सूबे में था।[2] उस समय एक लाख और बीस गाँव मुलतान के मुसलमानी राज्य की सीमा में थे।[3]

पुराने राज्यों में प्रायः यह नियम था और होना भी चाहिए कि जिन सम्प्रदायों का शासन और सरकार से सम्बन्ध नहीं होता था, वे भाग भागकर राज्य के अन्तिम और सीमा पर के प्रदेशों में जाकर शरण लेते थे। अग्निपूजक ईरानियों और ईसाई रूमियों में भी यही दस्तूर था; और मुसलमान अरबों में भी यही बात हुई थी। पहले कहा जा चुका है कि कजदार में खारिजी[4] मुसलमानों की बस्ती थी और उन्हीं का राज्य भी था इसी प्रकार मुलतान में भी

[1] अबुल् फ़िदा कृत तकवीमुल् बुलदान ; पृ० ३५० (पेरिस)।

[2] मसऊदी ; पहला खंड ; पृ० ३७२ (पेरिस)।

[3] उक्त ग्रन्थ ; पृ० ३७५ ।

[4] मुसलमानों का वह सम्प्रदाय जो अबूबकर, उमर और उस्मान इन्हीं तीनों ख़लीफ़ाओं को मानता है; चौथे ख़लीफ़ा अली को नहीं मानता और उनका विरोधी है।—अनुवादक।

शीया सम्प्रदाय के इस्माइलिया नामक एक वर्ग के लोग आकर बस गए थे और पीछे से वहाँ इनका राज्य स्थापित हो गया था। इनका वंश शुद्ध अरबी था और ये लोग अपने आपको सामा बिन लोई की सन्तान कहते थे।

बनूसामा (सामा वंशज) कौन थे

ऊपर कुरैश के पूर्वजों में से एक का नाम लोई बिन ग़ालिब आया है। इसी लोई की एक सन्तान का नाम सामा था। इसी के वंश को बनू सामा कहते थे।[१] इस्लाम में इस वंश की बहुत अधिक उन्नति मोतजिद के समय (सन् २७९—२८६ हि०) में हुई थी। बात यह हुई कि अरब के उमान प्रदेश में ख़ारिजी, सम्प्रदाय के मुसलमानों की बहुत अधिकता थी। ख़लीफ़ा ने मुहम्मद बिन क़ासिम को उन्हें दबाने के लिये नियत किया। उसने ख़ारिजी लोगों को हराया और उमान में अपना राज्य स्थापित कर के वहाँ सुन्नी सम्प्रदाय का प्रचार किया। यह इस वंश का पहला अमीर था और इसके बाद इसकी सन्तान का बराबर इस राज्य पर अधिकार रहा। सन् ३०५ हि० में इन लोगों में आपस में घरेलू लड़ाई झगड़ा हुआ। उस समय बहरैन में करमती लोग बहुत बलवान् हो रहे थे। उन्होंने इनकी इस घरेलू लड़ाई से लाभ उठाया। यहाँ तक कि अन्त में सन् ३१७ हि० में अबू ताहिर करमती ने उमान प्रदेश इस वंश के हाथ से छीनकर करमती राज्य की सीमा में मिला लिया।[२]

---

[१] इब्न ख़लदून ने यह बात बार बार स्पष्ट कर के बतलाई है कि कुरैश के वंशों का इतिहास जाननेवाले बहुत से लोग यह नहीं मानते कि बनू सामा लोग इसी सामा बिन लोई के वंश के थे। देखो इब्न ख़लदून; पहला खंड; पृ० ३२४ और चौथा खंड; पृ० ९३।

[२] उक्त ग्रन्थ; चौथा खंड; पृ० ९३ (मिस्र)।

उमान से सिन्ध तक समुद्र के मार्ग से आना जाना और समुद्री व्यापार सदा से होता आया था। और सम्भवतः सिन्ध के साथ सामा लोगों का सम्बन्ध बहुत पुराना था। ख़लीफ़ा मामूँ रशीद के समय से लेकर मोतसिम बिल्लाह (सन् २२७ हि०) के समय तक बनू सामा के दास फ़ज़ल बिन माहान और उसके बाद उसके वंश के लोगों ने सिन्ध के सन्दान नामक स्थान पर बराबर राज्य किया। पर अन्त में वह वंश भी आपस की घरेलू लड़ाई के कारण नष्ट हो गया।[1]

इस पुराने सम्बन्ध को देखते हुए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि बनू सामा या सामा के वंश के लोग उमान का राज्य नष्ट होने पर वे करामता से भागकर सिन्ध और सिन्ध से मुलतान चले आए हों और यहाँ ईश्वर ने उन्हें फिर नया राज्य प्रदान किया हो। जो हो, यही बनू सामा मुलतान के अमीर या शासक थे; और इन्हीं को पिछले पूर्वज के विचार से बनू मम्बा भी कहते थे। हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त में सब से पहले इनके स्वतन्त्र राज्य का नाम हमको मिलता है।

बनू मम्बा

सब से पहले इब्न रस्ता, जिसका समय सन् २९० हि० है, अपनी किताबुल् अलाकुल् नफ़्सियः के भूगोलवाले अंश में कहता है—

"मुलतान में एक जाति रहती है जो अपने आपको सामा बिन लोई[2] की सन्तान बतलाती है। इनको लोग बनू मम्बा कहते हैं और

---

[1] बिलाज़ुरी; पृ० ४४६ (लीडन)।

[2] कुछ इतिहास-लेखकों और यात्रियों ने कहीं कहीं सामा की जगह आसामा लिख दिया है, पर यह ठीक नहीं है।

यही लोग वहाँ निवास करते हैं। ये अमीरुल् मोमिनीन का ख़ुतबा पढ़ते हैं। जब भारत के राजा लोग इनसे लड़ने के लिये आते हैं, तब ये भी मुलतान से अपनी बड़ी सेना लेकर निकलते हैं और अपने धन तथा बल के कारण उन राजाओं को दबाते हैं।"[१]

इसके दस बरस बाद मसऊदी सन् ३०० हि० के कुछ ही पीछे मुलतान पहुँचता है। वह लिखता है—

"जैसा कि हमने कहा है, मुलतान का राज्य सामा बिन लोई बिन ग़ालिब के हाथ में है। वही यहाँ का अमीर है। उसके पास सेना और बल है और मुलतान इस्लामी राज्य की बड़ी सीमाओं में से एक सीमा है। मुलतान के अधिकार में उसके चारों ओर एक लाख बीस गाँव ऐसे हैं जो गिने जा चुके हैं। यहीं वह प्रसिद्ध मन्दिर है। . . . मुलतान के अमीर की अधिक आय उन्हीं सुगन्धित लकड़ियों से है, जो दूर दूर से इस मन्दिर के लिये आती हैं। . . . . जब कभी हिन्दू इस नगर पर चढ़ाई करते हैं और मुसलमान उनका सामना नहीं कर सकते, तब वे यह धमकी देते हैं कि हम यह मन्दिर तोड़ डालेंगे। बस हिन्दू सेनाएँ लौट जाती हैं। मैं सन् ३०० हि० के बाद मुलतान गया था। उस समय वहाँ का शासक अबुल् लबाब मम्बा बिन असद करशी सामी था।[२]

मसऊदी के चालीस बरस बाद सन् ३४० हि० में इस्तख़री भारत आया था। वह कहता है—

"मुलतान नगर मन्सूरा से आधा है। यहाँ एक मन्दिर है जिसमें दर्शन करने के लिये दूर दूरसे लोग आते हैं। वे इस मन्दिर

---

[१] अल् ऐलाक उल् नफ़्सिया; इब्न रुस्ता; पृ० १३५ (लीडन सन् १८९२ ई०)।

[२] मसऊदी कृत मुरूजुज़्ज़हब; पहला खंड; पृ० ३७५-७६ (पेरिस)।

और इसके पुजारियों पर बहुत अधिक धन व्यय करते हैं। यह मन्दिर बाज़ार के सब से अधिक बसे हुए भाग में है। .... (इसके आगे मूर्त्ति का वर्णन है।) .... जो कुछ यहाँ आता है, वह सब मुलतान का अमीर ले लेता है। उसमें से कुछ तो वह पुजारियों पर ख़र्च करता है और कुछ अपने लिये बचा रखता है। जब कभी कोई हिन्दू राजा इसपर चढ़ाई करना चाहता है, तब वह इस मन्दिर को नष्ट कर देने की धमकी देता है, जिससे वे लोग लौट जाते हैं। यदि यहाँ यह मन्दिर न होता, तो हिन्दू राजा इस नगर को नष्ट कर देते। मुलतान के चारों ओर एक मजबूत परकोटा है। ... नगर के बाहर आधे फरसंग पर बहुत से मकान हैं, जिनका नाम जन्दरावन है। यह सैनिक छावनी है। यहीं बादशाह रहता है। वह केवल शुक्रवार को हाथी पर सवार होकर नमाज पढ़ने के लिये मुलतान जाता है। वह कुरैश जाति का है और सामा बिन लोई के वंश में है। मुलतान पर उसने अधिकार कर लिया है और वह मन्सूरा (सिन्ध) के अमीर या और किसी के अधीन नहीं है। वह केवल ख़लीफ़ा के नाम का ख़ुतबा पढ़ता है।"[१]

इस्तख़री के सत्ताइस बरस बाद सन् ३६७ हि० में बग़दाद का इब्न हौकल मुलतान आया था। उसने मुलतान का बहुत कुछ हाल लिखा है, पर वहाँ के बातिनियों[२] और इस्माइलियों का कोई उल्लेख

[१] याक़ूत कृत मुअजमुल् बुल्दान में "मुलतान" शब्द; इस्तख़री के आधार पर।

[२] शीया सम्प्रदाय का एक वर्ग जो यह कहता है कि कुरान का वास्तविक अर्थ या तो मुहम्मद साहब जानते थे और या हज़रत अली। कुरान के शब्दों में साधारणतः जो अर्थ निकलता है उसके सिवा उसका कुछ गूढ़ अर्थ है। —अनुवादक

नहीं किया है, यद्यपि यह नई बात अवश्य ही लिखने के योग्य थी। इब्न हौकल के आठ बरस बाद बुशारी मुकद्दसी मुलतान आया था। वह कहता है—

"मुलतानवाले शीया हैं। वे अजान में हैय अला खैरिल् अमल" (सब लोग शुभ काम के लिये चलो) कहते हैं और नमाज़ के लिए खड़े होने पर पहले दो बार तकबीर[1] पढ़ते हैं।"[2]

"मुलतान में लोग मिस्र के फ़ातिमी ख़लीफ़ा का ख़ुतबा पढ़ते हैं और उसी की आज्ञा से यहाँ का प्रबन्ध होता है। यहाँ से मिस्र के लिये बराबर उपहार आदि भेजे जाते हैं।"[3]

इन वर्णनों से और दूसरी बातों के सिवा यह भी सिद्ध होता है कि इब्न रस्ता के समय में अर्थात् सन् २९० हि० में और फिर मसऊदी के समय में भी; क्योंकि वह इस विषय में कुछ भी नहीं कहता और इस्तख़री के समय अर्थात् सन् ३४० हि० में मुलतान का शासन सुन्नी मुसलमानों के हाथ में था; और वहाँ बग़दाद के ख़लीफ़ा का ख़ुतबा पढ़ा जाता था। सन् ३६७ हि० तक कोई ऐसी बात नहीं हुई जो लिखने के योग्य हो। पर सन् ३७५ हि० में यह नगर इस्माइलियों के हाथ में दिखाई देता है और उनपर मिस्र के इस्माइली फ़ातिमी ख़लीफ़ा का प्रभाव देखने में आता है। इससे यह प्रकट होता है कि मुलतान के शाही वंश के धर्म में यह परिवर्त्तन सन् ३४० हि० बल्कि सन् ३६७ हि० और सन् ३७५ हि० के बीच में हुआ था।

---

[1] मुसलमान लोग जब नमाज़ पढ़ने के लिए पंक्ति बाँधकर खड़े होते हैं तब उनमें से एक आदमी फिर से कुछ संक्षिप्त अज़ान देता है। उसी को तकबीर कहते हैं और पंक्ति बाँधकर खड़ा होना अकामत कहलाता है। —अनुवादक।

[2] मुक़द्दसी कृत अहसनुत्तक़ासीम ; पृ० ४८१।

[3] उक्त ग्रन्थ; पृ० ४८५।

यह समय अनुमान से निश्चय किया गया है; और इसका समर्थन इस बात से होता है कि मिस्र में इस्माइली फ़ातिमियों का राज्य भी उसी समय अर्थात् सन् ३५८ हि० में स्थापित हुआ था; और सन् ३६१ हि० में उनकी राजधानी अफ्रिक़ा से मिस्र चली गई थी। उस समय इस्लामी जगत दो भागों में बँट रहा था। सुन्नी लोग बग़दाद की अब्बासी ख़िलाफ़त को और शीया लोग मिस्र की फ़ातिमी ख़िलाफ़त को मानते थे। ये दोनों ही ख़िलाफ़तें भिन्न भिन्न इस्लामी देशों पर अपना अपना प्रभाव बढ़ाने के लिये आपस में चढ़ा ऊपरी कर रही थीं। यहाँ तक कि स्वयं मक्के और मदीने में भी इस प्रकार की चढ़ा ऊपरी हुआ करती थी। जब मुसलमानों का कोई नया राज्य स्थापित होता था, तब दोनों के प्रतिनिधि और प्रचारक अपना अपना काम आरम्भ कर देते थे। यद्यपि उस समय बग़दाद की ख़िलाफ़त दुर्बल होने लगी थी और मिस्र की उन्नति का समय था, बग़दाद का अब्बासी राज्य वृद्ध हो चला था और मिस्र के फ़ातिमी राज्य की जवानी थी, पर बग़दाद की यह कमी इस बात से पूरी हो रही थी कि पूर्व में जो नए तुर्की राज्य स्थापित हो रहे थे, वे अब्बासी राज्य को ही अपना नेता मानते थे। बुख़ारा के सामानी लोग इन्हीं के प्रभाव में थे। हिजरी चौथी शताब्दी के मध्य में गज़नवी लोग प्रकट हुए और इसके चालिस पचास बरस बाद सलजूक़ी लोगों का झंडा फहराने लगा। यद्यपि इन दोनों का सैनिक बल बहुत बढ़ा चढ़ा था, पर फिर भी इन लोगों ने अब्बासी ख़लीफ़ाओं के सामने सिर झुकाया।

ज्यों ही सुलतान महमूद ग़ज़नवी की प्रसिद्धि होने लगी, त्यों ही बग़दाद के ख़लीफ़ा ने सबसे पहले सन् ३८७ और ३९० हि० के बीच में उसका सम्मान बढ़ाने के लिये बहुत अच्छी ख़िलअत भेजी; और उसे अमीनुल् मिल्लत यमीनुद्दौला "(धर्म का रक्षक और

साम्राज्य का दाहिना हाथ) की उपाधि दी। इसके बाद सन् ३९६ हि० में सुलतान ने मुलतान के इस्माइलियों के विरुद्ध अपनी सेना बढ़ाई और सन् ४०१ हि० में वहाँ के करमती अमीर को पकड़ लिया। शायद यही बातें देखकर सन् ४०३ हि० में मिस्र के फ़ातिमियों ने भी महमूद के पास अपना राजदूत भेजा। पर सुलतान ने उसको बातिनी समझकर रास्ते में ही पकड़वा लिया; और प्रसिद्ध सैयद हुसैनबिन ताहिर बिन मुस्लिम अलवी को सौंप दिया[1], जिन्हों ने उसे मरवा डाला।

मुलतान के करमती

अब प्रश्न यह है कि अरब भूगोल-लेखक सन् ३४० हि० तक जिस बनू मम्बा नामक अरब सुन्नी वंश को मुलतान का निवासी लिखते हैं, उसके बाद का इस्माइली वंश वही अरब बनू मम्बा था, जो सुन्नी से इस्माइली बन गया था या यह कोई दूसरा वंश था? हमारे सामने पुस्तकों का जो ढेर लगा हुआ है, उसमें हमें इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिलता। पर अबू रैहान बेरूनी अपनी किताबुल् हिन्द नाम की पुस्तक में, जो उसने सन् ४२६ हि० में लिखी थी, मुलतान के मन्दिर का इतिहास बतलाता हुआ लिखता है—

"जब करमती (इस्माइलिया) लोगों का मुलतान पर अधिकार हुआ, तब जल्म बिन शैबान ने, जिसने उस समय यहां प्रभुता प्राप्त कर ली थी, मुहम्मद बिन कासिम की जामा मसजिद को एक अमवी स्मृति समझकर बन्द करा दिया, और इस मन्दिर को तोड़ कर उसकी जगह मसजिद बना दी।"[2]

[1] इस फ़ातिमी राजदूत के आने का वर्णन जैन उल् अख़बार पृ० ७१ (बरलिन) में है।

[2] किताबुल् हिन्द ; पृ० ५०१ (लन्दन)।

इससे जान पड़ता है कि जो करमती वंश हिजरी चौथी शताब्दी के अन्त में बलवान् हो गया था, वह कोई दूसरा वंश था; और उसके मूल पुरुष का नाम जल्म बिन शैबान था। और जैसा कि इन नामों से पता चलता है, वह भी अरब था। आगे चलकर बैरूनी कहता है—"इन करमती लोगों का समय हमसे प्रायः एक सौ बरस पहले था।"[१] किताबुल् हिन्द सन् ४२४ हि० में लिखी गई थी। इससे सौ बरस पहले सन् ३२४ हि० होगा। पर हम यह बात जान चुके हैं कि सन् ३४० हि० तक यहाँ निश्चित रूप से बनू मम्बा नामक अरब सुन्नी वंश का राज्य था। इस लिये यह सन् ३२४ हि० मुलतान पर करमती लोगों का अधिकार होने का समय नहीं है; उस समय वे लोग इराक़ और फ़ारस की खाड़ी के तटों पर प्रकट हुए होंगे।

असल बात यह है कि इस अवसर पर तीन इस्लामी दलों के नाम गड्ड मड्ड हो गए हैं यद्यपि करमती, इस्माइली और मलाहदी ये तीनों इस्माइली शीया सम्प्रदाय के ही भेद हैं, पर इन तीनों में थोड़ा थोड़ा अन्तर है; और इन तीनों के उत्पन्न होने का समय भी अलग अलग है। सबसे पहले हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त में करमती लोग बहरीन टापू, फ़ारस की खाड़ी और इराक़ की सीमा पर प्रकट हुए थे। इस्माइली लोग सन् २९६ हि० में अफ्रिक़ा में प्रकट हुए थे; पर मिस्र में ये लोग सन् ३५६ हि० में आए थे। और मलाहदी, जिसका दूसरा नाम बातीना भी है और जो हसन सब्बाह का दल था, सन् ४८३ हि० (१०९१ ई०) के बाद ख़ुरासान में प्रकट हुआ था।

मिस्र के इस्माइली फ़ातिमी ख़लीफ़ा अल् हाकिम बेअम्रिल्लाह ने शाम देश में एक और दल उत्पन्न किया था, जिसका प्रसिद्ध नाम

---

[१] उक्त ग्रन्थ; पृ० ४६।

दुरूज है। अब प्रश्न यह है कि मुलतान में जो दल शासन करने लगा था, वह इस्माईली शीया तो अवश्य था, पर वह इनमें से किस सम्प्रदाय का था। मेरी समझ में वे फ़ातिमी इस्माईली शीया थे जिनका केन्द्र मिस्र में था। कुछ इतिहास-लेखकों ने इनको जो क़रमती और मलाहदी कहा है, वह उस समानता के कारण कहा है जो इन दलों में आपस में हैं। और इसका प्रमाण यह है कि जिस समय अर्थात् सन् ३४० हि० के बाद मुलतान में ये लोग बलवान् होते हैं, उस समय सभी जगह क़रमती लोगों की अवनति और पतन हो रहा था। दूसरी बात यह है कि करमती लोग मिस्र के फ़ातिमी ख़लीफ़ाओं की प्रधानता नाममात्र के लिये मानते थे और मुलतानवाले मिस्र के ही फ़ातिमी ख़लीफ़ाओं को मानते थे। तीसरे यह कि बुशारी मुक़द्दसी जो एक धार्मिक विद्वान् था, इन्हें करमती नहीं बल्कि शीया लिखता है; और कहता है कि इनपर फ़ातिमी ख़लीफ़ाओं का प्रभाव था। फिर "हैय अला खैरिल् अमल" की अज़ान, जुमे की नमाज़ और ख़ुतबे आदि के ढंग क़रमती लोगों में नहीं थे, जिनका अस्तित्व मुलतान के इस्माईलिया में मुकद्दसी के वर्णन से प्रमाणित होता है। दुरूज़ी लोग सन् ३८६ हि० से ४११ हि० तक के बीच में उत्पन्न हुए थे, जो बहुत पीछे का समय है। और बातिनी या मलाहदी अर्थात् हसन बिन सब्बाह का दल तो इसके सौ बरस बाद उत्पन्न हुआ था। इस लिये कुछ इतिहास-लेखकों का इनको मलाहदी कहना बिलकुल ग़लत है।

यह हो सकता है कि फ़ारस की खाड़ी, बहरैन और उमान के क़रमतियों से ही ये लोग पहले क़रमती के रूप में उत्पन्न हुए हों और पीछे से क़रमतियों की अवनति होने पर इन्हों ने फ़ातिमी इस्माईली ढंग पकड़ लिया हो; क्योंकि क़रमती भी मानो आधे इस्माईली ही थे।

सुलतान महमूद की चढ़ाई के समय मुलतान में जो इस्माईली वंश शासन करता था, फ़ारसी इतिहासों के अनुसार उसके मूल पुरुष का नाम शेष हमीद था। फ़रिश्ता ने ईश्वर जाने किस आधार पर लिखा है—"वे आरम्भ के मुसलमान, जो अफ़ग़ानिस्तान की चढ़ाई के समय इधर आ गए थे, पीछे से लौटकर अपने घर न जा सके; और उन्होंने ख़ैबर के पहाड़ी पठानों के साथ ब्याह शादी करना आरम्भ कर दिया। इस अरबी और अफ़ग़ानी वंशों से लोधी और सूर नाम के दो क़बीले उत्पन्न हुए। शेख हमीद इसी लोधी वंश का था।" जिस प्रकार और बहुत सी बातों का कोई आधार नहीं है, उसी प्रकार इन क़बीलों की उत्पत्ति के सम्बन्ध की इस बात का भी कोई आधार नहीं है। लोधियों ने कभी अपने नाम के साथ शेख नहीं लिखा और न उनके नाम ही इस प्रकार के होते थे। बल्कि यह बात भी कठिनता से मानी जायगी कि उस समय तक वे लोग मुसलमान हो चुके थे। सच बात तो यह है कि फ़ारसी इतिहास-लेखक मुलतान का अरबी इतिहास बिलकुल नहीं जानते थे। इस लिये वे मुलतान के इन मुसलमान रईसों या अमीरों को अफ़ग़ान समझनेके लिये विवश थे। और नहीं तो शेख़ हमीद आदि का वास्तव में अफ़ग़ानों से कोई सम्बन्ध नहीं था। बल्कि सम्भवतः वे लोग जलम बिन शैबान के वंश के थे, जिसका भी ऊपर बैरूनी के आधार पर उल्लेख हो चुका है। आगे इनका विस्तार सहित वर्णन किया जायगा।

फ़रिश्ता में लिखा है कि जब अलप्तगीन और उसके उत्तराधिकारी सुबक्तगीन ने सीमा पर के अफ़गानों पर चढ़ाइयां करनी शुरू कीं, तब उन्होंने लाहौर के राजा जैपाल से सहायता माँगी। राजा जयपाल ने भाटिया के राजा से सलाह की; और यह निश्चय किया कि भारत की सेना जाड़ों में सीमा पर की ठंढ नहीं सह सकती; इस लिये पठानों को यहाँ लाकर बसाना चाहिए; और इस लिये उसने

शेख़ हमीद लोधी को लमगान और मुलतान की जागीर दी। शेख़ हमीद ने अपने हाकिम नियत किए और उसके बदले में उसने सन् ३५१ से ३६५ हि० तक भारत को अलप्तगीन की चढ़ाइयों से बचाया।[१] इसमें पठानों को लाकर बसाना और शेख़ हमीद को लोधी बतलाना दोनों ठीक नहीं हैं, मन-गढ़न्त हैं।

जब अलप्तगीन के बाद सन् ३६५ हि० में सुबक्तगीन बादशाह हुआ, तब शेख़ हमीद ने ग़ज़नी का बढ़ता हुआ बल देखकर अमीर सुबक्तगीन से सन्धि कर ली और आप उसका करद सरदार बन गया। पर जब सन् ३९० हि० में ग़ज़ना के सिंहासन पर सुलतान महमूद बैठा और फिर जब सन् ३९५ हि० में उसने भाटिया के राजा बजराव पर चढ़ाई की, तब मुलतान का राज्य शेख़ हमीद के पोते अबुल फ़तह दाऊद बिन नसीर बिन शेख हमीद के हाथ में था। फ़ारसी इतिहासों में इसी को मुलहिद और क़रमती इस्माईली कहा गया है। अबुल फ़तह से दाऊद ने कदाचित् सुलतान महमूद का बढ़ता हुआ साहस देखकर यह चाहा कि मैं हिन्दू राजाओं के साथ मिलकर अपना बचाव करूँ। इसी लिये भाटिया की चढ़ाई के समय अबुल फ़तह ने महमूद के विरुद्ध बजराव की सहायता की थी।[२]

उस बार तो सुलतान चुप रहा, पर दूसरे बरस सन् ३९६ हि० में उसने अबुल फ़तह को दंड देने का विचार किया। इस बार उसने चाहा कि मैं सीधा अर्थात् डेरा ग़ाज़ी ख़ां से होकर न चलूँ, बल्कि पेशावर से पंजाब होकर मुलतान पहुँचूँ जिसमें अबुल फ़तह को मेरे आने की ख़बर न मिलने पावे। इस विचार से उसने पंजाब के राजा

[१] यह पूरी घटना फ़रिश्ता, पहला खंड, पृ० १७-१८ (नवलकिशोर) में दी हुई है।

[२] यह पूरी घटना उक्त ग्रन्थ के पृ० २४-२५ में दी हुई है।

आनन्दपाल से रास्ता माँगा और कहा कि तुम इस देश से होकर मेरी सेना को मुलतान जाने दो। कुछ दूसरे इतिहास लेखकों का यह कहना है कि सुलतान का यह विचार जानकर स्वयं अबुल फ़तह ने राजा आनन्दपाल से सहायता माँगी। राजा ने लाहौर से पेशावर जाकर सुलतान को रोका। पर सुलतान की सेना आनन्दपाल को हराकर उसीके देश से होकर मुलतान पहुँची। अबुल फ़तह क़िले में बन्द हो गया। अन्त में नगरवालों ने बीच में पड़कर इस शर्त पर मेल कर लिया कि मुलतान से नियत कर बराबर ग़ज़नी पहुँचता रहेगा। अबुल फ़तह ने अपना पुराना धार्मिक विश्वास छोड़ दिया; और वचन दिया कि मैं अपने देश में इस्माईली की जगह सुन्नी सम्प्रदाय की आज्ञाओं का प्रचार करूँगा। इसके कुछ ही बरसों के बाद (सन् ४०२ हि० से पहले) सुलतान ने फिर मुलतान पर चढ़ाई की; और इस्माईलियों का जड़ से नाश कर दिया। साथ ही वह दाऊद बिन नसीर को; पकड़ कर ग़ज़नी ले गया; और उसे ग़ोर के क़िले में क़ैद कर दिया, जहाँ वह मर गया[1]।

यह तो फ़रिश्ता के लेखका सारांश है, पर गर्देजी अपने जैनुल अख़बार नामक इतिहास में जो सन् ४४१ हि० के लगभग ग़ज़नियों के शासनकाल और राजधानी में लिखा गया था, लिखता है—"ग़ज़नी से सुलतान ने मुलतान जाने का विचार किया और सोचा कि अगर मैं यहाँ से सीधा मुलतान जाता हूँ, तो शायद दाऊद बिन नस्र (नसीर नहीं) को, जो मुलतान का अमीर था, ख़बर हो जाय और वह अपने बचाव का उपाय कर ले; इस लिये वह दूसरे रास्ते से चला। रास्ते में आनन्दपाल पड़ता था। उसने उससे रास्ता माँगा। राजा ने रास्ता नहीं दिया। सुलतान लड़ा। आनन्दपाल भागकर कश्मीर

[1] तारीख़ फ़रिश्ता; पृ० २५-२७ (नवलकिशोर)।

चला गया। सुलतान मुलतान पहुँचा और सात दिन तक नगर पर घेरा डाले पड़ा रहा। अन्त में नगरवालों ने इस बात पर सन्धि कर ली कि हम २० हज़ार दिरम कर दिया करेंगे। सुलतान लौट गया। यह घटना सन् ३९६ हि० में हुई थी। .... फिर जब सन् ४०१ हि० में वह आया, तब ग़ज़नी से मुलतान गया; और मुलतान का जो अंश बचा रह गया था, उसे भी जीत लिया। वहाँ जो क़रमती (इस्माईली) थे, उनमें से बहुतों को उसने पकड़ लिया। उनमें से कुछ को मार डाला, कुछ के हाथ काटे और कुछ को दूसरे कड़े दंड दिए। ...... उसी वर्ष उसने दाऊद बिन नस्र को पकड़ लिया और गोर के किले में क़ैद कर दिया।"[1]

अरबी के प्रामाणिक इतिहासों में इस घटना के सम्बन्ध में बहुत ही संक्षिप्त वर्णन है; और कुछ बातों में आपस में कुछ मतभेद भी है। पर फिर भी इस घटना की कुछ मुख्य मुख्य बातें उन सब में एक समान हैं। इब्न असीर (सन् ५५५-६३० हि०) में लिखता है—

"इस साल (सन् ५९६ हि०) सुलतान महमूद ने मुलतान पर चढ़ाई की। इसका कारण यह था कि सुलतान ने सुना था कि मुलतान का वाली और अमीर अबुलफ़तह शुद्ध धर्म (इस्लाम) पर विश्वास नहीं रखता और लोग उसपर इस्माईली होने का अभियोग लगाते थे। उसने यह भी सुना था कि अबूलफ़तूह ने अपनी प्रजा से भी इस्माईली सम्प्रदाय में आ जाने के लिये कहा है; और प्रजा ने उसकी बात मान भी ली है। यही सब बातें सुनकर सुलतान ने उसपर जिहाद (धार्मिक युद्ध) करना आवश्यक समझा; और चाहा कि जिस पद पर वह है, उससे उसे नीचे उतार दिया जाय। इस लिये

[1] गर्देज़ी कृत ज़ैनुल् अख़बार; पृ० ६७-६८ (बरलिन)।

वह ग़ज़नी से उसकी ओर चला। रास्ते में उसे बहुत सी नदियाँ मिलीं, जिनमें पानी बहुत ज़ोरों से बह रहा था। विशेष कर सैहून नदी को पार करना बहुत ही कठिन था। इस लिये आनन्दपाल से कहला भेजा कि तुम अपने देश में से होकर हमें मुलतान जाने का रास्ता दो। जब उसने यह बात नहीं मानी, तब सुलतान ने पहले उसीपर चढ़ाई की। . . . . . . आनन्दपाल भागकर काश्मीर चला गया। जब अबुल्फ़ुतूह ने सुलतान के आने का हाल सुना, तब उसने सोचा कि मैं उसका न तो सामना कर सकता हूँ और न उसकी आज्ञा टाल सकता हूँ। इस लिये उसने अपना सारा धन सरन्दीप भेजवा दिया और मुलतान ख़ाली कर दिया। जब सुलतान वहाँ पहुँचा, तब उसने देखा कि वहाँ के लोग सीधे मार्ग से भ्रष्ट होकर अन्धे हो रहे हैं। उसने उन सबको घेर लिया और लड़ कर मुलतान पर अधिकार कर लिया और उनपर २० हज़ार दरहम जुरमाना किया।"[१]

इब्न ख़लदून ने भी अपने इतिहास में यही घटनाएँ दोहराई हैं।[२]

इस उद्धरण से एक तो शुद्ध नाम जाना जाता है। यह पता चल जाता है कि नाम अबुलफ़तह नहीं था, बल्कि अबुलफ़ुतूह था। दूसरे यह पता चलता है कि ग़ज़नी से सीधा मुलतान जानेवाला रास्ता छोड़कर पंजाब के रास्ते मुलतान जाने की क्यों आवश्यकता पड़ी थी। परन्तु इसमें जो यह कहा है कि अबुलफ़ुतूह ने अपना ख़ज़ाना मुलतान से सरन्दीप भेज दिया था, उसका कोई आधार नहीं है। शायद उस समय के लेखक को यह पता न हो कि मुलतान से सरन्दीप कितनी दूर है। यह भी हो सकता है कि मूल प्रतिमें किसी और नगर का नाम हो और भूल से सरन्दीप छप गया हो। इसके बाद सन्

[१] कामिल इब्न असीर ; नवाँ खँड ; पृ० १३२ (लीडन)।

[२] इब्न ख़लदून ; चौथा खंड ; पृ० ३२६ (मिस्र)।

४०३ हि० में मिस्र के फ़ातिमी ख़लीफ़ा ने सुलतान महमूद से सम्बन्ध स्थापित करना चाहा था। पर सुलतान ने वह बात नहीं मानी और, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, मिस्र के ख़लीफ़ा का दूत रास्ते में ही मारा गया।

इस सम्बन्ध में दुरूजियों की पवित्र पुस्तक का एक अंश बहुत महत्व का है। मिस्र के इस्माईली खलीफा हाकिम बेअमरिल्लाह (सन् ३८६-४११ हि०) ने मिस्र और शाम में जो अपना नया दल बनाया था, उसी का नाम दुरूजी था। इस दल के लोग आज तक शाम और लबनान में बसे हुए हैं। दुरूज़ की इस पुस्तक में एक लेख है, जो सन् ४२३ हि० का है। उसके कुछ वाक्य इस प्रकार हैं[1]—

"साधारणतः मुलतान और भारत के एक ईश्वर को माननेवाले (मुसलमानों) कि नाम और विशेषतः शेख़ इब्न सोमर राजा पालके नाम।"

सुलतान महमूद सन् ४२१ हि० में मरा था और सन् ४२३ हि० उसके उत्तराधिकारी और लड़के सुलतान मसऊद का समय है। इससे सिद्ध होता है कि जब ग़ज़नवियों ने मुलतान जीत लिया था, उसके बाद भी मुलतान इन लोगों का केन्द्र था। बल्कि यह पता चलता है कि ग़ज़नवियों के निर्बल हो जाने पर फिर इस्माईलियों ने मुलतान पर अधिकार कर लिया था; क्योंकि सुलतान शहाबुद्दीन ग़ोरी के समय में हम फिर मुलतान पर इस्माईलियों का शासन देखते हैं। सन् ५७२ हि० में सुलतान को क़रमती (इस्माईली) लोगों के हाथ से फिर मुलतान निकालना पड़ा था;[2] और अन्त में वह दिल्ली के राज्य का एक अंग हो गया।

---

[1] ईलियट; पहला खंड; परिशिष्ट; पृ० ४९१।

[2] फ़रिश्ता; पहला खंड; पृ० ५६, और दूसरा खंड; पृ० ३२४ (नवलकिशोर।)

मुलतान के शासकों का क्रम

ऊपर जो बातें कही गई हैं, उनसे पता चलता है कि मुलतान में शासकों के तीन अलग अलग क्रम थे—

(१) मम्बा बिन असद जो असामा बिन लोई के क़ुरैश वंश का था और जिसके वंश को बनू मम्बा कहते थे। इसका पता सन् २९० से ३४० हि० (इब्न रस्ता से अस्तख़री का समय) तक निश्चित रूप से लगता है।

(२) जलम बिन शैबान, जो बैरूनी के वर्णन के अनुसार मुलतान पर अधिकार करनेवाला पहला क़रमती या इस्माईली था। इसका समय ३४० हि० बल्कि ३६७ और ३७५ हि० के बीच में है; अर्थात् इस्तख़री बल्कि इब्न हौकल और बुशारी के बीच में है; क्योंकि बुशारी ऐसा पहला अरब यात्री है जो मुलतान और मिस्र के फ़ातिमियों के आपस के सम्बन्ध का उल्लेख करता है।

(३) शेख़ हमीद और उसका लड़का नसीर या नस्र और उसका लड़का अबुल्फ़ुतह या अबुलफ़्तूह दाऊद क़रमती। इनमें से पहला शेख़ हमीद अलप्तगीन और सुबुक्तगीन के समय में हुआ था; अर्थात् शेख़ हमीद और उसके लड़के नस्र (यदि वह भी शासक हुआ हो तो) का समय सन् ३५१ से ३९० हि० तक ठहराया जा सकता है। सुलतान महमूद का समकालीन अबुल्फ़तह दाऊद था; इस लिये उसके शासन का समय सन् ३९० से ३९६ हि० (मुलतान के पहले पहल जीते जाने का सन्) तक बल्कि सन् ४०१ हि० (मुलतान के दूसरी बार जीते जाने और दाऊद के पकड़े जाने का सन्) तक होगा।

इनमें से पहले और दूसरे वंशों का फ़ारसी इतिहास-लेखकों को पता नहीं है। पर फिर भी अरब यात्रियों के वर्णन के अनुसार

वे लोग शुद्ध अरब थे। तीसरे वंश के साथ सुलतान महमूद का सम्बन्ध था; इस लिये फ़ारसी के इतिहास-लेखक उसे जानते हैं। इस सम्बन्ध में पाठकों को दो भूलों का सुधार कर लेना चाहिए। एक तो यह कि जिसको फ़ारसी लेखक अबुल्फ़तह कहते हैं उसका अरबी रूप अबुल्फ़ुतूह था। और दूसरे यह कि जिसे वे नसीर बतलाते हैं, वह गर्देजी के सब से पुराने प्रमाण के अनुसार नस्र था। नामों का यह संशोधन इस लिये महत्वपूर्ण है कि फ़रिश्ता आदि ने लोधी और पठानों के वंश से इनका सम्बन्ध बतलाया है। पर ये नाम, जैसे शेख़ हमीद, नस्र और दाऊद आदि शुद्ध अरबी ढंग के नाम हैं; और नसीर के बदले नस्र अधिक शुद्ध और प्रचलित अरबी नाम है। इसी प्रकार कुन्नियत[1] (अबुल्फ़तह या अबुल्फ़ुतूह ख़ास अरबों का चिह्न है; और विशेषतः अबुलफ़ुतूह बहुवचन रूप में) और इसके साथ जो प्रतिष्ठा सूचक शेख़ की उपाधि है, वह भी शुद्ध अरबी ढंग का है। और इस्माइली बातिनियों में शेख़ शब्द विशेष रूप से अमीर के अर्थ में बोला जाता था; क्योंकि इसका महत्व राजनीतिक होने की अपेक्षा अधिकतर धार्मिक होता था। इसी लिये स्वयं हसन बिन सब्बाह को शेख़ुल् जबाल (पहाड़ी प्रान्तों का शेख़) कहते थे। इन सब कारणों से यही कहना पड़ता है कि लोगों ने व्यर्थ ही इनके लोधी और पठान होने की कल्पना कर ली थी। यहाँ तो यह भी बहुत कठिनता से माना जा सकता है कि उस समय में पठानों में इस्लाम का प्रचार हुआ था। इस आधार पर मेरा मत यही है कि शेख़ हमीद, शेख़ नस्र और अबुल्फ़ुतूह दाऊद आदि जाति के विचार से अरब और

---

[1] पिता के नाम से पुत्र का अथवा पुत्र के नाम से पिता का प्रसिद्ध होना कुन्नियत कहलाता है। जैसे,—अबुल्फ़ुतूह अर्थात् फतह नामक व्यक्ति (या विजयों) का पिता—अनुवादक।

वंश के विचार से जल्म बिन शैवान की ही सन्तान होंगे। भारत के एक प्रसिद्ध लेखक[1] ने बिना किसी प्रमाण के ही यह लिख दिया है कि यह अबुल्फ़तूह दाऊद वही था, जो सिन्ध के इतिहास में सोमरा के नाम से प्रसिद्ध है। सोमरा इसका हिन्दू नाम था; और अबुल्फ़तूह मुसलमानी नाम था। यह भूल इस लिये हुई है कि उन्होंने समझा था कि मुलतान और मन्सूरा दोनों में एक ही वंश का राज्य था। इस लिये जब मुलतान के प्रकरण में इसका नाम अबुल्फ़तह था। और सिन्ध के प्रकरण में सोमरा होना चाहिए था, तो वास्तव में ये दोनों नाम एक ही आदमी के होंगे। पर यह बात बिलकुल ग़लत है।

ऊपर किताबुद दुरूज़ के पत्र के आरम्भ के जो—"साधारणतः मुलतान और भारत के मोवहहिदों (एक ईश्वर को माननेवालों) की सीमाओं और विशेष कर शेख़ इब्न सोमर राजा बल के नाम" वाला वाक्य दिया गया है, उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि इब्न सोमरी मुलतान का बादशाह था। मुलतान के बादशाहों में न तो किसी इतिहास-लेखक ने सोमर का नाम लिया है और न किसी दूसरे प्रमाण से यह बात सिद्ध होती है। सोमरियों का सम्बन्ध केवल सिन्ध से था, जो बहुत दिनों से मुलतान से बिलकुल अलग और स्थायी राज्य था, जैसा कि सभी अरब यात्रियों के एक से वर्णन से निःसन्देह रूप से सिद्ध है। इस पत्र से यह अवश्य सिद्ध होता है कि मुलतान का अमीर अबुल्फ़तूह दाऊद और सोमर दोनों एक ही

---

[1] स्वर्गीय मौलवी अब्दुलहलीम साहब शरर ने अपने सिन्ध के इतिहास के दूसरे खंड के ६ वें पृष्ठ में और फिर १२ वें पृष्ठ में यह बात लिखी है। सम्भव है कि मौलाना को ईलियट (पहला खंड; पृ० ४६१) के शब्दों से कुछ भ्रम हो गया हो।

सम्प्रदाय के माननेवाले थे; और हो सकता है कि अबुल् फ़तूह के पतन और क़ैद होने के बाद यह सोमर सिन्ध के क़रमती लोगों का धार्मिक शेख़ और इमाम नियत हुआ हो।

शेख़ हमीद आदि के पठान होने के सम्बन्ध में एक बात हो सकती है। वह यह कि इस्माईलियों का प्राय: यह नियम रहा है कि वे दूसरी जातियों में अपने धर्म का सहज में प्रचार करने के लिये और आप उनके समीपी बनने के लिये उन्हीं के वंश और धर्म के बन जाते थे। इस लिये यह हो सकता है कि शेख़ हमीद आदि ने पठानों को अपने साथ मिलाने के लिये अपने आपको पठान प्रसिद्ध कर दिया हो। पर हिन्दू वंश के साथ इनका, कभी किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं था और न कभी इनके नाम के साथ कभी कोई भारतीय शब्द लगाया गया है।

मुलतान की भारतीय इस्लामी सभ्यता

मुलतान में अरबी और भारतीय सभ्यताओं का एक बहुत सुन्दर मिला हुआ रूप उत्पन्न हो गया था। यह नगर छोटा तो था, पर बहुत सुन्दर था। हर पेशेवालों के लिये अलग अलग बाज़ार थे। नगर के चारों ओर परकोटा था। नगर के बाहर अमीर की जो फ़ौजी छावनी थी, उसमें भी ऊंचे ऊंचे मकान बने थे। बैरूनी ने बतलाया है कि नगर में मुहम्मद बिन क़ासिम की बनवाई हुई जामे मसजिद थी (सम्भवत: सन् ३४० और ३७५ हि० के बीच में)। जलम बिन शैबान इस्माईली क़रमती ने उसे इस लिये बन्द कर दिया था कि वह उमैय्या वंश की स्मृति थी। उसने सूर्य देव के प्रसिद्ध मन्दिर को तोड़कर नई जामे मसजिद बनवाई थी। जब सुलतान महमूद (सन् ३९६ या ४०३ हि०) ने मुलतान जीता, तब फिर पहली मसजिद को खोल दिया और दूसरी को बिना मरम्मत आदि

कराए यों ही छोड़ दिया। जिस समय बैरूनी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी थी (सन् ४२४ हि०), उस समय वह मसजिद बिलकुल गिर गई थी और उसकी जगह मैदान हो गया था, जिसमें मेंहदी के पेड़ लगे हुए थे।

इस्तख़री (सन् ३४० हि०) ने लिखा है कि मुलतान का अमीर हाथी पर चढ़कर जुमा (शुक्रवार) की नमाज़ पढ़ने के लिये जामे मसजिद जाता है। मानों केवल हिन्दुओं की यह शानदार सवारी उस समय तक अरब अमीरों को पसन्द आ चुकी थी। वह आगे चल कर कहता है—"मुलतान के लोग पाजामा पहनते हैं। प्रायः लोग फ़ारसी और सिन्धी भी बोलते हैं।" मतलब यह कि पहनावे और भाषा में हिन्दू और मुसलमान प्रायः एक से हो चुके थे।

इब्न हौक़ल (सन् ३६७ हि०) भी यहां के लोगों के पहनावे और भाषा के सम्बन्ध में कुछ इसी तरह की बातें कहता है। वह लिखता है—

"यहाँ हिन्दुओं और मुसलमानों का पहनावा एक ही सा है। बालों के छोड़ने का भी वही एक ढंग है और इसी तरह मुलतानवालों की चाल है। मन्सूरा और मुलतान और उसके आस पास के स्थानों में अरबी और सिन्धी बोली जाती है; और मकरानवालों की बोली फ़ारसी और मकरानी है। प्रायः कुरते ही पहने जाते हैं। पर व्यापारी लोग कमीज़ और चादर का व्यवहार करते हैं; जिस प्रकार इराक़ और फ़ारस के लोग करते हैं।"[1]

सन् ३७५ हि० में बुशारी यहां आया था। उसने यहां के रीति रवाज और सभ्यता का बहुत कुछ अच्छा चित्र खींचा है। वह लिखता है—

[1] सफ़रनामा इब्न हौक़ल; पृ० २३२ (लीडन)

मुलतान यों तो मन्सूर से छोटा है, पर उससे अधिक बसा हुआ है। फल अधिक तो नहीं होते, पर सस्ते हैं। .... सैराफ़ (इराक़ का बन्दरगाह) की तरह साल की लकड़ी के कई कई खंडों के मकान हैं। यहाँ के लोग न तो बदचलन होते हैं और न शराब पीते हैं। जो लोग इस अपराध में पकड़े जाते हैं, उन्हें प्राणदंड दिया जाता है। माल लेने और बेचने में न तो झूठ बोलते हैं और न कम तौलते हैं। यात्रियों का सत्कार करते हैं। प्रायः निवासी अरब हैं। लोग नहर का पानी पीते हैं। देश हरा भरा है और उसमें अच्छा धन है। व्यापार की दशा भी अच्छी है। सजावट सुख और वैभव बहुत है। शासन न्याय पूर्ण है। बाज़ार में कोई स्त्री बनाव सिंगार किए हुए नहीं मिलेगी और न कोई स्त्रियों से खुले आम बात करता हुआ दिखाई देगा। पानी अच्छा है। जीवन बहुत सुख का है और सब लोग प्रसन्नचित्त और शीलवान् हैं। फ़ारसी भाषा समझी जाती है। व्यापार में अच्छा लाभ होता है। शरीर से सब लोग स्वस्थ हैं, पर नगर मैला है। मकान छोटे और तंग हैं। हवा ख़ुश्क और गरम है। लोगों का रंग गेहुआँ और काला है।"[१]

मुलतान का सिक्का मिस्र के फ़ातिमी सिक्के की तरह का बनाया गया है। पर यहाँ अधिकतर कन्हरी नाम का सिक्का चलता है।"[२]

---

[१] बुशारी कृत अहसनुत्तक़ासीम ; पृ० ४८० (लीडन)।

[२] उक्त ग्रन्थ ; पृ० ४८२ कन्हरी कोई साधारण सिक्का जान पड़ता है। ईलियट ने ईश्वर जाने क्यों इसे "कन्धारियात" लिख दिया है और कहा है कि—"ये सिक्के कन्धार से बन कर आते थे।" पर इसका कोई प्रमाण नहीं है। केवल शब्द बदल कर पाठ दिया गया है।

मन्सूरा

अरबी में सिन्ध का सबसे बड़ा नगर बरहमनाबाद प्रसिद्ध है, जिसका असली भारतीय नाम जैसा कि बैरूनी ने बतलाया है, बहमनवा है। ईरानवाले इसको बरहमनाबाद कहते थे। मुसलमानों में भी यह नाम चल पड़ा। इसके बाद कुछ सैनिक और राजनीतिक आवश्यकताओं के कारण सिन्ध में अरब लोगों को आप ही अपने नगर बसाने पड़े, जिनमें से महफ़ूज़ा, बैज़ा और मन्सूरा बहुत प्रसिद्ध हुए।

जब उमैय्या वंश के अन्तिम समय में अरबवालों का बल घट गया और सिन्धियों ने उन्हें समुद्र तट की ओर ढकेलना आरम्भ किया, तब अरब वाली हकम बिन अवाना कल्बी ने सब अरबों को समेटकर एक जगह इकट्ठा किया; और नदी के उस पार एक नगर बसाया जिसका नाम महफ़ूज़ा रखा।

इस हकम बिन अवाना के साथ मुहम्मद बिन क़ासिम का लड़का अम्र भी था, जो बहुत बहादुर और राजनीतिक था। हकम के सब काम वही किया करता था। उसने समुद्र के तट पर बरहमनाबाद से दो फ़रसंग की दूरी पर मन्सूरा नगर बसाया था।[१]

अब्बासियों के समय में मोतसिम बिल्लाह के शासनकाल (हिजरी तीसरी शताब्दी का मध्य) में बरमकी वंश के एक स्तम्भ इबरान बिन मूसा बिन यहिया बिन ख़ालिद ने सिन्ध के वाली नियत होने पर बैज़ा नाम का नगर बसाया था।

पर इन सब नगरों में से मन्सूरा ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ और वही स्थायी हुआ।

---

[१] बिलाज़ुरी कृत फ़ुतूहुल् बुल्दान; पृ० ४४४. (लीडन)

मन्सूरा का संस्थापक

प्रश्न होता है कि इस नगर का नाम मन्सूरा क्यों पड़ा ? कुछ लोगों ने भूल से यह समझ रखा है कि यह नगर ख़लीफ़ा मन्सूर अब्बासी के समय में बसा था; इसीसे यह मन्सूरा कहलाता है। पर यह बात बिलकुल ग़लत है; क्योंकि यह नगर उससे पहले उमैय्या लोगों के समय में ही बन चुका था। इसी प्रकार मसऊदी ने इसका सम्बन्ध मन्सूर बिन जमहूर से बतलाया है,[१] जो उमैय्या वंश के पतन और अब्बासी के आरम्भिक समय में सिन्ध का शासक बन बैठा था। पर यह भी ठीक नहीं है। वास्तव में केवल नाम से धोखा नहीं खाना चाहिए। जैसा कि पुराने इतिहास लेखक बिलाज़ुरी (मृत्यु सन् २७९ हि०) ने बतलाया है, इसे मुहम्मद बिन क़ासिम के लड़के अम्र ने बसाया था। इस लिये यही समझना चाहिए कि जिस प्रकार शुभ समझकर महफ़ूज़ा (रक्षित, या जिसकी रक्षा की गई हो) नाम रखा गया था, उसी प्रकार शुभ समझ कर मन्सूरा (जिसकी सहायता की गई हो) नाम भी रखा गया था।

नगर बसने का समय

यह नगर हकम के समय में अम्र ने बसाया था और हकम को इराक़ के अमीर ख़ालिद बिन अब्दुल्लाह कसरी ने भेजा था। ख़ालिद सन् १०५ हि० में इराक़ का अमीर बना था और सन् १२० हि० में अपने पद से हटाया गया था। उसी ख़ालिद का भेजा हुआ सिन्ध का दूसरा वाली हकम था। इस लिये सम्भव है कि सन् ११० हि० से उसका समय आरम्भ हुआ हो। इस आधार पर मन्सूरा के बसने का समय सन् ११० हि० से १२० हि० तक नियत होना चाहिए।

---

[१] मुरूजुज़्ज़हब; पहला खंड; पृ० २७१।

स्थान

सब से पहले इब्न खुर्दाज़बा (सन् २५० हि०) मन्सूरा को सिन्ध नद के किनारे बतलाता है।[१] फिर बिलाज़ुरी (सन् २७९ हि०) कहता है—"वह नदी के इधर ही बसाया गया था।"[२] इब्न हौक़ल और इस्तख़री दोनों ने लिखा है—"यह महरान (सिन्ध) नदी के किनारे ऐसी जगह पर बसाया गया है कि नदी की एक शाखा ने निकलकर इसको एक टापू की तरह बना दिया है।" कुछ अरब भूगोल-लेखकों ने इसका देशान्तर पश्चिम से ९३ अंश और अक्षांश दक्षिण से २२ अंश बतलाया है।[३] सौभाग्य से हमारे सामने वह नक़शा है जो इब्न हौक़ल ने अपने समय में सिन्ध का बनाया था। उसे देखने से पता चलता है कि सिन्ध नदी पंजाब की ओर से चलकर अन्त में जिस जगह भारतीय महासागर में गिरती है, उससे थोड़ी दूर पीछे स्थल की ओर एक जगह नदी की एक नई शाखा निकलती है, जो तुरन्त ही फिर घूमकर उसी नदी में मिल जाती है और इस प्रकार उस शाखा के घूमने से बीच में थोड़ी सी ज़मीन टापू के रूप में बन गई है। उसी टापू पर यह नगर बसा हुआ था जो चारों ओर पानी से घिरा होने के कारण अचानक चढ़ाई करने वालों से रक्षित था। यह उसी तरह की जगह है, जैसी मैसूर में कावेरी नदी के घूम जाने से निकल आई है और जिसपर वहाँ का सेरिंगापटम नाम का नगर बसा हुआ है। इसी प्रकार का एक दूसरा स्थान मदरास प्रान्त के त्रिचनापल्ली में भी है। पुराने समय की युद्ध कला के विचार से इस प्रकार के स्थान बहुत रक्षित समझे जाते थे।

---

[१] इब्न खुर्दाज़बा कृत अल्मसालिक वल् ममालिक; पृ० १७४

[२] बिलाज़ुरी कृत फ़ुतूहुल् बुल्दान; पृ० ४४४. (लीडन)

[३] मुअजमुल् बुल्दान (याक़ूत कृत) में "मन्सूरा" शब्द।

अबुलफ़ज़ल ने आईन अकबरी में सारी कठिनाइयाँ दूर कर दी हैं। उसने बतलाया है कि सिन्ध के प्रसिद्ध नगर मक्कर का पुराना नाम मन्सूरा था।[1] और सच बात यह है कि पुराने मन्सूरे के सम्बन्ध में जो भौगोलिक बातें कही जाती हैं, वे सब मक्कर पर बिलकुल ठीक घटती हैं। अबुलफ़ज़ल कहता है—"यहाँ आकर छओं नदियाँ मिलकर एक हो जाती हैं और दो भागों में बँटकर इस नगर के नीचे से होकर बहती हैं। एक भाग दक्खिन होकर और दूसरा भाग उत्तर होकर जाता है।" भारतीय इतिहासों में मक्कर का नाम बहुत प्रसिद्ध है और अब भी सब लोग उसे जानते हैं।

राजधानी मन्सूरा

मन्सूरा जिस स्थान पर बसा था, उसे देखते हुए वह रक्षित भी था और साथ ही नदी के किनारे और समुद्र के पास था। इस विचार से यह नगर इराक़ और अरब से आने जाने के लिये भी बहुत अच्छा था और समय पड़ने पर यहाँ से निकल जाने के लिये बहुत मौके का था। इस लिये यह बहुत जल्दी सिन्ध में अरबों की राजधानी बन गया। हिजरी तीसरी शताब्दी में हमें इसका नाम राजधानी के रूप में मिलता है। बिलाज़ुरी (मृत्यु सन् २७९ हि०) मन्सूरा के सम्बन्ध में कहता है—"यह वही नगर है जहाँ आजकल हाकिम लोग जाकर ठहरते हैं।"[2] इसके बाद प्रायः सभी अरब यात्री इसका नाम इसी रूप में लेते हैं; और अन्त में वह एक कुरैशी अरब रियासत की राजधानी बन जाता है।

---

[1] आईन अकबरी ; दूसरा खंड ; पृ० १६० (नवलकिशोर) ;

[2] बिलाज़ुरी कृत फ़ुतूहुल् बुल्दान ; पृ० ४४४ ।

अब्बासी खिलाफ़त के समय में सिन्ध

ख़लीफ़ा मामूँ रशीद (सन् २१८ हि०) के समय तक सिन्ध प्रान्त का बग़दाद के केन्द्र से सम्बन्ध था। पर उसके अन्तिम समय में ही वहाँ के अरब अमीर लोग स्वतंत्रता का स्वप्न देखने लगे थे। सामा वर्ग के फ़ज़ल बिन माहान नाम के एक दास ने सन्दान नाम का नगर जीतकर सीधे ख़लीफ़ा मामूँ से अपने अमीर होने का प्रमाण पत्र मँगवा लिया था। उसने वहाँ एक जामे मसजिद भी बनवाई थी, जिसमें नमाज़ पढ़ी जाती थी और ख़लीफ़ा के नाम का ख़ुतबा पढ़ा जाता था। उसके बाद उसका भाई मुहम्मद बिन फ़ज़ल बिन माहान वहाँ का हाकिम हुआ। यह समय मोतसिम बिल्लाह (सन् २२७ हि०) का था। इसने सत्तर जहाज़ों का एक बड़ा बेड़ा लेकर मीदियों पर चढ़ाई की। जिस समय वह चढ़ाई पर गया हुआ था, उस समय उसके उपस्थित न रहने पर उसके भाई माहान ने रियासत पर अधिकार कर लिया; और शायद इसी आपस के लड़ाई झगड़े में वह रियासत मुसलमानों के हाथ से निकल गई।[1] मोतसिम बिल्लाह के समय में कन्दाबील में मुहम्मद बिन ख़लील ने अपने स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी थी; पर मोतसिम के कर्मचारी इमरान बरमकी ने, जो सिन्ध का वाली था, वहाँ के सरदारों को पकड़कर कसदार (कजदार) भेज दिया।[2]

इमरान बरमकी के ही समय में अरबों के दो प्रसिद्ध कबीलों में आपस के लड़ाई झगड़े होने लगे थे। इनमें से एक कबीला यमनी (कहतानी) और दूसरा हिजाजी (नजारी) था। इन्हीं

---

[1] बिलाज़ुरी; पृ० ४४६।

[2] उक्तग्रन्थ; पृ० ४४५।

कबीलों की आपस की लड़ाई ने उमैय्या वर्ग के लोगों का अन्त कर दिया था। उस समय हिजाजियों का प्रधान और नेता एक कुरैशी सरदार था, जिसका नाम उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ हबारी था। उसने अवसर पाकर इमरान को मार डाला।[1]

सिन्ध का हबारी कुरैशी वंश

कुरैश के असद नाम के वंश में इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद के समय में हबार बिन असवद नाम का एक आदमी था, जो इस्लाम धर्म और उसके पैग़म्बर का बड़ा भारी शत्रु था। अन्त में जब सन् ८ हि० में मक्का जीता गया, उस समय वह मुसलमान हुआ था, उसीकी सन्तान में से हकम बिन अवाना नाम का एक आदमी था जो सिन्ध के वाली कलबी के साथ सिन्ध पहुँचा था। उसीका पोता उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ हबारी था।[2] इसका वंश-वृक्ष इस प्रकार है—असवद, उसका लड़का हबार, उसका लड़का अब्दुर रहमान, उसका लड़का जुबैर, उसका लड़का मन्ज़र, उसका लड़का अब्दुल अज़ीज़, उसका लड़का उमर। उम्बियों और अब्बासियों दोनों के शासनकाल में इस वंश के लोग साम्राज्य का कारबार करते थे।[3] यह हिजाज़ियों का सरदार बन गया और इसने इमरान को मार डाला। अवश्य ही इसका परिणाम यह हुआ होगा कि उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ हबारी को सिन्ध के हिजाजी अरबों का राज्य मिल गया होगा। सन् २४० हि० में जब ख़लीफ़ा मुतवक्किल के समय में सिन्ध के वाली हारूँ बिन ख़ालिद

---

[1] उक्त ग्रन्थ ; पृ० ४४६।

[2] उक्त-ग्रन्थ और पृष्ठ।

[3] इब्न ख़ल्दून, दूसरा खंड ; पृ० ३२७।

की मृत्यु हुई, तब उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने ख़लीफ़ा के दरबार में एक निवेदनपत्र भेजकर यह प्रार्थना की कि सिन्ध प्रदेश मुझे सौंप दिया जाय। ख़लीफ़ा ने उसकी यह प्रार्थना मान ली। याक़ूबी (मृत्यु सन् २७८ हि०), जिसने अपनी पुस्तक सन् २५९ ई० में बनाई थी, अपने इतिहास में लिखता है—"सिन्ध के वाली हारूँ बिन ख़ालिद की सन् २४० हि० में मृत्यु हुई। और उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ सामी ने, जिसका सम्बन्ध सामा बिन लोई से था और जिसका सिन्ध पर अधिकार हो चुका था, लिखा था कि वह देश का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर रहा है। इस पर मुतवक्किल ने उसकी प्रार्थना मान ली; और जब तक मुतवक्किल ख़लीफ़ा रहा, तब तक वह बराबर सिन्ध का शासक बना रहा।"[1]

याक़ूबी ने उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ को सामा बिन लोई के वंश का बतलाया है। पर उसका यह कहना ठीक नहीं है। उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ वास्तव में हबार बिन असवद की सन्तानों में से था, जो काब बिन लोई के वंश में का था (इब्न ख़ल्दून; दूसरा खंड; पृ० ३२७ मिस्र)। शायद याक़ूबी को मुलतान के अमीरों का धोखा हुआ था जो सामा वंश के थे।

उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ हबारी की अमीरी के बाद भी सिन्ध का अब्बासियों के साथ सम्बन्ध बना रहा। मोतमिद के समय (सन् २५६-२७९ हि०) में भी बग़दाद के राजकीय प्रबन्धों में सिन्ध का नाम दिखाई पड़ता है; क्योंकि उस समय भी ख़ुरासान के सफ़्फ़ारी वंश की स्थापना करनेवाले याक़ूब बिन लैस को सन् २५७ हि० में तुर्किस्तान, सजिस्तान और किरमान के साथ सिन्ध का प्रान्त भी सौंपा गया था।[2] और सन् २६१ हि० में मोतमिद ने अपने साहसी

---

[1] तारीख़े याक़ूबी; दूसरा खंड; पृ० ५९९ (लीडन)

[2] तारीख़े इब्न ख़ल्दून; तीसरा खंड; पृ० ३४३ (मिस्र)

और योग्य भाई मवफ़्फ़िक को दूसरे सभी पूर्वी देशों के साथ सिन्ध का प्रदेश भी प्रदान किया था। उसी समय उधर फ़ारस की खाड़ी के अरब और इराक़वाले तटों पर करमतियों का विद्रोह होने लगा था; और उधर पश्चिम में इस्माइली फ़ातिमियों का आन्दोलन आरम्भ हुआ था, जो अन्त में बढ़ता बढ़ता मिस्र तक छा गया था।

सम्भवत: यही वह उपयुक्त समय था, जब बग़दाद के साथ का सिन्ध का यह नाममात्र का सम्बन्ध भी टूट गया था। बिलाज़ुरी, जो २७९ हि० में मरा है, लिखता है—"कन्दा वंश का स्वतन्त्र किया हुआ अबुस् सम्मा नाम का एक दास हिजरी तीसरी शताब्दी के आरम्भ में उमर बिन हफ़्स बिन हज़ारमर्द नाम के एक अब्बासी वाली के साथ सिन्ध गया था। उसीका लड़का सम्मा आजकल सिन्ध में ज़बरदस्ती स्वतन्त्र बन बैठा है।"[1]

पर जान पड़ता है कि उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ हबारी की सन्तान फिर भी चुपचाप होकर नहीं बैठी थी। स्वयं उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ हबारी सिन्ध के बनिया या बानिया नाम के नगर में रहता था।[2] पर उसकी सन्तान ने सिन्ध के नीचे के या दक्षिणी प्रान्त पर स्थायी रूप से अधिकार करके मन्सूरा को अपनी राजधानी बना लिया। सन् २७० हि० में उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ हबारी का लड़का अब्दुल्लाह मन्सूरा का शासक था। उसके समय की एक घटना यह है कि अलरा (सिन्ध का अलोर) के हिन्दू राजा ने उसको लिखा था कि तुम मेरे पास एक ऐसा मुसलमान विद्वान् भेजो, जो मुझे इस्लाम धर्म की सब बातें बतला सके।[3] जब सन् ३०३ हि० में मसऊदी आया था, तब

---

[1] बिलाज़ुरी; पृ० ४४५।

[2] इब्न हौकल कृत ज़िक्रुस् सिन्ध।

[3] बुज़ुर्ग बिन शहरयार कृत अजायबुल् हिन्द; पृ० ३. (लीडन)

उसने अब्दुल्लाह् के लड़के उमर को मन्सूरा का शासन करते हुए देखा था; और साथ ही बहुत से अरब सरदार भी उसे वहाँ मिले थे। उसे सैयद और अली के वंश के लोग भी वहाँ दिखाई दिए थे। उसके अनुसार वहाँ के उस समय के बादशाह का नाम उमर बिन अब्दुल्लाह, मन्त्री का नाम रियाह् और क़ाज़ी का नाम आल अबी शवारिब था। मसऊदी ने मूल में जो कुछ लिखा है उसका मतलब यह है[1]—

"जिस समय मैं मन्सूरा पहुँचा था, उस समय वहाँ अबुल् मन्ज़र उमर बिन अब्दुल्लाह् बादशाह था। वहीं उसके मन्त्री रियाह और उसके दोनों बेटों, मुहम्मद और अली को देखा। एक और अरब सरदार को भी देखा, जो वहाँ के बादशाहों में से एक बादशाह था और जिसका नाम हम्ज़ा था।[2] हज़रत अली बिन अबी तालिबकी के वंश के भी बहुत से लोग वहाँ दिखाई दिए, जो उमर बिन अली और मुहम्मद बिन अली के वंश के थे। मन्सूर के बादशाहों और वहाँ के क़ाज़ी आल अबी शवारिब में आपसदारी का सम्बन्ध था। मन्सूरा के ये बादशाह हबार बिन असवद की सन्तान हैं, जो बनू उमर अब्दुल अज़ीज़ कहलाते हैं।"

---

[1] मसऊदी कृत मुरुजुज़्ज़हब; पहला खंड; पृ० ३७७।

[2] डाक्टर वर्ड ने, जिनका उद्धरण ईलियट (पहला खंड; पृ० ४८८) ने दिया है, इस वाक्य का अर्थ बिलकुल ग़लत समझा है कि "यहाँ हम्ज़ा सैयदुश शोहदा की सन्तान आकर बसी थी। इसी "हम्ज़ा" शब्द से ही उनको यह सन्देह हुआ था। ये हम्ज़ा हज़रत मुहम्मद के चाचा हम्ज़ा नहीं थे, बल्कि यह हम्ज़ा नाम का कोई और ही अरब सरदार था। और फिर मसऊदी स्वयं हम्ज़ा का ज़िक्र कर रहा है; उसकी सन्तान का ज़िक्र नहीं कर रहा है। हज़रते हम्ज़ा की सन्तान में कोई लड़का या पुरुष नहीं था और न उनका वंश ही फैला था।

मसऊदी के बाद सन ३६७ हि० में इब्न हौक़ल आया था। उस समय तक भी यही वंश शासन करता था। उस समय यद्यपि अब्बासी ख़लीफ़ाओं के साथ उनका कोई राजनीतिक सम्बन्ध नहीं रह गया था, पर फिर भी धार्मिक सम्बन्ध बना हुआ था। वे लोग अब्बासी ख़लीफ़ाओं के ही नाम का ख़ुतबा पढ़ते थे। मूल लेख का आशय इस प्रकार है[1]—

"इस देश का बादशाह एक कुरैशी है, जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वह हब्बार बिन असवद के वंश का है। उसके बाप दादा इस देश पर शासन करते थे और अब वह शासन करता है। पर ख़ुतबा बग़दाद के ख़लीफ़ा के ही नाम का पढ़ा जाता है।"

जब सन् ३७५ हि० में मुकद्दसी आया, तब उसने भी इसी वंश को उसी प्रकार शासन करते हुए देखा था। पर इस बीच में दैलमियों के उस शीया वंश का भी बलोचिस्तान के मार्ग से सिन्ध तक प्रभाव पहुँच रहा था, जो फ़ारस पर राज्य कर रहा था। फिर भी बग़दाद के ख़लीफ़ा का नाम बचा हुआ था। बुशारी कहता है[2]—

"मन्सूरा पर एक सुलतान का राज्य है, जो कुरैश के वंश का है। पर वे लोग अब्बासी ख़लीफ़ा के ही नाम का ख़ुतबा पढ़ते हैं; और कभी अज़दुद्दौला (दैलमी) का ख़ुतबा पढ़ते थे। जिस समय हम शीराज़ में थे, उस समय यहाँ का एक राजदूत शीराज़ में अज़दुद्दौला के लड़के के पास गया था।"

मन्सूरा नगर की बस्ती और विस्तार

इब्न हौक़ल का कहना है कि मन्सूरा एक मील लम्बा और एक मील चौड़ा था; और चारों ओर नदी से घिरा हुआ था। यहाँ के

---

[1] इब्न हौक़ल का ज़िक्रुस् सिन्द नाम का यात्रा-विवरण।

[2] बुशारी कृत अहसनुत् तक़ासीम; पृ० ४८५।

रहनेवाले मुसलमान थे। बुशारी कहता है—"मन्सूरा सिन्ध का केन्द्र है और देश की राजधानी है। यह दमिश्क की तरह है। मकान लकड़ी और मिट्टी के हैं। जामे मसजिद ईंट और पत्थर की बनी है और बड़ी है और उमान की जामे मसजिद की तरह लकड़ी के खम्भों पर है। . . . . . वह बाज़ार के ठीक बीच में है। नगर में चार दरवाज़े हैं। उनमें से एक का नाम बाबुल् बहर (नदी की ओर का द्वार), दूसरे का तौरान दरवाज़ा, तीसरे का सन्दान दरवाज़ा और चौथे का मुलतान दरवाज़ा है।"[1]

मन्सूरा राज्य का विस्तार और वैभव

इस अरब राज्य में सिन्ध के बहुत से नगर थे। बुशारी कहता है कि सिन्ध की राजधानी मन्सूरा है और इसमें देबल, अन्दरीज, कदार, मायल, बतली आदि नगर हैं। इस्तख़री ने इस राज्य के और भी कई नगर गिनाए हैं; जैसे बानिया, सदौसान, अलोर, सोबारा और सैमूर। मसऊदी कहता है—"मन्सूरा के राज्य में जो गाँव और बस्तियाँ हैं, उनकी संख्या तीन लाख है।" इससे अनुमान हो सकता है कि मन्सूरा का राज्य बहुत बड़ा था। फिर मसऊदी कहता है—"सब जगह खेत हैं, वृक्ष हैं और बस्तियाँ मिली हुई हैं।"[2] इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह राज्य कितना हरा भरा और बसा हुआ था।

बादशाह का सैनिक बल

मसऊदी कहता है—

"मन्सूरावालों की मीदियों के साथ, जो सिन्ध की एक जाति है, बराबर लड़ाइयाँ होती रहती हैं। बादशाह के पास लड़ाई के ८०

---

[1] उक्त ग्रन्थ; पृ० ४७६।

[2] मुरूजुज़्ज़हब; पहला खंड; पृ० ३७८।

हाथी हैं; और नियम यह है कि एक जंगी हाथी के साथ पाँच सौ पैदल सिपाही रहते हैं। इनमें से दो हाथी बहुत ही प्रसिद्ध वीर और लड़नेवाले थे। उनमें से एक का नाम मन्सर कलस और दूसरे का हैदरा था और ये सधाए हुए थे।"[१]

इस प्रकार मसऊदी ने हमको मन्सूरा का पूरा पूरा सैनिक बल बतला दिया है। जब एक हाथी के साथ पाँच सौ आदमी रहते थे, तब अस्सी हाथियों के साथ चालिस हज़ार सेना होगी।

मन्सूरा की विद्या और धर्म

इस सम्बन्ध में सबसे अच्छा हाल बुशारी ने अपने यात्रा-विवरण में लिखा है। वह कहता है—

"यहाँ के रहनेवाले योग्य और सुशील हैं। उनके यहाँ इस्लाम धर्म बहुत अच्छी दशा में है। यहाँ विद्या भी बहुत है और विद्वान भी बहुत हैं। वे लोग बहुत बुद्धिमान् और योग्य होते हैं और पुण्य तथा दान करते हैं।"[२]

"यहाँ की प्रजा में से जो लोग मुसलमान नहीं हैं, वे मूर्ति-पूजा करते हैं। मुसलमानों में वायज़ (उपदेशक) नहीं हैं। उनमें से प्रायः लोग हदीस को माननेवाले (वहाबी) हैं। मैंने यहाँ काज़ी अबू मुहम्मद मन्सूरी को देखा, जो दाऊदी थे और अपने धर्म के इमाम थे। वे विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। उनकी लिखी हुई पुस्तकें भी हैं, जो बहुत अच्छी हैं। . . . बहुत बड़े बड़े नगरों में हनफ़ी सम्प्रदाय वाले ऐसे लोग भी पाए जाते हैं जो कुरान और हदीस के धार्मिक

[१] उक्त ग्रन्थ; खंड और पृष्ठ।

[२] मुरूजुज़्ज़हब; पहला खंड; पृ० ३७९। अहसनुत् तकासीम; पृ० ४७९।

और सामाजिक सिद्धान्तों की मीमांसा करनेवाले (धर्म्मशास्त्री या फ़िक़्हा के विद्वान्) हैं। पर यहां मालकी और हंबली नहीं हैं और न मोतजिली ही हैं। लोग सीधे और ठीक मार्ग पर हैं। उनमें पुण्य भाव और सच्चरित्रता है।"[1]

यह बहुत आश्चर्य की बात है कि उस पुराने समय में भी यहाँ हदीस के ज्ञाता और पंडित लोग हुआ करते थे। यहाँ दाऊदी सम्प्रदाय से दाऊदी बोहरे लोगों का अभिप्राय नहीं है, बल्कि इमाम दाऊद जाहिरी के मानने वालों से अभिप्राय है, जो एक प्रकार के वहाबी थे।

भाषा

मसऊदी कहता है—"सिन्ध में वहाँ की अपनी भाषा है, जो भारत की और भाषाओं से अलग है।" मन्सूरा के बन्दरगाह देबल के सम्बन्ध में बुशारी कहता है—"यहाँ सब व्यापारी ही व्यापारी बसते हैं। उनकी भाषा सिन्धी और अरबी है।"[2] इससे यह अनुमान हो सकता है कि यहाँ की भाषा पर अरबी का कितना गहरा प्रभाव पड़ा होगा। इसका एक बड़ा प्रमाण आज भी मिलता है। सिन्धी भाषा में अरबी भाषा के शब्द उसी प्रकार मिले हुए हैं, जिस प्रकार उर्दू भाषा में मिले हुए हैं। और सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा है कि सिन्धी की लिपि आज भी ज्यों की त्यों अरबी ही है।

मन्सूरा का अन्त

इस बात का कोई ठीक ठीक पता नहीं चलता कि मन्सूरा के अरबी शासन का किस प्रकार अन्त हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि बुशारी के समय अर्थात् सन् ३७५ हि० तक वह राज्य अवश्य ही बना

---

[1] अहसनुत् तक़ासीम ; पृ० ४८१।

[2] मुरूजुज़्ज़हब ; पहला खंड ; पृ० २८१।

हुआ था। इसके पन्द्रह बरस बाद महमूद की चढ़ाइयाँ आरम्भ हो गई थीं। जब सन् ४१६ हि० में सुलतान महमूद ने सोमनाथ पर अपनी प्रसिद्ध चढ़ाई की थी और फिर वहाँ से वह लौटने लगा था, तब वह सिन्ध के रास्ते चला था। वह गुजरात से सिन्ध गया था; वहाँ से सिन्ध नदी के किनारे किनारे मुलतान और फिर वहाँ से ग़ज़नी गया था। इतिहास-लेखकों ने यह बतलाया है कि वह इस रास्ते में मन्सूरा भी गया था।[1] पर इब्न असीर ने अपनी तारीख़ कामिल में इसी साल की घटनाओं के साथ साथ एक और महत्व की बात लिखी है, जो इस प्रकार है[2]—

"सुलतान ने मन्सूरा जाने का विचार किया। वहाँ का वाली इस्लाम धर्म से फिर गया था। जब उसने सुलतान के आने की ख़बर सुनी, तब वह नगर से निकल गया और अपने आदमियों को लेकर झाड़ियों में छिप गया। सुलतान महमूद ने उसका पीछा किया। बहुत से आदमी मारे गए और बहुत से नदी में डूबकर मर गए। कुछ थोड़े से लोग बच गए थे। सुलतान वहाँ से भाटिया होकर ग़ज़नी चला गया।"[3]

अब प्रश्न यह है कि इस्लाम धर्म से फिर जाने और विधर्मी हो जाने का क्या अर्थ है? यदि मन्सूरा के वाली के इस्लाम से फिर

---

[1] ज़ैनुल् अख़बार; गुरदेज़ी; पृ० ८७ (बरलिन)।

[2] कामिल इब्न असीर; नवाँ खंड; पृ० २४३ (लीडन)।

[3] ईलियट ने इब्न असीर के आधार पर लिखा है—"सुलतान महमूद ने एक मुसलमान को मन्सूरा का बादशाह बनाया।" (पहला खंड) पर इब्न असीर में यह वाक्य नहीं है; बल्कि वही बातें हैं, जो मैंने ऊपर दी हैं। सम्भव है कि किसी युरोपियन अनुवाद पर भरोसा करने के कारण उससे यह भूल हुई हो।

जाने की बात केवल इस लिये कही गई हो कि मुसलमान लोग यह समझें कि महमूद का उसपर चढ़ाई करना वाजिब था, तब तो बात दूसरी है; और नहीं तो उस समय के मुहावरे का ध्यान रखते हुए इस बात का यही अर्थ होगा कि मुलतान के बादशाह की तरह मन्सूरा का बादशाह भी शायद इस्माईली क़रमती धर्म में चला गया हो। और नहीं तो इस चढ़ाई से ४१ बरस पहले की बुशारी की इस सम्बन्ध में पूरी पूरी गवाही मिलती है कि मन्सूरावाले केवल सुन्नी ही नहीं थे, बल्कि हदीस को पूरी तरह से माननेवाले और उसीके अनुसार चलने वाले थे। जो हो, इससे यह सिद्ध होता है कि मन्सूरा के इस हबारी शासन का सन् ४१६ हि० में सुलतान महमूद के हाथ से अन्त हुआ था। प्रसिद्ध जाँच करनेवाला इब्न ख़ल्दून एक अवसर पर हबार बिन असवद के वंश का वर्णन करता हुआ लिखता है—

"इन्हीं हबार बिन असवद के वंश में उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ था, जिसने ख़लीफ़ा मुतवक्किल की हत्या के बाद गड़बड़ी और अव्यवस्था के आरम्भ में सिन्ध पर अधिकार कर लिया था; और उसकी सन्तान ने एक के बाद एक सिन्ध पर शासन किया। अन्त में ग़ज़नी के सुलतान महमूद के हाथों उनका अन्त हुआ। उनकी राजधानी मन्सूरा थी।"[1]

क्या मन्सूरावाले भी क़रमती इस्माइली थे?

जो बुशारी फ़िक़ा (कुरान और हदीस के धार्मिक सिद्धान्तों) का बहुत बड़ा पंडित और विद्वान था, उसने सन् ३७५ हि० में मन्सूरा-वालों के पक्के मुसलमान और सुन्नी होने के सम्बन्ध में बहुत अच्छी गवाही दी है, जो ऊपर दे दी गई है। उसे ध्यान में रखते हुए सन्

[1] तारीख़ इब्न ख़ल्दून; दूसरा खंड; पृ० ३२७ (मिस्र)।

४१६ हि० में उनका क़रमती होना कठिन जान पड़ता है। इब्न ख़ल्दून के वर्णन से सिद्ध है कि महमूद ने हबारी अमीर के हाथ से सिन्ध का राज्य छीन लिया था; और इब्न असीर के वर्णन से प्रकट होता है कि जिस अमीर के हाथ से महमूद ने राज्य छीना था, उसके बारे में उसे यह पता चला था कि वह शुद्ध इस्लाम धर्म से अलग हो गया था, जिसका अर्थ यह है कि वह करमती इस्माईली हो गया था।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, यदि मन्सूरावालों का क़रमती इस्माईली हो जाना इस लिये नहीं प्रसिद्ध किया गया था कि सुलतान महमूद ने मन्सूरा के मुसलमान राज्य पर जो चढ़ाई की थी, वह ठीक और उचित समझी जाय, तो इब्न असीर की बातों का यही अर्थ समझा जा सकता है कि सन् ३७५ हि० के बाद क़रमतियों ने हबारी सुन्नी वंश का अन्त कर दिया था। या जब मुलतान का राज्य क़रमतियों के हाथ से निकल गया, तब उन लोगों ने सिन्ध में अपना राज्य बना लिया था; और उसी क़रमती राज्य का सन् ४१६ हि० में सुलतान महमूद ने अन्त किया था।

दुरूजी पत्र

ऊपर एक दुरूजी पत्र के कुछ वाक्य दिये जा चुके हैं। इस विषय में उस पत्र का महत्त्व भी बहुत कुछ है। उस दुरूजी पत्र में, जो शाम देश के इस्माईली दुरूजियों के धार्मिक इमाम की ओर से भेजा गया था, यह लिखा हुआ था—

"साधारणतः मुलतान और भारत के एक ईश्वर को मानने वालों के नाम और विशेषतः शेख़ इब्न सोमर राजा बल के नाम।"

इस पत्र में इब्न सोमर राजा बल को भौतरवा और होदल हेला का असली उत्तराधिकारी लिखा है। उस पत्र में इस वंश के और बहुत से बड़े बड़े लोगों के नाम लिखे हैं, जिनमें से कुछ अरबी

और कुछ भारतीय नाम हैं; और उनमें लज्जा का भाव उत्पन्न करते हुए कहा गया है—

"हे प्रतिष्ठित राजा बल, अपने वंश को उठा। एक ईश्वर को मानने वालों को और दाऊद असग़र (छोटे दाऊद) को सच्चे धर्म में फिर से ले आ। मसऊद ने अभी हाल में ही उसे कारागार और दासता से मुक्त किया है; और इसका कारण यह है कि तू अपना वह कर्त्तव्य पूरा कर सके, जो तुझे उसके भानजे अब्दुल्लाह और मुलतान के सब निवासियों के विरुद्ध पूरा करने के लिये सौंपा गया है, जिसमें तकदीस और तौहीद[1] के माननेवाले मूर्खता, हठ और धर्मद्रोहवाले दल से अलग हो जायँ।"[2]

इस पत्र से बहुत ही महत्व के परिणाम निकाले जा सकते हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(१) जो सोमर लोग सिन्ध के निवासी थे और जिन्होंने इसके बाद सोमरी वंश चलाया था, वे इस्माईली धर्म के थे।

(२) इनके नाम हिन्दुओं के ढंग के भी हैं और अरबों के ढङ्ग के भी, जिससे यह पता चलता है कि इस वंश में अरबवालों और भारतवासियों का मेल था।

---

[1] इस्माईलियों ने बार बार "तौहीद और तकदीस" पर इस लिये ज़ोर दिया है कि वे ईश्वर में गुणों का मानना, जैसा कि साधारण सुन्नी लोग मानते हैं, अनुचित और कुफ्र समझते थे। वे ईश्वर में गुणों का अभाव मानते थे (उसे निर्गुण समझते थे), जिसका नाम उनके यहाँ "तौहीद और तकदीस" था। मोतज़िला लोगों का भी यही विश्वास था; इसी लिये वे अपने आपको "अहले अदल व तौहीद" (अदल और तौहीदवाला) कहते थे।

[2] ईलियट; पहला खण्ड; पृ० ४६१।

(३) मुलतान के बादशाह अबुलफ़तह दाऊद आदि और सिन्ध के ये सोमरी लोग एक ही धर्म को माननेवाले थे।

(४) सोमर सम्भवतः सिन्ध के इस्माईलियों का शेख़ और इमाम था; क्योंकि इस्माईली लोग अपने धार्मिक नेता या सरदार के लिये "शेख़" शब्द का विशेष रूप से व्यवहार करते थे।

(५) जान पड़ता है कि अबुलफ़तह दाऊद के बाद उसका कोई लड़का था, जो छोटे दाऊद के नाम से प्रसिद्ध था। जब उसने इस्माईली धर्म त्याग दिया था, तब सुलतान मसऊद ने उसे क़ैद से छोड़ दिया था।

(६) अब्दुल्लाह अबुलफ़तह दाऊद अकबर का नाती और छोटे दाऊद का भाञ्जा था, जिसे मुलतान के लोग अपना अमीर बनाना चाहते थे।

(७) इस पत्र का अभिप्राय यह है कि इब्न सोमर अपने कबीले या दल के लोगों को सुलतान मसऊद और अब्दुल्लाह और मुलतान के लोगों के विरुद्ध लड़ने के लिये उभाड़े, और क़रमती इस्माईलियों का जो बल नष्ट हो चुका था, वह फिर से प्राप्त करे। इस लिये मुलतान में बार बार इस बात का प्रयत्न होता रहा, पर उस प्रयत्न में कभी सफलता नहीं हुई।

(८) इस पत्र से सबसे अधिक महत्त्व की बात यह मालूम होती है कि सोमर कोई बहुत बलवान् आदमी था। जब सोमर का लड़का सुलतान मसऊद के समय में था, तब यह कहना चाहिए, कि सोमर सुलतान महमूद (मृत्यु सन् ४२१ हि०) के समय में हुआ था।

(९) यहीं वे सोमरी लोग हैं जो इस पत्र की तिथि के बीस बरस बाद सुलतान अब्दुर रशीद बिन महमूद ग़ज़नवी (मृत्यु सन् ४४४ हि०) के दुर्बल शासन के समय में ग़ज़नवियों की जगह सिन्ध के मालिक हो गए थे।

हबारी वंश की एक स्थायी स्मृति

हबारी बादशाहों की ऊपरी स्मृति तो सदा के लिये नष्ट हो गई थी, पर उनकी एक अध्यात्मिक स्मृति सदा के लिये बची रह गई ; और वह स्मृति उनका वंश है जो ग़ज़नवियों की छाया में यहाँ से मुलतान जाकर बस गया। शेख़ुल् इस्लाम ज़करिया मुलतानी सन् ५७८ हि० में पैदा हुए थे ; और फ़रिश्ता के अनुसार सन् ६६६ हि० में अख़बारुल् अख़यार के अनुसार सन् ६६१ हि० में उनकी मृत्यु हुई थी। दिल्ली के शेख़ अब्दुल हक़ ने आपको असदी लिखा है।[1] और ऊपर बतलाया जा चुका है कि यह असदी हज़रत हबार का कबीला था। बीजापुर के शेख़ ऐनुद्दीन ने उनके वंश का सम्बन्ध हज़रत हबार बिन असवद बिन मुत्तलिब बिन असद तक पहुँचाया है।[2] पीरज़ादा मुहम्मद हुसैन साहब ने इब्न बतूता के अपने उर्दू अनुवाद (दूसरा खंड ; पृ० ८) में शेख़ के आजकल के वंश के संग्रह में से ख़ुलासतुल् आरिफ़ीन नाम की एक पुरानी पुस्तक में से अरबी का एक उद्धरण दिया है, जो बुख़ारा के सैयद जलाल के मलफ़ूज़ात (पत्रों) में से उद्धृत किया गया था। उसमें जो वंश-वृत्त दिया है, उससे भी यही बात सिद्ध होती है। इस प्रकार शेख़ुल् इस्लाम के वंश के भारत आने की दो तिथियाँ मिलती हैं। एक तो यह कि वह हिजरी पहली शताब्दी में अरब विजेताओं के साथ भारत में आया था, जैसा कि इब्न बतूता में लिखा है। और दूसरी यह कि वह मानों हिजरी पाँचवीं शताब्दी में अरब से आया था, ये दोनों

---

[1] अख़बारुल् अख़यार ; पृ० २६ ; (हाशिमी प्रेस मेरठ का छपा हुआ)

[2] फ़रिश्ता ; दूसरा खंड ; पृ० ४०४ (नवलकिशोर)।

तिथियाँ इस प्रकार मिल जाती हैं कि सिन्ध में तो इस वंश का प्रवेश पहली तिथि के अनुसार अर्थात् हिजरी दूसरी शताब्दी में हुआ ; और मुलतान में मन्सूरा का अन्त हो जाने पर हिजरी पाँचवीं शताब्दी में ये लोग ग़ज़नवी राज्य की छाया में आकर बसे। हाँ, तारीख़ फ़रिश्ता की यह बात ठीक न होगी कि वे लोग ख्वारिज़्म या ख़ीवा होकर यहाँ आए थे। लेकिन इससे अधिक महत्व का वर्णन तारीख़ ताहिरी के लेखक का है, जिसने विस्तार के साथ यह बतलाया है कि शेख़ बहाउद्दीन सिन्धी थे और सकोर (वर्त्तमान सक्खर) के परगने के रहनेवाले थे, जिसे मुहम्मद तूर ने बसाया था।[१]

सिन्ध ग़ज़नवियों, ग़ोरियों और दिल्ली के सुलतानों के हाथ में

सिन्ध का सन् ४४४ हि० तक ग़ज़नवियों के हाथ में रहना इस बात से सिद्ध होता है कि इस बात का प्रमाण मिलता है कि सुलतान अब्दुर रशीद ग़ज़नवी के समय (सन् ४४४ हि०) तक सिन्ध से राजकर आता था। इसके बाद ही ग़ज़नवी राज्य में उलट फेर होने लगा, यद्यपि नाम मात्र के लिये ग़ज़नवी लोग अन्त (सन् ५७८ हि०) तक पंजाब और सिन्ध के मालिक कहलाते रहे। सन् ५७८ हि० में ग़ज़नवियों की जगह ग़ोरियों का अधिकार होने लग गया ; और शहाबुद्दीन के एक सेनापति नासिरुद्दीन क़बाचा ने सिन्ध पर और अलतम्श ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया ; और फिर अन्त में अलतम्श ने क़बाचा को हराकर सिन्ध से निकाल दिया। उस समय से नाम मात्र के लिये दिल्ली के साथ उसका सम्बन्ध रहा, पर वास्तव में वह स्वतन्त्र ही रहा। मुहम्मदशाह तुग़लक के समय (सन् ७५२ हि०)

---

[१] तारीख़ ताहिरी ; ईलियट ; पृ० २५६।

में सिन्ध वहीं के एक शासक वंश के हाथ से निकलकर वहीं के दूसरे शासक के हाथ में चला गया। सन् ७६२ हि० में सुलतान फ़ीरोज़ शाह ने संधि करके उसपर अधिकार कर लिया; और अन्त में उन्हीं स्थानीय शासकों के हाथ में सौंप दिया, जिनके हाथ में वह सन् ९२७ हि० तक रहा। उनके हाथ से जीतकर अरगून नाम के एक तातारी अमीर ने ले लिया; और फिर सन् १००० हि० के अन्त में वह अकबर के अधिकार में आ गया।

सोमरी

ऊपर हमने जो पूरा इतिहास दिया है, उससे हमारा विशेष सम्बन्ध नहीं है। हमें तो केवल दो स्वतन्त्र कबीलों के मूल पर विचार करना है, जिनमें से एक सोमरी और दूसरे सम्मा कहलाते हैं। ग़ज़-नवियों के दुर्बल हो जाने के समय जिस स्थानीय कबीले ने सिन्ध पर अधिकार कर लिया था, वह सोमरी कहलाता है। फिर मुहम्मद शाह तुग़लक के समय (सन् ७५२ हि०) में जिस दूसरे कबीले के हाथ में वहाँ का शासन गया और जिसके हाथ में वह सन् ९२७ हि० (१५२१ ई०) तक रहा, वह सम्मा कहलाता है। इन दोनों कबीलों के मूल के विषय में इतिहास-लेखकों में बहुत मतभेद है; और विशेषतः सोमरी वंश की जातीयता के विषय में बहुत कुछ झगड़ा है; और इसी प्रकार उसके धर्म के सम्बन्ध में भी बहुत सी बातें कही जाती हैं।

ऊपर जिस दुरूजी पत्र का वर्णन हुआ है उससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि सन् ४२२ हि० (सुलतान मसऊद के समय) में वहाँ शेख़ इब्न सोमर राजा बल था; और वह इस्माईली धर्म का था। उसको दुरूजियों के इमाम ने मुलतान और सिन्ध के इस्माईलियों का राज्य फिर से स्थापित करने के लिये बहुत कुछ भड़काया था; और ऐसा न कर सकने के लिये लज्जित किया था। इस लिये आश्चर्य नहीं

कि ग़ज़नवियों का बल टूटने पर सुलतान अब्दुर रशीद (सन् ४४४ हि०) के समय सोमरियों ने सिन्ध में अपना राज्य जमा लिया हो।

सोमरियों का यह राज्य सन् ४४४ हि० से सन् ७३४ हि० के कई बरस बाद तक किसी न किसी प्रकार बना रहा। इस सम्बन्ध में इब्न बतूता की साक्षी सबसे अधिक महत्व की है। वह सन् ७३४ हि० में सिन्ध के रास्ते उस समय भारत आया था, जिस समय सोमरी जाति दिल्ली के सुलतानों की अधीनता में शासन करती थी। इब्न बतूता ने उन्हें देखा था। वह लिखता है—

(१) "इसके बाद हम जिनानी[1] पहुँचे जो सिन्ध नदी के किनारे एक सुन्दर और बड़ा नगर है और जिसमें सुन्दर बाज़ार हैं। यहाँ के निवासी वे लोग हैं, जिन्हें सामरा कहते हैं। ये लोग और इनके पुरखे उस समय यहाँ आकर बसे थे, जब हज्जाज के समय में सिन्ध जीता गया था, जैसा कि इतिहास लेखकों ने लिखा है। .... ये लोग जो सामरा कहलाते हैं, किसी के साथ भोजन नहीं करते और न भोजन करने के समय उन्हें कोई देख सकता है। न तो वे और लोगों के साथ और न और लोग उनके साथ ब्याह शादी करते हैं। इस समय उन लोगों का जो अमीर है, उसका नाम वनार है, जिसका जिक्र हम आगे करेंगे।"

आगे चलकर वह सेविस्तान (सेहवान) का वर्णन करता हुआ कहता है (सेवान अब कराची के जिले में है)—

(२) "इस नगर में सामरी अमीर व नार, जिसका नाम ऊपर आ चुका है, और अमीर कैसर रूमी रहते हैं और ये दोनों

---

[1] इस नगर का कुछ पता नहीं चलता। जान पड़ता है कि यह नदी में समा गया। अबुलफ़ज़ल ने भी इसका ज़िक्र नहीं किया है।

सुलतान (दिल्ली) के अधीनता में हैं। इन दोनों के साथ अठारह सौ सवार थे। यहाँ एक हिन्दू रहता था, जिसका नाम रतन (या रत्न) था और जो हिसाब किताब बहुत अच्छा जानता था। वह कुछ अमीरों के साथ सुलतान के दरबार में गया। सुलतान ने उसको पसन्द किया और उसको सिन्ध के राजा की उपाधि दी; और राजा के योग्य माही मरातिब देकर उसे सेविस्तान भेजा और वह स्थान उसको जागीर में दे दिया। जब वह वहाँ पहुँचा, तब वनार और कैसर को यह देखकर बहुत ही बुरा लगा कि एक क़ाफ़िर का हमसे बढ़कर आदर हो रहा है उन दोनों ने आपस में सलाह करके उसे मार डाला। .... और ख़ज़ाना लूट लिया। फिर सबने मिलकर ओनार को मलिक फ़ीरोज़ की उपाधि देकर अपना बादशाह बना लिया। ...... फिर वनार यह समझ कर डरा कि मैं इस समय अपने कबीले से दूर हूँ; इस लिये वह अपने कबीले में चला गया। ..... लश्करवालों ने कैसरी को अमीर बना लिया। ...... जब मुलतान के नायब के पास यह ख़बर पहुँची, तब उसने उसे दण्ड देने के लिये सेना भेजी और उसे कड़ा दण्ड दिया।[1] (यह वर्णन कुछ संक्षिप्त करके लिया गया है।)

इब्न बतूता उसी समय पहुँचा था। वह एक मदरसे में ठहरा था। लाशों की बदबू से उसे नींद नहीं आती थी। इन दोनों उद्धरणों से कई बातें प्रमाणित होती हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) सामरी लोग कहते थे कि हमारे पुरखा हज्जाज बिन यूसुफ़ सक़फ़ी के साथ आकर यहाँ बसे थे।

---

[1] इब्न बतूता का यात्रा-विवरण ; दूसरा खंड ; पृ० ४ और ६, (मिस्र)।

(२) धर्म के विचार से वे हिन्दू नहीं थे और हिन्दुओं के अधीन रहना पसन्द नहीं करते थे। साथ ही उनमें कुछ बातें ऐसी भी पाई जाती थीं, जो उन्हें साधारण मुसलमानों से अलग करती थीं।

(३) उस समय सिन्ध पर दिल्ली के सुलतान का इस प्रकारका अधिकार था कि सुलतान की ओर से वहाँ एक अमीर (या रेजिडेंट) सोमरियों के साथ रहता था।

(४) राजकीय शासन और व्यवस्था में सिन्ध मुलतान के अधीन होकर दिल्ली के अधीन था।

सोमरा का धर्म

ऊपर के दुरूजवाले पत्र से सोमरा का इस्माईली होना तो सिद्ध ही हो चुका है, पर इसके सिवा इब्न बतूता से कुछ और बातों का भी पता चलता है। इब्न बतूता के इस वर्णन से प्रकट होता है कि सोमरी लोग अरब विजेताओं के साथ भारत में आकर बसे थे। स्पष्ट है कि ये लोग राजपूत नहीं हो सकते; पर इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि खाने पीने और ब्याह शादी के सम्बन्ध में इन लोगों में कुछ ऐसी रस्में भी थीं जो मुसलमानों में नहीं होतीं। लेकिन इतना होने पर भी वे लोग अपने आपको हिन्दू या क़ाफ़िर नहीं समझते थे, बल्कि मुवहहिद (एक ईश्वर को माननेवाले) और मुसलमान ही समझते थे और मुसलमानो उपाधि मलिक फ़ीरोज़ ग्रहण करते थे। वे क़ाफ़िर के अधीन रहने में अपनी अप्रतिष्ठा समझते थे; इस लिये वे कभी हिन्दू नहीं थे। ऐसा संकर धर्म क़रमतियों और इस्माईलियों का ही था जो इस्लाम के साथ हर जगह कुछ स्थानीय रीतियाँ और विश्वास आदि मिला लेते थे। उन्होंने भारत में हज़रत अली को बिष्णु का अवतार बनाया था। इसी प्रकार की और बातें भी वे अपने धर्म में मिला लेते थे। इससे उन्हें

हर देश में अपने धर्म का प्रचार करने में सुभीता होता था। इतिहासों में इस बात का प्रमाण मिलता है कि पुराने समय में इस्माईलियों के किले अल् मूत से उनके धर्म का प्रचार करनेवाले लोग सिन्ध में आए थे।[१] अपने धार्मिक विश्वासों को छिपाने की प्रथा भी उन्हीं लोगों में थी। वे अपने नाम भी हिन्दुओं के ढंग के रख लेते थे। आज कल भी बम्बई की खोजा जाति में इन बातों के उदाहरण मिल सकते हैं। मुलतान के शेखुल् इस्लाम ज़करिया के शिष्य के शिष्य मख़दूम जहानियाँ सैयद जलालुद्दीन बुख़ारी (सन् ७०७-८०० हि०) के वर्णनों में इस सम्बन्ध में एक विलक्षण घटना मिलती है। उनका यह ज़िक्र आगे किसी अवसर पर आवेगा। ये सिन्ध के ऊच नगर में रहते थे और वहाँ सर्वप्रिय और सर्वमान्य थे। लिखा है कि एक बार ऊच का वाली सोमरा इनकी सेवा में आया। दरवेशों या फ़क़ीरों की भीड़ लगी हुई थी। सोमरा ने उनमें से किसी एक को बिना हज़रत की आज्ञा के मसजिद से बाहर निकाल दिया। उस समय मख़दूम की ज़बान से निकला—"सोमरा मगर दीवाना शुदई।" अर्थात् सोमरा शायद तू पागल हो गया। उसी समय सोमरा पागल हो गया। नगर में इस बात की धूम मच गई। अन्त में उसकी माँ ने आकर बहुत प्रार्थना की; तब जाकर उसका अपराध क्षमा हुआ और वह होश में आया। मसजिद में आकर उसने मख़दूम के पाँव चूमे, उनका शिष्य हुआ और वह ईश्वर के दरबार में मान्य हुआ।[२] क्या इस घटना से यह समझा जाय कि वह इस्माईली धर्म का त्याग करके सुन्नी हो गया?

---

[१] डाक्टर आर्नल्ड कृत प्रीचिंग आफ़ इस्लाम (Preaching of Is'am) पृ० २३३।

[२] फ़रिश्ता; दूसरा खंड; पृ० ४१६ (नवलकिशोर)।

इस्माईली धर्म के मिस्रवाले फ़ातिमी राज्य का अन्त सन् ५६७ हि० में सुलतान सलाहुद्दीन के हाथों से हो गया। इसके बाद हसन बिन सब्बाह वाला इस्माईली नजारी राज्य, जो किला अल् मूत में था, बना रहा। सन् ४८३ हि० (१०९१ ई०) में उसका आरम्भ हुआ था और सन् ६५४ हि० (१२५६ ई०) में वह हलाकू की तलवार से नष्ट हुआ। अब पाठक समझ सकते हैं कि सिन्ध के इस्माईली दल पर उसके मूल केन्द्र के नाश का क्या प्रभाव पड़ा होगा। इस लिये बहुत सम्भव है कि ये सोमरी लोग या उनमें से कुछ लोग सैयद जलाल बुख़ारी के हाथ से सुन्नी हो गए हों।

सोमरा की जातीयता

सोमरा लोगों की जातीयता के प्रश्न का निपटारा करने के लिये हमें सबसे पहले पुराने इतिहास-लेखकों के वर्णन देखने चाहिएँ। इब्न बतूता का सबसे पहला वर्णन आप सुन ही चुके हैं कि ये लोग कहते थे कि हमारे पूर्वज उस समय सिन्ध में आकर बसे थे, जिस समय हज्जाज बिन यूसुफ़ ने सिन्ध जीता था। इसके बाद तारीख़ मासूमी के लेखक मीर मुहम्मद मासूम का वर्णन है। वह अपने इतिहास के दूसरे प्रकरण में लिखता है—

"सुलतान महमूद ने मुलतान और सिन्ध जीत लिया। सुलतान महमूद के लड़के अब्दुर रशीद के समय (सन् ४४१-४४ हि०) में जब उसके परम सुख और विलासपूर्वक रहने के कारण उसका राज्य दुर्बल हो गया, तब उन लोगों ने अपने कन्धे पर से ग़ज़नवियों का जूआ उतार दिया और सोमरा के कबीले ने थरी नाम के स्थान पर इकट्ठे होकर सोमरा नाम के एक आदमी को सिंहासन पर बैठाया। वहीं आस पास में सैयद नाम का एक बड़ा और मजबूत जमींदार था। सोमरा ने उसके साथ सम्बन्ध करके उसकी लड़की के साथ अपना

ब्याह कर लिया। उससे एक लड़का हुआ, जिसका नाम भौंगर रखा। पिता के मरने के बाद वही बादशाह हुआ।"[१]

इससे आगे मीर मासूम ने उसके लड़कों पोतों आदि के वर्णन दिए हैं, जिनमें से कुछ के नाम अरबी हैं; जैसे ख़फ़ीफ़ और उमर आदि; और कुछ के नाम भारती हैं, जैसे दूदा।

तारीख़ ताहिरी के लेखक ने अधिकतर कहानियाँ आदि लिखी है जिसका आरम्भ उसने उमर सोमरा और एक हिन्दू महिला के प्रेम से किया है। इसी प्रकरण में वह कहता है—"यह कबीला हिन्दू था और हिन्दू धर्म को मानता था। इसने सन् ७०० हि० से सन् ८४३ हि० तक राज्य किया। अलोर के पास उनका स्थान था; और उनकी राजधानी का नाम मुहम्मद तूर था।"[२]

बेगलार नामा में केवल इतना लिखा है कि जब सिन्ध को मुसलमानों ने जीत लिया, तब अरब के तमीम नाम के कबीले ने वहाँ राज्य किया। थोड़े दिनों बाद सोमरा लोगों ने उसपर अधिकार कर लिया। पाँच सौ बरस तक उनका अधिकार बना रहा। उनकी राजधानी का नाम महातम तूर था।

यह एक बहुत ही विलक्षण बात है कि जिस प्रकार इनके राजाओं के नाम अरबी और भारतीय दोनों मिले हुए हैं, उसी प्रकार इनकी राजधानी का नाम भी कभी मुहम्मद तूर और कभी महातम तूर है। कहा जाता है कि इसमें जो महातम (महात्मा) शब्द है, वह मुहम्मद का ही पाठान्तर है। सम्भव है कि ऐसा ही हो। यह स्थान देरग के परगने में, जो आजकल के चाचगम और बादबन परगने की जगह पर था, जौ-परकर और दंगा बाज़ार के बीच में है।

---

[१] तारीख़ मासूमी; ईलियट; पहला खंड; पृ० २१५।

[२] तारीख़ ताहिरी; ईलियट; पहला खंड; पृ० २६० और ४८४।

तोह्फ़तुल् किराम के लेखक ने मुन्तखबुत्तवारीख़ (बदायूनी की नहीं) से, जो मुहम्मद यूसुफ़ की लिखी हुई है, यह उद्धरण दिया है—

"जब सुलतान महमूद के लड़के सुलतान अब्दुर रशीद का राज्य हुआ, तब सिन्ध के लागों ने देखा कि वह दुर्बल है। सन् ४४५ हि० (१०५३ ई०) में सोमरा नामक कबीले के लोगों ने थरी में इकट्ठे होकर सोमरा नाम के एक आदमी को बादशाह बनाया। उसे साद नाम के एक ज़मींदार की लड़की के गर्भ से भंगर नाम का एक लड़का हुआ। पाँच बरस राज्य करने के बाद सन् ४६१ हि० में उस भंगर की मृत्यु हुई।"[1] (संक्षिप्त)।

स्वयं तोह्फ़तुल् किराम का लेखक लिखता है—

"सोमरा जाति सामरा के अरबों से निकली है, जो सिन्ध में हिजरी दूसरी शताब्दी में तमीम नाम के कबीले के साथ आई थी। तमीम लोग अब्बासी के समय में सिन्ध के शासक या गवर्नर नियत हुए थे।"

आगे चलकर वह कहता है—

"सिन्ध में दल्लूराय राजा था। उसने अपने भाई पर, जिसका नाम छोटा इमरान था, अत्याचार किया। वह बग़दाद के ख़लीफ़ा के पास गया। ख़लीफ़ा ने सामरा के सौ अरब और सैयद उसके साथ कर दिए। सैयद आकर सिन्ध में रहने लग गया और दल्लूराय ने अपनी लड़की उससे ब्याह दी।"[2]

तारीख़ ताहिरी के लेखक ने दल्लूराय और छोटा इमरानो दोनों भाइयों के बीच में विरोध होने का एक कारण यह लिखा है कि छोटे

---

[1] तोहफ़तुल् किराम ; ईलियट ; पहला खंड ; पृ० ३४४।

[2] उक्त ग्रन्थ और खंड ; पृ० ३४३।

भाई का बचपन से ही इस्लाम की ओर अनुराग था। उसने कुरान पढ़ा था और वह हृदय से मुसलमान हो गया था। वह छिपकर हज करने के लिये चला। रास्ते में उसने एक विलक्षण रीति से फ़ातिमा नाम की एक लड़की से ब्याह किया। जब वह हज से लौटकर सिन्ध के सेविस्तान नामक स्थान में पहुँचा, तब वह मर गया। वह वहीं गाड़ा गया। उसकी क़बर पर अब भी बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं।[१]

ये लोग अरबी और भारतीय मिले हुए थे

तात्पर्य यह कि इन सभी उद्धरणों से यही पता चलता है कि यह कबीला संकर था और इसमें अरबी और भारतीय दोनों जातियाँ मिली हुई थीं। जिन लोगों ने इसे अरब बतलाया है, वे इसके एक अंग का उल्लेख करते हैं; और जो इसे हिन्दू बतलाते हैं, वे इसके दूसरे अंग का उल्लेख करते हैं। जैसा कि दुरूज के पत्र से पता चलता है, सोमर नाम का फ़ारसी के इतिहासों में उल्लेख है। सोमर ने ही इस राज्य की स्थापना की थी; इस लिये इन लोगों को सोमरी और सामरा आदि कहने लगे। इराक़ के सामरा नगर से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। सामर्रा नगर का असली नाम सुर्र-मन-रआ था, जिसे अधिक व्यवहार के कारण साधारण लोग सामरा कहने लगे। यह नगर ख़लीफ़ा मोतसिम बिल्लाह अब्बासी (सन् २२७ हि०) ने बसाया था।

शुद्ध राजपूत नहीं थे

युरोपियन इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि यह कबीला पहले राजपूत था और फिर मुसलमान हो गया था। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में "सिन्ध" पर जो लेख है, उसके लेखक ने भी यही

---

[१] तारीख़े ताहिरी; ईलियट; पहला खंड; पृ० २८८।

लिखा है ।[१] ईलियट साहब भी यही बात सिद्ध करना चाहते हैं। पर इनमें से कोई महाशय किसी प्रकार का तर्क या प्रमाण नहीं देते। फ़ारसी इतिहास-लेखकों के मिले जुले वर्णनों से तो यही जान पड़ता है कि वे शुद्ध भारतीय भी नहीं थे। फिर भला वे शुद्ध राजपूत कैसे रहे होंगे।

यहूदी भी नहीं थे

स्वर्गीय मौलवी अब्दुर रहीम साहब शरर ने एक विलक्षण बात यह लिखी है कि ये लोग यहूदी थे और मुसलमान हो गए थे। मौलवी साहब को शायद इस लिये यह सन्देह हुआ कि यहूदियों की एक जाति का नाम सामरी था, जिसका यह नाम शमरून पर्वत के नाम पर पड़ा था। इस सन्देह का दूसरा कारण बुशारी मुकद्दसी का एक लेख है, जिसे स्वर्गीय मौलवी साहब ने एक विलक्षण ढंग से अपने विचार के अनुसार बना लिया है। बात यह है कि बुशारी ने अपने मुकद्दमा या भूमिका में जिन जातियों आदि का उल्लेख किया है, उनमें चार की संख्या की विशेषता रखी है; और कहा है—"अहले ज़िम्मा (मुसलमानों से भिन्न या ग़ैरमुस्लिम लोग, जिनसे जज़िया लिया जा सकता है) चार हैं—यहूद, नसारा (ईसाई) मजूस (अग्निपूजक) और साबी।" फिर आपत्ति की है कि—"सामरा भी तो अहले ज़िम्मा हैं, जिनसे जज़िया लिया जा सकता है। इस प्रकार चार की जगह पाँच जातियाँ हो जाती हैं।" इसका उत्तर यह दिया है—"सामरा असल में यहूद का ही एक भेद है। वे भी हज़रत मूसा को ही पैगम्बर मानते हैं।" यह तो मूल प्रति में लिखा हुआ है। इस पर सम्पादक ने पाद-टिप्पणी में एक और प्रति का भी लेख दे दिया है, जिसमें

---

[१] ग्यारहवाँ संस्करण; २४ वाँ खंड; पृ० १४३।

आपत्ति का उत्तर इस प्रकार है—"सिन्ध के मूर्त्तिपूजक भी तो इस्लामी देश में रहते हैं। फिर अहले जिम्मा चार से अधिक हो जाते हैं।" इसके उत्तर में बुशारी कहता है—"सिन्ध के मूर्त्तिपूजक अहले जिम्मा नहीं हैं, क्योंकि वे जजिया नहीं देते।[१] इस लिये अन्त में अहले जिम्मा वही चार रह गए।"

स्वर्गीय मौलवी साहब ने सामरा और सिन्ध को ऊपर नीचे देखकर दोनों को एक में मिला दिया है; और एक नया सिद्धान्त बना लिया है, जिसकी कोई जड़ नहीं है। बुशारी की अहसनुत्तक़ासीम नामक पुस्तक मिलती है, जिसे देखकर सब लोग जान सकते हैं कि असल में बात क्या है।

सोमरी बादशाह

तोहफ़तुल् किराम में सोमरा के नीचे लिखे बादशाहों के नाम और उनके शासन के वर्ष लिखे हैं—

१ सोमरा . . . . . . बहुत दिनों तक।
२ भौंगर, पहले सोमरा का लड़का १५ बरस; सन् ४६१ हि० में मरा।
३ दूदा, प्रथम भौंगर का लड़का २४ बरस; सन् ४८५ हि० में मरा।
४ संघर . . . . . १५ बरस।
५ हफ़ीफ़ या ख़फ़ीफ़ . . . ३३ बरस।
६ उमर[२] . . . . ४० बरस।

---

[१] अहसनुत्तक़ासीम; बुशारी; पृ० ४२ (लीडन)।

[२] शीया इस्माईलियों में यह उमर नाम विलक्षण जान पड़ता है। सम्भव है कि असल में यह नाम उनर हो, जैसा कि सिराज अफ़ीफ़ में लिखा है और जिसके दूसरे उच्चारण ओनार या दिनार या उनार हैं, जैसा कि इब्न बतूता और सिन्ध के कुछ फ़ारसी इतिहासों में है।

७ दूदा दूसरा	१४ बरस।
८ पाथू	३३ बरस।
९ गन्हरा पहला . . .	१६ बरस।
१० मुहम्मद तूर	१५ बरस।
११ गन्हरा दूसरा . . .	कुछ थोड़े बरस।
१२ दूदा तीसरा	१४ बरस।
१३ ताई	१५ बरस।
१४ चैंसर या चैन्सर . . .	१८ बरस।
१५ भौंगर दूसरा . . .	१५ बरस।
१६ हफ़ीफ़ या ख़फ़ीफ़ दूसरा . .	१८ बरस।
१७ दूदा चौथा	२५ बरस।
१८ उमर सोमरा . . .	३५ बरस।
१९ भौंगर तीसरा . . .	१० बरस।
२० हमीर अमीर . . .	अन्तिम बादशाह।
	३६१

ग्यारहवें बादशाह के सम्बन्ध में यह निश्चय नहीं है कि उसने कितने बरसों तक राज्य किया; और अन्तिम बादशाह का भी समय नहीं दिया है; इस लिये ऊपर सबके राज्य करने के बरसों का जो समय दिया गया है, उसमें इन दोनों के बरस नहीं जोड़े गये हैं। अगर उनके लिये भी कुछ बरस बढ़ा लिए जायँ, तो इन सब का शासन काल ३७५ बरस के लगभग होता है। अब यदि यह माना जाय कि उनका आरम्भ सुलतान अब्दुर रशीद के बाद सन् ४४४ हि० से हुआ तो उनका अन्त सन् ८१९ हि० में होता है। पर ऊपर कहा जा चुका है कि इनका अन्त मुहम्मद शाह तुग़लक के समय (सन् ७५२ हि०) में हुआ। इस हिसाब से ऊपर सब बादशाहों के राज्य करने का जो समय बतलाया गया है, उसमें ६७ बरस अधिक जान पड़ते हैं।

सोमरियों का अन्त

मुहम्मद शाह् तुग़लक के समय में दिल्ली के सुलतान और सोमरियों में आपस में कुछ खींचा तानी और लड़ाई होने लगी थी। मुहम्मद शाह् तुग़लक के अन्तिम समय में गुजरात में तग़ी नाम का एक मुग़ल विद्रोही हो गया था। जब बादशाह् गुजरात पहुँचा, तब वह मुग़ल भागकर ठट्ठा (सिन्ध) चला गया; और वहाँ उसने सोमरियों के यहाँ शरण ली। बादशाह् उसका पीछा करता हुआ ठट्ठे तक गया। वहाँ मुग़लों और सोमरियों ने मिलकर बादशाह् का सामना किया। वहीं अचानक बादशाह् की तबीयत कुछ ख़राब हो गई और वह मर गया। बिना बादशाह् के सेना को मुग़लों और सोमरियों के हाथ से बहुत कष्ट उठाना पड़ा। अन्त में उसने फीरोज़ शाह् तुग़लक को अपना बादशाह् बना कर इस दोहरी कठिनाई से छुटकारा पाया; और वह सेना दिल्ली लौट आई। यह बात सन् ७५२ हि० की है।[१]

पर इसके कुछ ही बरसों बाद जब फ़ीरोज़ शाह् सन् ७६२ हि० में यहाँ आया तब उसने देखा कि यहाँ जामों का राज्य है। जाम उनर और उसका भतीजा और भानजा शासक हुआ। यह जाम उपाधि सम्मा के बादशाह् की थी। इससे जान पड़ता है कि उसी समय सोमरा लोगों का अन्त और सम्मा लोगों का आरम्भ हुआ। तोहफतुल् किराम में सन् ७५२ हि० में सम्मा लोगों का आरम्भ लिखा है, जिससे जान पड़ता है कि इसी मुहम्मद शाह् तुग़लक की चढ़ाई के बाद ही यह क्रान्ति हुई थी; और फ़रिश्ता के कथन के अनुसार इस क्रान्ति के लिये मुसलमानों ने सब से अधिक प्रयत्न किया था। जान पड़ता है कि इस्माईली या हिन्दू से जान पड़ने वाले

---

[१] फ़ीरोज़शाही; जियाए बरनी; पृ० ५२३-२५ (कलकत्ता)।

सोमरियों के विद्रोह के बाद साधारण मुसलमानों ने यही उचित समझा कि सोमरियों को यहीं की एक नई मुसलमान बनी हुई देशी जाति के द्वारा मिटा दिया जाय। इस लिये सम्मा जाति के ओनर नाम के एक सरदार ने सोमरियों के अन्तिम बादशाह हमीर (अमीर) को, जिसका दूसरा नाम असमाईल भी मिलता है, मारकर अपना राज्य स्थापित कर लिया।

नई जांच की आवश्यकता

इस बात की बहुत आवश्यकता है कि सोमर बादशाहों की इस सूची और उनके शासन काल की फिर से अच्छी तरह जाँच की जाय। इस पर हमारे भारतीय इतिहास लेखकों को कुछ परिश्रम करना चाहिये। कहते हैं कि सन् ६२० हि० से एक दो बरस पहले जब सुलतान जलालुद्दीन ख़्वारिज़्म शाह तातारियों से भागकर सिन्ध में आया और ठट्ठा पहुँचा, तब जलसी नाम के सोमरी बादशाह ने भागकर और नावों पर अपना सब सामान लादकर किसो टापू में जाकर शरण ली।[१] यह जलसी नाम इस सूची में नहीं है। नवलकिशोर प्रेस की छपी हुई प्रति पर विश्वास नहीं किया जा सकता। सम्भव है कि यह जलसी नाम चैन्सर शब्द की ख़राबी हो, जो हमारी सूची का चौदहवाँ बादशाह है। इसी प्रकार सन् ७३४ हि० में जब इब्न बतूता सिन्ध में आया था, उस समय वहाँ का बादशाह ओनार था। यह नाम भी इस सूची में नहीं है। पर सम्भव है कि यह वही बादशाह हो, जिसका नाम उमर के रूप में अठारहवें नम्बर पर मिलता है।

---

[१] फ़रिश्ता ; दूसरा खण्ड ; पृ० ३१६ (नवलकिशोर)।

सम्मा

सोमरियों के बाद सम्मा कबीले के जिन लोगों ने सिन्ध पर अधिकार किया था, उनकी राजधानी ठट्ठा थी, जिसे अरब लोग देबल कहते हैं।

सम्मा को फ़ारसी इतिहास-लेखक बहुवचन में सम्मागान लिखते हैं, जिस प्रकार अँगरेजी लेखक "एस" (s) लगाकर बहुवचन बनाते और "सम्मास" (Sammas) लिखते हैं। इसीसे धोखा खाकर कुछ लोगों ने इन्हें "सम्मास" भी लिख दिया है। ये इस्लाम धर्म को माननेवाले थे। हाँ इस बात में मतभेद है कि ये लोग पहले से ही मुसलमान थे या पीछे से मुसलमान हो गए। इनका मुख्य स्थान ठट्ठा था। सरकारी उपाधि जाम थी और नाम भारतीय तथा अरबी मिला हुआ होता था। उदाहरण के लिये प्रसिद्ध सम्मा बादशाह का नाम जामनन्दा निज़ामुद्दीन था। ये लोग इतने बलवान थे कि बहुत दिनों तक यही लोग दिल्ली के बादशाहों का ज़ोरों से सामना करते रहे। ये लोग सन् ७५२ हि० (१३५१ ई०) से सन् ९२७ हि० तक अर्थात् १७५ बरस तक सिन्ध पर राज्य करते रहे।

इस कबीले के मूल के सम्बन्ध में भी इतिहास-लेखकों में बहुत मतभेद है। सिन्ध के कुछ इतिहास-लेखकों ने यह माना है कि ये लोग अरब जाति के थे। उन्होंने इन्हें अबूजहल की सन्तान कहा है। बाद के फ़ारसी इतिहास-लेखकों, जैसे फ़रिश्ता और अबुल फ़ज़ल आईन अकबरी) ने, इनकी "जाम" उपाधि के कारण इन्हें ईरानी बादशाह जमशेद की सन्तान कहा है। इसका आधार केवल यह है कि जम और जाम शब्द दोनों एक से ही हैं। पर यह बिलकुल गलत है। युरोप के इतिहास-लेखक जैसे ईलियट[1] और

---

[1] ईलियट कृत भारत का इतिहास; पहला खण्ड; पृ० ४९७।

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका[१] एन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम[२] के निबन्ध-लेखक कहते हैं कि ये लोग राजपूत थे, जो पीछे से मुसलमान हो गए थे। पर अन्तिम लेखक के सिवा और किसी ने कोई तर्क या प्रमाण देने का कष्ट नहीं उठाया है। अन्तिम लेखक के तर्क का सार यही है कि कच्छ और नवा नगर के राजपूत राजाओं की उपाधि जाम है। सच बात यह है कि कुछ पुराने इतिहास-लेखक भी इस विचार का समर्थन करते हैं। तारीख़ मासूमी में लिखा है कि सम्मा लोग कच्छ से सिन्ध आए थे।[३] चचनामा के वर्णन से पता चलता है कि सम्मा कबीले के लोग मुहम्मद क़ासिम के समय (सन् ९६ हि०) से भी पहले सिन्ध में बसे हुए थे। जब मुहम्मद क़ासिम उनकी बस्ती में पहुँचा, तब उन लोगों ने गीतों और बाजों से उसका स्वागत किया और वे बहुत प्रसन्न हुए। मुहम्मद क़ासिम ने एक अरब सरदार को, जिसका नाम ख़रीम और जिसके बाप का नाम उमर बतलाया गया है, उनका प्रधान बना दिया।[४] तारीख़ ताहिरी में लिखा है—"इस प्रकार वह देश जो समुद्र के किनारे है, सम्मा जाति के अधीन हो गया, जहाँ उसके वंश के लोग अब तक बसे हुए हैं। राय भारा और जाम सहता और कच्छ के छोटे राजा इसी जाति के हैं।"[५]

पर तारीख बिलाज़ुरी में, जो सन् २९७ हि० में लिखी गई थी, मुझे एक वाक्य मिला है, जिसका अर्थ इस प्रकार है—

---

[१] "सिन्ध" नाम का लेख ; २५ वाँ खंड ; पृ० १४३ (ग्यारहवाँ संस्करण)।

[२] साम्मा (Samma) नाम का लेख ; अँगरेजी संस्करण।

[३] मासूमी ; ईलियट ; पृ० २२३।

[४] चचनामा ईलियट १९१।

[५] ताहिरी ; ईलियट ; पृ० २६८।

"फिर सिन्ध का वाली दाऊद बनाया गया जो यजीद का लड़का और हातिम का पोता था। उसीके साथ सम्मा का बाप गया था, जिसका आजकल सिन्ध पर अधिकार है। वह कन्दा कबीले का स्वतन्त्र किया हुआ दास है।"[१]

अब इससे क्या यह समझा जाय कि जो लोग बाद में सम्मा कबीले के नाम से प्रसिद्ध हुए थे, वे इसी सम्मा की सन्तान थे? सम्भव है कि वही लोग कच्छ में जा रहे हों और फिर वहाँ से सन् ७५२ हि० में आकर उन्हों ने सोमरा लोगों से सिन्ध छीन लिया हो।

सम्मह या सम्मा बादशाह

सम्मा लोगों का समय बहुत पीछे का है; अर्थात् वह समय है, जब दिल्ली के मुसलमानों का दृढ़ राज्य स्थापित हो चुका था। इस लिये सम्मा बादशाहों के नाम, उपाधि और शासन-काल अधिक अच्छी तरह से रक्षित हैं। फ़रिश्ता के अनुसार इन बादशाहों का विवरण इस प्रकार है—

"शाह मुहम्मद तुग़लक के समय में मुसलमानों के प्रयत्न से सिन्ध का राज्य सोमरियों के हाथों से निकल कर सम्मा लोगों के हाथ में आ गया। इस कबीले के प्रायः सरदार इस्लाम ग्रहण कर चुके थे और प्रायः ये लोग दिल्ली के बादशाह के आज्ञाकारी और करद रहे। हाँ कभी कभी वे लोग विद्रोह भी कर बैठते थे। इस्लाम के समय में जो सबसे पहला आदमी इनका बादशाह बना, वह जाम अफ़ज़ा (अनार या वनार)[२] था। वह बहुत बुद्धिमान् था। उसने साढ़े तीन बरस

---

[१] बिलाज़ुरी; पृ० ४४५ (लीडन)।

[२] नवलकिशोर प्रेस की छपी हुई फ़रिश्ता की प्रति में इसका नाम जाम अफ़ज़ा लिखा है; पर यह लिखनेवाले की भूल है या मूल प्रति की भूल

तक राज्य किया। उसके बाद उसका भाई जाम जूना बादशाह हुआ, जो बहुत न्यायी था। उसके बाद उसका लड़का जाम मानी हुआ, जिसने दिल्ली के सुलतान का विरोध और सामना किया इससे सन् ७६२ हि० में सुलतान फ़ीरोज़ शाह ने उसपर चढ़ाई की। पहले वह सफल नहीं हुआ। फिर गुजरात से लौटकर सुलतान ने उसका सामना किया। अन्त में जाम मानी ने सन्धि कर ली।"[1]

इस युद्ध और सन्धि का पूरा और आँखों देखा हाल फ़ीरोज़ शाह के समय के इतिहास-लेखक सिराज़ अफ़ीफ़ ने लिखा है। पर उस समय के जाम का नाम उसने ओनर लिखा है और उसके साथ उसके भतीजे को भीर खा है, जिसका नाम बाँहबना बतलाया है। सम्मा लोगों के बलका अनुमान इस बात से हो सकता है कि जाम ने चालीस हज़ार पैदल और बीस हज़ार सवारों को साथ लेकर दिल्ली के सुलतान फ़ीरोज़ शाह का सामना किया था। रसद और घास की कमी के कारण सुलतान को सफलता नहीं हुई और वह सिन्ध छोड़कर गुजरात चला गया। दूसरे ही बरस उसने वहाँ से लौटकर फिर चढ़ाई की। लाचार होकर जाम सन्धि के लिये तैयार हो गया। यह सन् ७६२ हि० (१३६१ ई०) की घटना है।

यह सन्धि किस प्रकार हुई

सैयद जलालुद्दीन हुसैन बुख़ारी, जो उस समय के प्रसिद्ध महात्मा थे और जिनका नाम सोमरा के धर्म के प्रकरण में आ चुका है, ऊच में ठहरे हुए थे। जाम ने सलाह करके उनकी सेवा में अपने

है। असल शब्द उनार या वनार या ओनर है, जैसा कि इब्न बतूता और सिराज़ अफ़ीफ़ में है।

[1] तारीख़ फ़रिश्ता ; दूसरा खंड ; पृ० ३१७ (नवलकिशोर)।

दूत भेजे और कहलाया कि आप यहाँ पधार कर सुलतान से मेरा अपराध क्षमा करा दें। सैयद जलालुद्दीन बुख़ारी आए और बादशाह ने पूरी श्रद्धा के साथ उनका स्वागत किया। सैयद साहब ने दोनों पक्षों को दिलासा दिया। जाम और उसके साथ मिलकर शासन करनेवाले बाँहबना को आप अपने साथ ले जाकर फ़ीरोज़ शाह से मिलाया और सन्धि की शर्तें तै हो गईं।[१]

सम्मा बादशाहों के नाम

मीर मासूम और फ़रिश्ता ने सम्मा बादशाहों के नाम और उनके राज्य करने के बरस लिखे हैं। आरम्भ के कुछ नामों के सम्बन्ध में इन दोनों में कुछ मतभेद है। जैसे ख़ैरुद्दीन का नाम फ़रिश्ता में नहीं है और उसकी जगह जाम मानी लिखा है। सम्भव है कि मानी और खरुद्दीन दोनों एक ही आदमी हों। अन्त के नामों में कुछ मतभेद है। वे नाम इस प्रकार हैं—

१	जाम ओनार या वनार या ओनर ...	३ बरस ६ महीने।
२	जाम जूना जो जाम ओनार का भाई और बाँहबना का लड़का था ...	१४ बरस यह अलाउद्दीन ख़िलजी के समय में हुआ था।
३	जाम तमाजी	१५ बरस अलाउद्दीन का समकालीन।
४	जाम ख़ैरउद्दीन	१६ बरस अलाउद्दीन का समकालीन।
५	जाम बाँहबना	...

[१] अधिक बातें जानने के लिये देखो फ़ीरोज़शाही ; शम्स सिराज़ अफ़ीफ़ ; पृ० २४०-४१ (कलकत्ता)।

६	जाम तमाज़ी	...
७	जाम सलाहुद्दीन	११ बरस
८	जाम निज़ामुद्दीन, जो सलाहुद्दीन का लड़का था ...	२ बरस कुछ महीने
९	जाम अलीशेर, निज़ामुद्दीन का लड़का	६ बरस कुछ महीने
१०	जाम करनजान, तमाज़ी का लड़का	डेढ़ दिन

जाम ओनार के वंश का अन्त हो जाने पर सम्मा क़बीले का एक और वंश सिंहासन पर बैठा था। उसके पहले बादशाह का नाम फ़तह खाँ था। उसका वंश इस प्रकार था—

११	फ़तह खाँ, सिकन्दर का लड़का ...	१५ बरस
१२	जाम तुग़लक, सिकन्दर का लड़का और फ़तह खाँ का भाई .	२८ बरस
१३	जाम मुबारक, जाम तुग़लक का एक पास का सम्बन्धी ...	३ दिन
१४	जाम सिकन्दर, फ़तह खाँ का लड़का और सिकन्दर का पोता ...	१ बरस ६ महीने।
१५	जाम रायवरन (मुसलमान था) ..	सन् ८५८ हि० में कच्छ से आया था।
१६	जाम सजंर, सम्मा का एक सरदार	८ बरस ६ महीने
१७	जाम नन्दा निज़ामुद्दीन ...	६२ बरस।
१८	जाम फ़ीरोज़, जाम नन्दा का लड़का	अन्तिम बादशाह।

जाम नन्दा के समय में सन् ८९० हि० में शाहबेग़ अरगून ने कन्धार से आकर सिन्ध पर चढ़ाई की, पर उसे सफलता न हुई। जाम नन्दा के बाद उसके लड़के जाम फ़ीरोज़ और उसके एक विरोधी सम्बन्धी सलाहुद्दीन में सिंहासन के लिये आपस में लड़ाई हुई। जाम सलाहुद्दीन गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़र की बेग़म का चचेरा

भाई था। इस लिये जाम सलाहुद्दीन की सहायता करने के विचार से गुजरात का सुल्तान मुज़फ़्फ़र उठा। यह देखकर जाम फीरोज़ ने कन्धारवाले शाहबेग अरगून से सहायता माँगी। शाहबेग अरगून ने देखा कि यह बहुत अच्छा अवसर है; इस लिये उसने सन् ९२७ हि० में सिन्ध पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार सम्मा जाति के राज्य का अन्त हो गया।[1]

ऊपर बादशाहों के राज्य करने के जो बरस लिखे गए हैं, उन सबका जोड़ १९२ होता है; पर सन् ७५२ हि० से ९२७ हि० तक कुल १७५ ही बरस होते हैं। सम्भवतः जाम नन्दा का समय बहुत बढ़ाकर बतलाया गया है। नामों के बढ़ने का एक कारण यह भी जान पड़ता है कि वंश के दो दो आदमी एक साथ मिलकर राज्य करते थे; जैसा कि सिराज अफ़ीफ़ से पता चलता है।[2]

सम्मा जाति का धर्म

सम्मा जाति मुसलमान तो थी ही, पर वह कब मुसलमान हुई और मुसलमानों के किस फ़िरक़े या दल के साथ उसका सम्बन्ध था, यह अभी तक इतिहास का एक रहस्य ही बना हुआ है, जिसके आगे से अन्धकार का परदा उठाने का अब तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। इतिहास-लेखकों ने इनके भारतीय और अरबी नामों की सहायता से इनके धर्म-परिवर्त्तन का समय नियत किया है। उदाहरणार्थ फ़रिश्ता ने इन्हीं नामों से अनुमान करके पहले के चार बादशाहों को जिनके नाम क्रम से जाम ओनर, जाम जूना, जाम मानी और

---

[1] फ़रिश्ता; दूसरा खंड; पृ० ३२० (नवलकिशोर)

[2] फ़ीरोज़शाही; पृ० १९९ और २४७ (कलकत्ता)।

जाम तमाज़ी लिखे हैं, हिन्दू समझा है; और पाँचवें बादशाह जाम सलाहुद्दीन से मुसलमान बादशाहों का क्रम आरम्भ किया है। उसने लिखा है—

"इन लोगों के नामों से और विशेषतः तमाज़ी नाम से यह प्रकट होता है कि ये लोग जनेऊ पहननेवाले (हिन्दू) थे।" (दूसरा खंड; पृ० ३१८ नवलकिशोर)

पर वास्तव में इस जाति के नामों के रंग ढंग से धोखा नहीं खाना चाहिए। इनमें से सबसे पहला ही नाम जाम ओनर है। इब्न बतूता के वर्णन से पता लग चुका है कि उसके समय में जिस सामरी का नाम ओनार (ओनर) था, वह हिन्दू नहीं था, बल्कि अपने आपको मुसलमान समझता था; और एक हिन्दू के अधीन होने से उसे इतना अधिक दुःख हुआ था कि उसने दिल्ली के सुलतान के विरुद्ध विद्रोह किया था और मलिक फ़ीरोज़ की बादशाही उपाधि धारण की थी। तारीख़ ताहिरी में जिस जाम के समय की इस्लाम का प्रचार करने के लिये विशेष रूप से प्रशंसा की गई है, वह जाम नन्दा है; और उसके बाप का नाम बाँहबना बतलाया गया है।[1] जाम रायवरन बिलकुल हिन्दू नाम है। पर जब उसने कच्छ से आकर ठट्ठा पर अधिकार किया, तब उसने यह घोषणा की थी कि मैं केवल मुसलमानों के देश की रक्षा करने के लिये यहाँ आया हूँ।[2]

ऐसा जान पड़ता है कि वे लोग पहले अपना असली जातीय नाम रखते थे; और बाद को दिल्ली के सुलतानों के ढंग पर सलाहुद्दीन आदि उपाधियाँ धारण करने लगे थे। जिस जाम ने ख़ैरुद्दीन की उपाधि धारण की थी, वह बचपन में बहुत दिनों तक अपने पिता के

---

[1] तारीख़ ताहिरी; ईलियट; पृ० २७३।

[2] तारीख़ मासूमी; ईलियट; पृ० २३१।

साथ दिल्ली के दरबार में रहा था।[1] अन्तिम बादशाह नन्दा के भारतीय और अरबी दोनों नाम हैं। नन्दा जातीय नाम जान पड़ता है और निज़ामुद्दीन अरबी राजकीय उपाधि। इसी प्रकार जिस जाम के साथ सुलतान फ़ीरोज़ शाह की लड़ाई हुई थी, उसका नाम शम्स सिराज ने राय ओनर लिखा है[2], जो हिन्दू नाम है। पर रंग ढंग से पता चलता है कि वह हिन्दू नहीं बल्कि मुसलमान था। और यह बात स्पष्ट ही है कि अगर वे लोग अरब थे, तो वे आरम्भ से ही मुसलमान होंगे। और अगर हिन्दू थे, तो मेरा अनुमान है कि वे लोग राज्य पाने के बाद मुसलमान नहीं हुए थे, बल्कि आरम्भ से ही अर्थात् राज्य पाने से पहले से ही मुसलमान थे, बल्कि सुन्नी थे। अपने विचार उपस्थित करने से पहले हम उन महात्मा और उनकी परम्परा का कुछ हाल बतला देना चाहते हैं, जिनके उद्योग से मेरी समझ में यह जाति मुसलमान हुई होगी। आर्नल्ड साहब ने केवल अनुमान से यह लिख दिया है कि यह जाति अरब व्यापारियों के द्वारा मुसलमान हुई थी।[3] पर मेरी समझ में इसका द्वार व्यापार नहीं था, बल्कि सूफ़ियों का धर्म्म तसव्वुफ़ था।

शेख़ुल् इस्लाम बहाउद्दीन ज़करिया और सैयद जलालुद्दीन बुख़ारी

ऊपर कहा जा चुका है कि सिन्ध पर जो हबारी वंश शासन करता था, उसके राज्य का अन्त होने के बाद उस वंश के कुछ लोग

---

[1] उक्त ग्रन्थ; पृ० २२५

[2] तारीख़ फ़ीरोज़शाही; शम्स सिराज़ अफ़ीफ़; पृ० १९९ (कलकत्ता)

[3] Preaching of Islam का दावते इस्लाम नामक उर्दू अनुवाद पृ० २९२ (सन् १९०७ ई०)।

मुलतान चले गए। उन्हीं में वे अमर महात्मा भी थे जो शेख़ुल् इस्लाम बहाउद्दीन ज़करिया मुलतानी के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका समय सन् ५७८ हि० से लेकर सन् ६६६ हि० तक है। उन्होंने सभी बड़े बड़े इस्लामी देशों में यात्रा की थी और उन्हींके कारण मुलतान विद्या और तसव्वुफ़ का केन्द्र बन गया था। सैयद जलालुद्दीन बुख़ारी जो तसव्वुफ़ और सयादत सैयद-पन के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं, बुख़ारा से मुलतान आकर इन्हीं शेख़ बहाउद्दीन के शिष्य हुए थे। उन सैयद जलाल बुख़ारी के पोते मख़दूम जहानियाँ सैयद जलालुद्दीन हुसैन बुख़ारी थे, जिनका नाम इससे पहले दो बार ऊपर आ चुका है। (जन्म सन् ७०७ हि० ; मृत्यु सन् ८०० हि०) उस समय बड़े बड़े सूफ़ियों और महात्माओं का यह दस्तूर था कि वे अपने योग्य शिष्यों को अच्छी तरह शिक्षा देकर दूर दूर के देशों में लोगों को सत्य का मार्ग दिखलाने और उनकी सेवाएँ करने के लिये भेजा करते थे। शेख़ुल् इस्लाम ज़करिया मुलतानी ने इसी प्रकार सैयद जलाल बुख़ारी प्रथम को सिन्ध के ऊच नगर में लोगों को उपदेश देने के लिये भेजा। उन दिनों सिन्ध में सोमरा जाति के शासन का अन्तिम समय था। और यह हम पहले ही बतला चुके हैं कि सोमरा जाति का वाली किस प्रकार इन सैयद साहब का शिष्य बना था।

तारीख़ ताहिरी से प्रकट होता है कि शेख़ुल् इस्लाम ज़करिया मुलतानी का केवल सिन्ध से ही नहीं बल्कि सम्मा जाति (ताहिरी ने सम्मा की जगह सोमरा लिखा है ; पर उसने जो समय बतलाया है, उसे देखते हुए सोमरा की जगह सम्मा होना चाहिए।) से अनेक प्रकार का सम्बन्ध था ; और उन्होंने जो इस प्रान्त में अपने एक सबसे बड़े शिष्य को नियत किया था, वह भी शायद इसी कारण था। तारीख़ ताहिरी में जो कुछ लिखा हुआ है, उसका सारांश इस प्रकार है—

"सन् ७०० हि० (१३०० ई०) से सन ८४३ हि० (१४४३ ई०) तक १४३ बरस सोमरा (सम्मा) नाम के एक हिन्दू कबीले का सिन्ध पर राज्य था। उसकी राजधानी मुहम्मद तूर में थी। उसके खँडहर केवल मैंने ही नहीं, बल्कि बहुत से लोगों ने बेरक के परगने में देखे हैं। उसके उजड़ जाने के बाद वहाँ के बहुत से निवासी सकोरा (सक्खर) के परगने में आकर बस गए थे, जो सम्मा के जाम के समय में बसा था। यहीं उन्होंने एक गाँव बसाया था और उसका नाम मुहम्मद तूर रखा था। शेख़ुशशयूख़ (शेख़ों के शेख़ या प्रधान) मख़दूम बहाउद्दीन ज़करिया मुल्ला खलीफ़ा सिन्धी, जो भारत में बहुत प्रसिद्ध हैं, और दूसरे बड़े बड़े लोग और जमींदार, जो उनके शिष्य थे, यहीं रहते थे।'[1]

दूसरी घटना ऊपर बतलाई ही जा चुकी है कि शेख़ बहाउद्दीन ने अपने जिन शिष्य सैयद जलाल बुख़ारी को सिन्ध का प्रान्त प्रदान किया था, उनके पोते सैयद जलालुद्दीन हुसेन बुख़ारी, जिनका समय सन् ७०७ हि० से सन् ८०० हि० तक है, सिन्ध के ऊच नामक स्थान में रहते थे और वहाँ का सोमरा जाति का वाली उन्हीं का शिष्य हुआ था। इस सम्बन्ध में फ़रिश्ता ने लिखा है—

उसने मसजिद में जाकर सैयद के पाँव चूमे, सब फ़कीरों से क्षमा माँगी, उनका शिष्य हो गया और वह ईश्वर के दरबार स्वीकृत हो गया।"[2]

सैयद बुख़ारी ऊच में सदा धार्मिक उपदेश और व्याख्यान आदि दिया करते थे, जिन्हें सुनकर बड़े बड़े लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ता था[3]।

---

[1] तारीख़ ताहिरी ; ईलियट ; पृ० २४७।

[2] फ़रिश्ता ; दूसरा खंड ; पृ० ४१६। (नवलकिशोर)

[3] उक्त ग्रन्थ और खंड ; पृ० ४१६।

सैयद साहब के जीवन की घटनाओं से जान पड़ता है कि सोमरा जाति का वाली सन् ७५० हि० के लगभग उनका शिष्य हुआ था, जिसके कुछ ही बरसों के बाद सोमरा की जगह सम्मा जाति का राज्य आरम्भ हुआ था। इस लिये यह भो अनुमान किया जा सकता है कि बाद की शासक जाति सम्मा भी सैयद साहब पर बहुत कुछ श्रद्धा और भक्ति रखती होगी।

सम्मा जाति की राजधानी ठट्ठा नगर पर जब सन् ७५२ हि० में मुहम्मद शाह तुग़लक ने चढ़ाई की थी, तब वहीं वह अचानक मर गया था। फिर जब सन् ७६२ हि० में फ़ीरोजशाह तुग़लक ने पहली बार चढ़ाई की, तब उसे सफलता नहीं हुई और वह वहाँ से गुजरात चला गया। इस घटना को वे लोग शेख़ की ही कृपा और करामात समझते थे, और इस लिये उन्होंने अपनी सिन्धी भाषा में एक वाक्य बनाया था—

"बरकत शेख़ थिया। एक मुआ एक थमा।"[१] (?)

अर्थात्—"यह शेख़ की कृपा या बरकत ही थी कि एक तो मर गया और दूसरा विफल मनोरथ होकर भाग गया।" इस वाक्य में शेख़ शब्द से या तो शेख़ बहाउद्दोन ज़करिया मुलतानी का अभिप्राय है और या सैयद जलाल बुख़ारी का।

जब दूसरे बरस फ़ीरोज़ शाह ने गुजरात से लौटकर उनपर फिर चढ़ाई की, तब जाम ओनर और बाँहबना ने और कोई दूसरा उपाय न देखकर अपना एक दूत सैयद जलालुद्दीन हुसैन बुख़ारी की सेवा में ऊच भेजा और उनसे निवेदन किया कि आप आकर सुलतान के साथ हमारा मेल करा दें। इसपर सैयद साहब आए और उन्होंने दोनों पक्षों में उचित्त शर्तों पर सन्धि करा दी; और सुलतान से कहा कि

---

[१] फ़ीरोज़शाही; शम्स सिराज अफ़ीफ़; पृ० २३ (कलकत्ता)

सम्मा लोगों की राजधानी ठट्ठा में एक महात्मा और ईश्वर तक पहुँची हुई स्त्री थी। उसीकी प्रार्थना के कारण यह नगर नहीं जीता जाता था। परसों उसका देहान्त हो गया।[१]

इन घटनाओं से यह बात अच्छी तरह प्रकट होती है कि सम्मा के जामों का शेख बहाउद्दीन ज़करिया और सैयद जलालुद्दीन हुसैन बुख़ारी में कितना अधिक विश्वास और श्रद्धा थी। इन घटनाओं से इन जामों का केवल मुसलमान होना ही नहीं सिद्ध होता बल्कि सुन्नी होना भी प्रकट होता है; और यह पता चलता है कि मुलतान के इसी सुहरवर्दी वंश ने इन्हें सत्य का मार्ग दिखलाया था।

ये सब घटनाएँ सम्मा जाति के अन्तिम समय की नहीं हैं, बल्कि आरम्भ के समय की हैं, मैं पहले कह चुका हूँ कि सम्मा लोग पीछे से मुसलमान नहीं हुए थे, बल्कि पहले से ही मुसलमान थे; और इन बातों से मेरे इस कथन का समर्थन होता है। विशेषतः जब उस समय की अवस्था को इस घटना के साथ मिला कर देखा जाय कि सम्मा जाति को शासक बनाने में सबसे अधिक काम मुसलमानों ने ही किया था, तब हमारी बात और भी पक्की ठहरती है। फ़रिश्ता ने कहा है—

"मुहम्मद शाह तुग़लक़ के शासन के अन्तिम समय में मुसलमानों के ही प्रयत्न और सहायता से शासन का अधिकार सोमरी लोगों के हाथ से निकल कर सम्मा लोगों के हाथ में गया था; और इनके बहुत से अधिकारी मुसलमान हो गए थे।"[२]

यह स्पष्ट ही है कि यदि ये सम्मा लोग पहले से ही मुसलमान न होते, तो मुसलमानों की इनके साथ कैसे सहानुभूति हो सकती थी।

---

[१] उक्त ग्रन्थ; पृ० २४१।

[२] फ़रिश्ता; दूसरा खंड; पृ० ३१७ (नवलकिशोर)

सिन्ध और उसके आस पास के दूसरे नगर

मुलतान और मन्सूरा के सिवा सिन्ध में और उसके आस पास अरबों के और भी कई छोटे छोटे राज्य और उपनिवेश थे, जिनका पता हिजरी चौथी शताब्दी के अन्त में महमूद ग़ज़नवी के पहले तक मिलता है, जिनमें कुछ को सुलतान के पिता सुबक्तगीन ने और बहुतों को स्वयं सुलतान ने जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। उन नगरों में से नीचे लिखे नगरों के नाम विशेष रूप से हिजरी चौथी शताब्दी के अरब यात्रियों के वर्णनों में मिलते हैं।

देबल या ठट्ठा

यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था; और जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं अरब लोग इसे देबल कहते थे और फ़ारसी इतिहास-लेखकों ने इसको ठट्ठा कहा है।[१] इसी नगर में सम्मा लोगों की राजधानी थी और इसी पर दिल्ली के सुलतान फ़ीरोज़ शाह ने चढ़ाई की थी; पर उसे सफलता नहीं हुई थी। अन्त में हज़रत शेखुल् इस्लाम ज़करिया के शिष्य के उत्तराधिकारी हज़रत शेख़ जलालुद्दीन के बीच में पड़ने पर दोनों पक्षों ने मेल कर लिया।[२] देबल में बड़े बड़े विद्वान् और हदीस के ज्ञाता हो गए हैं, जिनका वर्णन अल्लामा समआनी (मृत्यु सन् ५६२ हि०) ने किताबुल् अन्साब में किया है।[३] बन्दरगाह होने के कारण यह अरब व्यापारियों का केन्द्र था। इसकी आबादी का अनुमान इसीसे कर लेना चाहिये कि सन् २८० हि०

---

[१] आईन अकबरी; "सिन्ध"।

[२] तारीख़ फ़ीरोज़शाही; शम्स सिराज अफ़ीफ़; २४१ (कलकत्ता)

[३] किताबुल् अन्साब (फ़ोटो लेकर छापी हुई) में "देबली" शब्द।

में ख़लीफ़ा मोतमिद अब्बासी के समय में यहाँ एक भूकम्प आया था, जिसमें बहुत से मकान गिर गए थे। इस दुर्घटना में जो आदमी मकानों के नीचे दबकर मर गए थे, उनकी संख्या डेढ़ लाख थी।[१] बुशारी (सन् ३७५ हि०) ने लिखा है—"इसके आस पास एक सौ गाँव हैं। अधिक संख्या हिन्दुओं की है। सब लोग व्यापारी और सौदागर हैं। उनकी भाषा सिन्धी और अरबी है। यहाँ की आमदनी बहुत है।"

असीफ़ान

बिलाज़ुरी ने इसका स्थान मुलतान, काश्मीर और काबुल के बीच में बतलाया है, जो शायद बहुत ठीक न हो। पर सिन्ध में इससे मिलते जुलते हुए नाम देखने में आते हैं।

डाक्टर आर्नल्ड को भी अपनी पुस्तक Preaching of Islam (दावते इस्लाम) लिखते समय इसका पता न चल सका।[२] उन्होंने स्वर्गीय मौलाना शिबली के द्वारा इसकी जाँच भी कराई।[३] पर मेरा अनुमान है कि इसका असली नाम असीवान है, जिसको सीवान भी कह सकते हैं। इस नाम के कई नगर दिल्ली और सिन्ध के बीच में है। फ़ारसी इतिहासों में भी यह नाम आया है।[४] इब्न बतूता ने भी सीवाना का ज़िक्र किया है और अब यह कराची के ज़िले में है। कुछ लोगों ने सेविस्तान और सीवान को एक ही माना है। जो हो; हिजरी तीसरी शताब्दी के आरम्भ में मोतसिम के समय में,

---

[१] तारीख़ुल् ख़ुलफ़ा ; सुयूती ; पृ० ३८० । (कलकत्ता)

[२] दावते इस्लाम ; पृ० २६१ ।

[३] मकातीब शिबली ; दूसरा खंड ; पृ० ९७ ।

[४] ख़ज़ायनुल् फ़ुतूह ; अमीर ख़ुसरो ।

जिसकी मृत्यु सन् २२७ हि० में हुई थी, यहाँ मुसलमान व्यापारियों की बस्ती थी।[1]

तुम्बली

सिन्ध में तुम्बली नाम का भी एक स्थान था। सन् ३७५ हि० में यहाँ भी कुछ मुसलमान बसे हुए थे।[2]

बूक़ान

बिलाज़ुरी ने सिन्ध के बूक़ान (या बोकन) नाम के एक स्थान का भी ज़िक्र किया है और लिखा है—"हमारे समय में यहाँ के सब निवासी मुसलमान हैं।"[3] इसका समय हिजरी तीसरी शताब्दी का अन्त है।

कसदार

कुछ लोगों ने इसका नाम कजदार भी लिखा है। सुबक्तगीन ग़ज़नवी की विजयों में इसका नाम मुलतान है।[4] यह भारत की अफ़ग़ानी सीमा के पास था। यहाँ खारिजी मुसलमानों की बस्ती थी और उन्हींका राज्य भी था। शायद हिजरी चौथी शताब्दी के मध्य में एक मोतजिली तार्किक और शास्त्रार्थ करनेवाले अबुल्हसन अली बिन लतीफ़ जब यहाँ पहुँचे, तब उन्हें सुन्नियों की बस्ती और रियासत मिली। वे कहते हैं कि यहाँ इतनी शान्ति और व्यवस्था

---

[1] बिलाज़ुरी ; पृ० ४४६।

[2] बुशारी ; पृ० ४८०।

[3] बिलाज़ुरी ; पृ० ३४५।

[4] तबक़ाते नासिरी ; पृ० ७। (कलकत्ता)

है कि चोरी का कहीं नाम भी नहीं है। लोग घरों में ताला भी नहीं लगाते। यदि मसजिद में कोई यात्री योंही अपना सामान छोड़ दे, तो उसे कोई छूने वाला भी नहीं है। यहाँ एक मुसलमान दरज़ी से उनकी भेंट हुई थी। नगर में मसजिद भी थी।[१] बुशारी ने इसका स्थान यह बतलाया है कि यह बलोचिस्तान के तेज़ नामक बन्दरगाह से समुद्र के किनारे मकरान की लम्बाई में १२ पड़ाव पर है।[२] एक और अरब भूगोल-लेखक कहता है—"यह मुलतान से प्रायः बीस पड़ाव पर है।"[३]

इब्न हौक़ल (सन् ३६७ हि०) कहता है—"कज़दार एक नगर है जिसके साथ कुछ कस्बे और देहात हैं, और यहाँ के हाकिम का नाम मुईन बिन अहमद है। पर ख़ुतबा ख़लीफ़ा (बग़दाद) के नाम का पढ़ा जाता है। हाकिम का महल बाकजनान में था।" बुशारी मुकद्दसी जो सन ३७५ हि० में इधर आया था, कहता है—"कज़दार तौरान की राजधानी है। यह एक जंगल में है। इसके दो भाग हैं। दोनों के बीच में एक तराई है, जिसमें पुल नहीं है। एक भाग में सुलतान का महल है और उसी में किला भी है। दूसरे भाग का नाम बोदीन है। उसमें व्यापारियों के मकान हैं। यह भाग बहुत ही साफ सुथरा है। नगर छोटा है, पर यहाँ अच्छा लाभ होता है। ख़ुरासान, फ़ारस, किरमान और इधर से भारत के नगरों के लोग यहाँ आया करते हैं। पर यहाँ का पानी अच्छा नहीं है। · · · · · · पानी नहर से लेकर पीया जाता है।"[४]

---

[१] मुअजमुल् बुल्दान ; याक़ूत ; सातवाँ खंड ; पृ० ७८ (मिस्र)

[२] अहसनुत्तकासीम ; पृ० ३८५।

[३] तकवीमुल् बुल्दान ; अब्बुल्फ़िदा ; पृ० ३४६।

[४] बुशारी कृत अहसनुत्तकासीम ; पृ० ४७८ (लीडन)

तात्पर्य यह कि यह मुसलमानों की एक छोटी सी रियासत थी। सुलतान महमूद के बाप अमीर सुबक्तगीन ने पहले भारत की सीमा पर की रियासतों को मिटाना आवश्यक समझा। इस लिये सन् ३७५ हि० और ३८६ हि० (जो सुबक्तगीन के मरने का सन् है) के बीच किसी सन् में उसने इस नगर पर अधिकार किया और यहाँ के मुसलमान हाकिम को अपना करद बनाया।[1]

तौरान

इब्न हौक़ल के समय में सन् ४६३ हि० में यह एक स्थायी रियासत थी। वह कहता है कि पश्चिमी सिन्ध में तोरान है, जिसपर बसरे का रहनेवाला अबुल कासिम शासन करता है। वह आप ही हाकिम, काज़ी और सेनापति सब कुछ है; यद्यपि वह यह नहीं जानता कि तीन और दस में क्या फर्क है।

वैहिन्द

यह भारत का प्रसिद्ध पुराना नगर है। ग़ज़नवी के जीते हुए स्थानों में इसका भी नाम आता है। सन् ३९३ हि० में महमूद ने पेशावर के बाद इसपर अधिकार किया था।[2] इस नगर में भी महमूद के आने से पहले ही मुसलमानों की बस्ती थी। बैरूनी ने क़ानून मसऊदी में इसके विषय में लिखा है—"यह गन्धार की राजधानी है और सिन्ध की तराई में है।"[3] स्व० वी० ए० स्मिथ साहब ने अपनी "अरली हिस्ट्री आफ इंडिया" में ओहिन्द नाम की राजधानी

---

[1] तारीख़ फ़रिश्ता; पहला खंड; पृ० १९ (नवलकिशोर)

[2] ज़ैनुल् अख़बार; गरदेज़ी; पृ० ६६ (बरलिन)।

[3] तक़वीमुल् बुल्दान; अबुल्फ़िदा; पृ० ३४७ (पेरिस; सन् १८४० ई०)।

को सिन्ध नदी के किनारे बतलाया है। वे लिखते हैं कि जब सन् २५६ हि० में मुसलमानों ने काबुल जीत लिया, तब वहाँ की राजधानी हटकर ओहिन्द में आ गई, जो सिन्ध नदी के किनारे था और हिन्दू शाही वंश की राजधानी था।[1]

हिजरी चौथी शताब्दी के अन्त में (सन् ३७५ हि० में अर्थात् महमूद की चढ़ाई से १५-१६ बरस पहले) बुशारी मुक़द्दसी लिखता है—"मैंने अबुल हेशम नेशापुरी के शिष्यों में से एक शिष्य से और शीराज़ के एक विद्वान से, जो इस देश में अच्छी तरह सैर कर चुके थे, पूछा तो पता चला कि वेहिन्द राजधानी का नाम है और उसके अधीन वधान (या विधान), बेतर, नौज, लवार और समान कोज आदि नगर हैं।"[2]

वैहिन्द के इलाके में भी मुसलमानों की अच्छी आबादी थी; यहाँ तक कि उनका राज्य ही था। हिन्दुओं का राजा अलग था और मुसलमानों का अमीर अलग था। निवासियों में अधिकतर हिन्दू ही थे।[3]

कन्नौज

भारत के प्रसिद्ध नगर कन्नौज के सिवा सिन्ध और पंजाब की सीमा के पास भी इस नाम का एक इलाक़ा बसा हुआ था, जिसका अरब यात्रियों ने बहुत अधिक उल्लेख किया है। यहाँ भी मुसलमान बसे हुए थे। सन् ३०० हि० के बाद यह नगर मुसलमानों के अधिकार में आ गया था। जब मसऊदी ने (सन् ३०३ हि० में) इसको देखा

---

[1] The Early History of India पहला खंड पृ० ३४५।

[2] अहसनुत्तक़ासीम; पृ० ४७७।

[3] उक्त ग्रन्थ; पृ० ४८५ और पाद-टिप्पणी।

था, तब मुलतान के साथ इसका सम्बन्ध था ; और यह इस्लामी शासन या राज्य में था।[१] बुशारी इसके ७०-७५ बरस बाद यहाँ आया था। उस समय यह एक स्वतन्त्र राज्य हो गया था। वह कहता है—"यह बड़ा नगर है। इसके चारों ओर परकोटा है। यहाँ मांस बहुत अधिक बिकता है। बाग़ बहुत हैं। पानी अच्छा है। व्यापार बहुत है। लोग सुन्दर हैं। परकोटे के अन्दर जामे मस्जिद है। मुसलमान गेहूँ खाते हैं। यहाँ बड़े बड़े प्रतिष्ठित और विद्वान् लोग रहते हैं।"[२] आगे चलकर कहता है—"यहाँ के अधिकतर निवासी यद्यपि हिन्दू हैं, पर फिर भी मुसलमानों का सुलतान अलग है।"[३]

अवध के कन्नौज को भी अरब के यात्री और भूगोल-लेखक जानते थे। मिस्र का प्रधान मन्त्री महलबी (सन् ३८६ हि० के लगभग) अपनी भूगोलवाली किताब अज़ीज़ी में लिखता है—"कन्नौज भारत के बहुत दूर के नगरों में हैं। मुलतान के पूरब है। मुलतान और कन्नौज के बीच में दो सौ बयासी फरसंग की दूरी है। वह भारत की राजधानी है और सबसे बड़ा नगर है। लोगों ने उसका वर्णन करते समय सब बातें बढ़ाकर कही हैं। कहते हैं कि इसमें ख़ाली जौहरियों के तीन सौ बाज़ार हैं ; और इसके राजा के पास ढाई हज़ार हाथी हैं। इसमें सोने की खानें भी हैं।"

इदरीसी, जिसने सिसली (इटली) में बैठकर सन् ५४८ हि० में अपना भूगोल लिखा था, कहता है—"यह बहुत सुन्दर नगर है। व्यापार की मंडी है। इसी नगर के नाम से यहाँ के राजाओं को भी कन्नौज कहते हैं।" इदरीसी ने कन्नौज का विस्तार पंजाब बल्कि

[१] मसऊदी ; पहला खंड ; पृ० ३७२ (पेरिस)।

[२] अहसनुत्तक़ासीम ; पृ० ४८०।

[३] उक्त ग्रन्थ ; पृ० ४८५।

काश्मीर तक बतलाया है। मराको का भूगोल-लेखक इब्न सईद मग़रिबी (सन् ५८५ हि०) लिखता है—"यह नगर गंगा के दोनों किनारों पर बसा है।"[१]

नैरून

सिन्ध के समुद्र किनारे के नगरों में नैरून नाम का भी एक नगर था। कुछ लोगों ने भूल से इसे बैरून पढ़ा है और अबू रैहान बैरूनी को यहीं का रहनेवाला बतलाया है।[२] यह देबल और मन्सूरा के बीच में था और मन्सूरा से १५ फरसंग दूर था। मिस्र का मन्त्री महलबी हिजरी चौथी शताब्दी में अपने भूगोल में लिखता है—"यहाँ के रहनेवाले मुसलमान हैं।"[३] एलफिन्सटन साहब ने अपने भारत के इतिहास में बतलाया है कि आजकल के हैदराबाद (सिन्ध) का ही पुराना नाम बैरून है।[४]

मकरान

यह सिन्ध की सीमा पर है। इब्न हौक़ल के समय में यहाँ का अरब हाकिम मादान का लड़का ईसा था। उसकी राजधानी का नाम कनेर था, जिसका विस्तार मुलतान के विस्तार से आधा था।

---

[१] तक़वीमुल् बुल्दान ; अबुल्फ़िदा ; पृ० ३६० । (पेरिस) ।

[२] उक्त ग्रन्थ ; पृ० ३४१ । इब्न सईद मग़रिबी के आधार पर । तारीख़ुल् अतिब्बा ; इब्न अबी उसैबा ; दूसरा खण्ड पृ० २० (मिस्र) ।

[३] तक़वीमुल् बुल्दान ; अबुल्फ़िदा ; पृ० ३४१ ।

[४] एलफिन्सटन कृत भारत के इतिहास का उर्दू अनुवाद "तारीख़ हिन्द" दूसरा खण्ड ; पृ० ४१३ । (अलीगढ़ , सन् १८६७ ई०) ।

मश्क़ी

इसीके पास एक और अरब रियासत थी, जिसका नाम मश्की (या मुश्की) था। इब्न हौक़ल के समय में यहाँ के अरब हाकिम का नाम मज़ाहिर था, जो रजाद का लड़का था, यह रियासत इतनी बड़ी थी कि इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने में तीन दिन लगते थे। यहाँ ख़ुतबा भी बग़दाद के ख़लीफ़ा के ही नाम का पढ़ा जाता था।

सिन्ध के रेगिस्तानों में चलते चलते हम और आप दोनों घबरा गए। अब आइए, थोड़ी देर स्वर्ग-तुल्य देश की सैर करें जिसमें चित्त प्रसन्न हो जाय।

काश्मीर

यह वह देश है जिसके सम्बन्ध में यह कहना उचित है कि इसको मुसलमान बादशाहों की तलवारों और उपायों ने नहीं जीता, बल्कि मुसलमान विद्वानों और फ़कीरों के प्रभाव ने जीता था। अरब भूगोल-लेखक और यात्री इसके पास तक आए, पर इसके अन्दर नहीं गए। उन्होंने इसके रास्ते की कठिनाइयों का ज़िक्र किया है। वे लोग समुद्र से लेकर काश्मीर की पर्वत-माला तक के सब प्रदेशों को सिन्ध ही कहते थे। अरबों के बाद सुलतान महमूद ने भी इसकी चट्टानों से सिर टकराया, पर उसे सफलता नहीं हुई। लेकिन उसी समय में हम यहाँ मुसलमान व्यापारियों को आते जाते हुए देखते हैं। सुलतान महमूद की मृत्यु के तीन बरस बाद सन् ४२४ हि० में सुलतान मसऊद ग़ज़नवी ने इसपर चढ़ाई की और नगरनिवासी क़िले में बन्द हो गए। उस समय वहाँ जो मुसलमान व्यापारी थे वे भी किले में बन्द थे।[१]

---

[१] फ़रिश्ता; पहला खंड; पृ० ४१ (नवलकिशोर)

भारत के इतिहास की इस संक्षिप्त मानसिक सैर के बाद हम उपस्थित सज्जनों से विदा होते हैं।

समाप्ति

इन पृष्ठों में हमने इस बात का प्रयत्न किया है कि हम अपने साथियों को अरब और भारत के आपस के सम्बन्धों के वे दृश्य दिखलाव जो ख़ैबर से आनेवाले मुसलमान विजेताओं से पहले यहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे। इनसे आप लोग अनुमान कर सकेंगे कि इन विजयों से पहले भी इस देश में कहाँ कहाँ मुसलमान लोग बसे हुए थे और हिन्दुओं के साथ उनके सम्बन्ध कितने प्रकार के और कितने गहरे थे और भारत के साथ इस्लाम का सम्बन्ध कितना अधिक पुराना है।

"मा क़िस्सए सिकन्दर व दारा न ख्वाँदा एम।
अज़ मा बजुज़ हिक़ायते मेहरो वफ़ा मपुर्स॥"

अर्थात् मैंने सिकन्दर और दारा की कहानियाँ (लड़ाई झगड़े की बातें) नहीं पढ़ी हैं। मुझसे दया और निष्ठा की कहानी के सिवा और कुछ मत पूछो।

परिशिष्ट

पुस्तक के समाप्त हो जाने पर कुछ और काम की बातें मिली हैं जिन्हें यहाँ पर देना उचित जान पड़ता है।

१. सोपारा

गुजरात के एक प्रसिद्ध पुराने नगर का नाम अरबवालों ने 'सोबारा' लिखा है। इस्तख़री (सन् ३४० हि०) ने भारत के प्रसिद्ध नगरों में इसका नाम भी गिनाया है। इसके बाद जेरूसलम के यात्री बुशारी (सन् ३७० हि०) ने हिजरी चौथी शताब्दी के अन्त (ईस्वी दसवीं शताब्दी के अन्त) में इसका नाम लिया है और इसका स्थान खम्भायत के पास बतलाया है; और दोनों में चार पड़ावों का अन्तर बतलाया है। वह कहता है कि सोपारा समुद्र से एक फरसंग (आठ मील) की दूरी पर है। (बुशारी कृत अहसनुत्तक़ासीम पृ० ४७७ और ४८६ लीडन।)

पिछले वर्षों में गुजरात के जिन पुराने स्थानों और स्मृतिचिह्नों की जाँच हुई है, उसमें सोबारा या सोपारा नाम के एक नगर का भी पता चलता है। इस जाँच से विदित होता है कि यह वही नगर है जिसका पुराने अरब यात्रियों ने अपने समय में वर्णन किया है।

२ फ़रवरी १९३० ई० के "बाम्बे क्रानिकल" के रविवार वाले अंक (पृ० ३१ और ३२) में इस जाँच के सम्बन्ध में एक लेख निकला है, जिसका सारांश इस प्रकार है—

"पुरातत्त्व सम्बन्धी जाँच से इस बात का पता चलता है कि इस नगर का वर्णन मगध देश (बिहार) के प्रसिद्ध राजा अशोक

के समय से मिलता है। यहाँ महाराज अशोक का एक स्तम्भ सन् १८८१ ई० में हमारे पुरातत्त्व सम्बन्धी जाँच करनेवालों को मिला था। सोपारा अब भी बी० बी० ऐंड सी० आई रेलवे के एक ऐसे स्टेशन का नाम है जो बहुत प्रसिद्ध नहीं है और अपने पास के इसी नाम के एक गाँव के कारण रखा गया है। स्व० पंडित भगवानलाल इन्द्र जी ने यहाँ अशोक के एक शिलालेख का पता लगाया था। अब यह स्थान बम्बई के इलाके में बसीन से, जो समुद्र के ही किनारे है, तीन चार मील उत्तर को ओर और खास बम्बई नगर से तीस मील की दूरी पर है।

ई० पू० सन् २५० में यह भारत के प्रसिद्ध और अच्छे बसे हुए नगरों में से एक था। इसी कारण यह उन थोड़े से भाग्यवान नगरों में चुना गया था जिनमें महाराज अशोक ने अपने लेख से युक्त स्तम्भ लगाए थे। सोपारावाला पत्थर यहाँ से उठाकर प्रिन्स आफ वेल्स म्यूज़ियम (पश्चिमी भारत) में रखा गया है। उस पत्थर में दस पक्तियां हैं जिनमें से पहली चार पक्तियां मिट गई हैं। इसकी लिपि वही है जो देवनागरी तथा दूसरी भारतीय लिपियों की जननी या मूल है और जिसके सम्बन्ध में पुरातत्त्व के युरोपीय ज्ञाता बुहलर का मत है कि यह व्यापार के पदार्थ आने जाने के मार्ग से ईसा से सात आठ सौ बरस पहले इराक से भारत में आई थी। इसकी विशेष बातें इस पुस्तक में बतलाई जा चुकी हैं।

डा० भंडारकर कहते हैं कि बम्बई प्रान्त के थाना ज़िले में सोपारा एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था जिसका नाम महाभारत में शूरपापका है। बतलीमूस ने अपने भूगोल में इसका नाम सोपारा लिखा है। यह एक प्रसिद्ध पवित्र स्थान और अपरान्त का राजनगर था।

आजकल सोपारा नाम का जो गाँव है, वह इसी पुराने प्रसिद्ध नगर के स्थान पर बसा हुआ है। यह एक खाड़ी के बाएँ किनारे

पर स्थित है जो बसीन की खाड़ी के रेल्वेवाले पुल और वतरना नदी के बीच में घूमती हुई दिखाई पड़ती है। पुराने सोपारा में अब भी पुराने मकानों और बड़े बड़े भवनों के चिह्न बचे हुए हैं। यहां एक रामकुंड भी है जिससे यह सिद्ध होता है कि यह किसी समय तीर्थ था।

जब सन् १८८१ ई० में सोपारा के अशोकवाले शिलालेख का पता चला था उस समय उस गाँव में कठिनता से छः सौ घर थे जिनमें लगभग दो हज़ार आदमी रहते थे। वहाँ के निवासी ब्राह्मण, 'हिन्दुस्तानी' इसाई और मुसलमान हैं। मुसलमानों में अरब और ईरानी हैं जो सात सौ वर्ष पहले व्यापारिक सम्बन्ध के कारण यहाँ आकर बस गए थे।

ऊपर दिए हुए इस सारांश से यह पता चलता है कि गुजरात के समुद्रतट पर बसे हुए दूसरे व्यापारिक नगरों की भाँति यहाँ भी मुसलमान बसे हुए थे। और यदि महाराज अशोक के शिलालेख और बतलीमूस के भूगोल से इस बस्ती का ईसा से ढाई सौ बरस पहले होने का प्रमाण मिलता है, तो मुसलमान अरब यात्रियों के वर्णन से इसका ईसा के एक हज़ार बरस बाद होने का भी पता चलता है।

२. अरब में एक जाट चिकित्सक

इस पुस्तक के आरम्भ (पृ० १०) में यह बतलाया जा चुका है कि मुहम्मद साहब के समकालीन लोगों के समय अर्थात् हिजरी पहली शताब्दी या ईस्वी सातवीं शताब्दी में जाट लोग इराक और अरब में बसे हुए थे। परन्तु उस स्थान पर उनके सैनिक गुणों का ही वर्णन किया गया है। परन्तु एक बहुत ही प्रामाणिक साधन से उनके विद्या सम्बन्धी कार्यों का भी पता चलता है। ईमाम बुख़ारी (मृत्यु सन् २५६ हि०) ने अपनी किताबुल् अदबुल बुल् मुफरद नामक पुस्तक में

मुहम्मद साहब के समकालीन लोगों के समय की एक घटना लिखी है, जिसमें यह बतलाया है कि एक बार श्रीमती आयशा (मुहम्मद साहब की दूसरी पत्नी) जब बीमार हुई थीं, तब उनके भतीजों ने एक जाट चिकित्सक को उनकी चिकित्सा करने के लिये बुलाया था।[1]

३. सिन्ध के राजसी जूते

इस पुस्तक के पृ० ६५ में खम्भायत के जूतों का वर्णन आया है, जो मन्सूरा (सिन्ध) से इराक की अब्बासी राजधानी बग़दाद में जाते थे। अभी हाल में इमाम अहमद बिन हम्बल (मृत्यु सन् २४१ हि०) की किताबुल वरा नाम की एक छोटी सी पुस्तक की सात सौ बरस पहले की लिखी हुई एक प्रति अलजीरिया में मिली है जो सन् १३४० हि० में मिस्र में छपी है। उस पुस्तक से यह प्रमाणित होता है कि सिन्ध के जूते इतने सुन्दर और भड़कदार होते थे कि सम्भ्रान्त और गम्भीर लोग उनको पहनना पसन्द नहीं करते थे और वे केवल राजकुमारों के पहनने के योग्य समझे जाते थे।[2]

---

[1] इमाम बुखारी कृत अल् अदबुल् मुफरद ; बैउलख़ादिमवाला प्रकरण, पृ० ३५ (मिस्र)।

[2] इब्न हम्बल कृत किताबुल् वरा, लबसुन नआल अससिन्दियावाला प्रकरण, पृ० ११० ; (मिस्र)।

अनुक्रमणिका